प्रकाशक—
ओरिएण्टल बुक डिपो,
नई सड़क, देहली।

मूल्य ६)

मुद्रक—
बालूजा प्रे
फतेहपुरी, दे

भूमिका

यह पुस्तक एक पौराणिक गाथा के आधार पर लिखी गयी है। गाथा इस प्रकार है—

नहुष, जो चन्द्रवंशियो के पूर्वजो में से था, एक बलशाली राजा हुआ है। उसने इन्द्र को पराजित कर देवलोक पर अधिकार कर लिया था। उसने इन्द्र को एक कमल पुष्प में बंदी कर रखा था और शची को, जो इन्द्रपुरी छोड़ अन्यत्र चली गयी थी, विवाहने की वह इच्छा करने लगा। शची ने नहुष से विवाह करना स्वीकार कर लिया, परन्तु उसमें शर्त यह लगाई थी कि वह उसको वरने के लिए एक ऐसे वाहन पर सवार होकर आये, जैसे पर पहिले कोई देव, दानव, मनुष्य अथवा असुर सवार न हुआ हो। नहुष ने यह शर्त मान ली और ऋषियो से अपनी पालकी उठवाकर शची को वरने चल पड़ा। ऋषियो ने, जिन-से पालकी उठवाई गयी थी, इसमें अपना अपमान माना और उन्होंने नहुष को शाप दे दिया कि वह अजगर की योनि में पड़े। वह तुरन्त ही अजगर बन गया। इस प्रकार इन्द्र मुक्त हो पुनः देवलोक में राज्य करने लगा। पीछे नहुष की संतान महात्मा युधिष्ठिर हुए और उनके पाँव की ठोकर से नहुष अजगर योनि से मुक्त हो स्वर्ग चला गया।

इस गाथा के आधार पर इस उपन्यास का निर्माण किया गया है। साथ ही महाभारत काल से चार-पाँच सौ वर्ष पूर्व काल की राजनीतिक और सामाजिक अवस्था को पृष्ठभूमि बनाने का यत्न किया गया है।

उस काल की अवस्था का वर्णन करने के लिये बहुत सीमा तक कल्पना से काम लिया गया है। इस कल्पना के आधार महाभारत ग्रंथ, राजतरंगिणी और पद्मपुराण हैं। सार रूप में निम्न बातों को, जिस प्रकार से लेखक ने समझा है, पृष्ठभूमि में लाया गया है :—

१. महाप्लावन हुआ था।

२. इस प्लावन में केवल मनु ही नहीं बचा था, वरन् बहुत से देवता लोग कुमायूँ, हिमाचल प्रदेश और तिब्बत के पठार पर बच गये थे। देवता लोग प्लावन पूर्व की सभ्यता और ज्ञान-विज्ञान के संरक्षक सिद्ध हुए।

३. देवताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य जातियाँ भी, जो पहाड़ों पर निवास रखती थीं, बच गयी थीं।

४. मनु प्लावन से बचकर इराक देश में किसी पर्वत पर पहुँच गया था।

५. जब मनु की संतान बहुत बढ़ गयी तो उसका एक भाग भारतवर्ष की ओर चल पड़ा। ये लोग आर्य तथा सूर्यवंशी कहाये।

६. जब ये लोग पंचाल देश में पहुँचे तब इनका सम्पर्क देवताओं से हुआ, जिनसे इन्होंने ज्ञान-विज्ञान की बहुत सी बातें सीखीं। इस प्रकार देवता आर्यों के गुरु और पूज्य बन गये।

७. मनु की सन्तान में से एक और भाग, पहिले से कई सहस्र वर्ष पीछे, इधर को आया। ये चन्द्रवंशी कहाये।

८. जब ये कामभोज इत्यादि देशों में पहुँचे तब तक ये असभ्य और म्लेच्छ थे। इनमें और पूर्व आये सूर्यवंशियों में भारी अन्तर पड़ गया था।

९. नहुष चन्द्रवंशियों का नेता था।

१०. चन्द्रवंशी जब भारत में स्थापित हो गये तब भी इनका आचार-व्यवहार आर्यों से भिन्न था।

११. चन्द्रवंशियो में नहुष, ययाति, दुष्यंत, शन्तनु, भीष्म, धृतराष्ट्र, दुर्योधन इत्यादि आर्य-व्यवहार नही रखते थे। इनका आचरण रघुवशियो से, जिनका उल्लेख रामायण में आता है, भिन्न प्रकार का था।

१२ भरत तथा युधिष्ठिर को छोडकर अन्य कोई भी विख्यात चन्द्रवंशी ऐसा नही मिलता जिसने कोई आर्ष कर्म अर्थात् यज्ञ-होमादिक किया हो।

१३. भरत और युधिष्ठिर के सस्कार आर्ष थे। उनका पालन-पोषण ऋषियो तथा आर्यो के भीतर हुआ था।

इस प्रकार की कुछ धारणाओ के आधार पर इस पुस्तक की पृष्ठभूमि का निर्माण किया गया है। यह धारणा चन्द्रवशिया के लिए निन्दा-वाचक नही। यह केवलमात्र दो जातियो के आचार-व्यवहार में अन्तर की सूचक है।

महाभारत का युद्ध न दो सभ्यताओ में युद्ध था। कृष्ण आर्य-सस्कृति का पोषक था। सी कारण महाभारत के लेखक ने यह लिखा है कि वेद, शास्त्र, उपनिषद् इत्यादि आर्ष ग्रथो को गाय बनाकर उन-का दुग्ध-दोहन गीता में किया गया है।

आर्य सस्कृति का आधार तीन बातो पर है—(१) आस्तिकवाद। (२) पुनर्जन्म तथा कर्म फल का विचार। (३) वर्णाश्रम धर्म। गीता इन तीनो बातो का पोषण करती है। महाभारत युद्ध में कृष्ण की विचारधारा की विजय हुई थी।

जैसे लकाविजय के पश्चात् असुर जाति का पूर्णतया ह्रास हो गया था वैसे ही महाभारत युद्ध के पश्चात् चन्द्रवंशियो का ह्रास हुआ।

पुस्तक में नहुष और उसके साथियो के लिए म्लेच्छ शब्द का प्रयोग

हुआ है। म्लेच्छ शब्द के वास्तविक अर्थ, सुसंस्कृत भाषा से, 'अनभिज्ञ' ही लिये हैं।

यह इतिहास का ग्रन्थ नहीं है। यह एक उपन्यास है। इतिहास और उपन्यास में अन्तर यह है कि एक में केवलमात्र घटनाओं का उल्लेख होता है और दूसरे में घटनाओं पर विवेचना भी।

इस पुस्तक को पाठकों के सम्मुख वर्तमान रूप में रखने में प्रोफेसर धर्मचन्द्र सत जी का भारी सहयोग प्राप्त हुआ है। लेखक उनका आभारी है।

गुरुदत्त

विषय-सूची

स्वयंवर

(१)

काश्मीर में मधुमती नदी के तट पर चक्रधरपुर नाम का एक नगर था। नदी के स्वच्छ जल से अनेकों घाटो की सीढियाँ ऊपर मकानो, सड़को और मन्दिरो को जाती हुई दिखाई देती थी। इन घाटों पर लोग स्नान-ध्यान करते, वस्त्रादि धोते और तांबे के चमकते हुए कलसो में जल भरकर घरो को ले जाते हुए नगर की चहल-पहल प्रकट करते थे। नदी उत्तर से दक्षिण बहती थी और नगर से कुछ नीचे एक अन्य नदी में, जिसका नाम वितस्ता था, मिल जाती थी। नगर के एक कोने से दूसरे कोने तक नाव द्वारा जाना जहाँ सुगम था वहाँ आनन्दप्रद भी था। नगर का सुन्दर दृश्य, जो नाव पर से दिखाई देता था, वह और किसी स्थान से दिखाई देना सम्भव नही था। घाटो के ऊपर पक्तियों के ऊपर पक्तियो में बने हुए भवन, लाटें, कलस और गुमटियाँ अति मनोहर दिखाई पड़ती थीं।

नगर पहाडी की ढलवान पर बसा हुआ था। यह ढलवान नदी के बायें किनारे पर थी। नदी के दाहिने किनारे की ओर खुला मैदान था, जिसमें फल-फूलो के उद्यान थे और जहाँ पर खड़ा मनुष्य पहाड़ की ढलवान पर बने नगर के प्रत्येक घर को देख सकता था।

मधुमती का जल केवल नगरवासियो के प्रयोग की वस्तु ही नही था, प्रत्युत दाहिने तट पर खेतों और उद्यानो की सिंचाई के लिये भी

प्रयुक्त होता था। केशर की क्यारियो के लिये यह जल दूध तथा मधु का काम करता था। मधुमती तथा वितस्ता का जल वादी को हरियाली में प्राण डालने वाला था।

ममघुती तो कैलाशपति शिव के तपस्या-स्थान अमरनाथ के पर्वतो से निकलती थी और चक्रधरपुर से कुछ नीचे वितस्ता नदी में, जो नील-नाग सरोवर से निकलती थी, मिल जाती थी। नदी में नावें चलती थीं, जो वादी के एक कोने को दूसरे कोने से मिलाती थी और जनता के आने-जाने और सामान आदि के ढोने में एक सुगम साधन थीं।

नगर के असख्य पाषाणनिर्मित भवनो में दो सबसे ऊँचे और भव्य थे। उनमें से एक भगवान् चक्रधर अर्थात् विष्णु का मन्दिर था, जिसके नाम पर नगर का नाम पडा था। इस भवन में किसी प्रतिमा की स्थापना नही थी। इस भवन के गगनचुम्बी कलस के नीचे एक विशाल आगार था, जिसमें एक बहुत प्राचीन पुस्तकालय था। इस पुस्तकालय में लक्ष-लक्ष हस्तलिखित ग्रन्थ आगार की पत्थर की दीवारो में बने घरो में रखे थे।। इस विशाल आगार के पश्चिम की ओर अनेको छोटे-छोटे आगार थे, जिनमें देश-देशान्तर से ज्ञान-उपार्जन के लिये आये स्नातक ठहरते थे। बडे आगार के पूर्व की ओर आचार्य का गृह था।

इस कथाकाल में जगत्-विख्यात वैय्याकरण आचार्य पाणिनी अपने परिवार के साथ वहाँ रहता था। पाणिनी ऋषि की ख्याति के कारण स्नातकोत्तर शिक्षा के लिये आये विद्यार्थियो की सख्या एक सौ से ऊपर हो गयी थी। ये सब विद्यार्थी मन्दिर के पश्चिमी भाग में रहते थे और भोजन-वस्त्र राज्य की ओर से पाते थे।

नगर का दूसरा भव्य भवन काश्मीर के राजा का प्रासाद था। यह एक टीले पर, जो नदी के किनारे पर था, बना था। यह टीला चोटी पर समतल कर दिया गया था। टीले की ढलवान पर फलो और

फूलो का एक उद्यान था। इस उद्यान में से एक विशाल घाट की सीढियाँ नदी के जल तक उतरती थी।

प्रासाद का मुख नदी अर्थात् पश्चिम की ओर था। नदी पार से वसन्त ऋतु की समीर जब दूर पर्वतो पर विचरते कस्तूरी के हिरणो को स्पर्श करती हुई आती अथवा कुंकुम के खेतो पर से वहती हुई अपने साथ उनका पराग वहन करती हुई वहाँ लाती तो प्रासाद के साथ पूर्ण नगर को सुरभित कर देती थी। नगरनिवासियो को यह सुगंधित वायु ऐसे मस्त करने की शक्ति रखती थी कि नीरस शुष्क हृदयों में भी एक बार स्पन्दन हो उठता था। मदनपीडित युवको के लिये यह उन्माद का कारण तो थी ही, साथ ही वृद्ध जनो में भी चिरवियुक्त साथियो की याद को हरा-भरा करने की सामर्थ्य रखती थी।

वसन्त ऋतु आ गयी थी। उद्यानो में वृक्ष अगणित पुष्पो की वहुवर्णीय चादर ओढे हुए थे। इस काल की मस्ती में वे भूले हुए थे कि फूल ही कालान्तर में फल वनकर उनके अभिमानी सर को वोझ से झुका देंगे।

इस समय एक छोटी-सी नौका रग-विरंगी पर्दों, पताकाओ इत्यादि से सुसज्जित और मोतियो की मालाओ, रत्नजडित खम्भो और श्वेत चांदी की छत से चमकती हुई, जलराशि पर मन्द गति से खसकती हुई प्रासाद के घाट पर आ लगी। नाव दो दासियो द्वारा, जो सुन्दर वस्त्र और भूषण पहिने थीं, खेई जा रही थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो कोई जलजन्तु रगीन परों के साथ जल पर तैरता हुआ वहाँ आ खड़ा हुआ था।

वसन्त ऋतु में प्रात काल की धूप वहुत हल्की थी। इस पर भी नौका पर श्वेत छत थी, जो नौकारोही को सूर्य की किरणो के झुलसा देनें वाले प्रभाव से वचाने के लिये वनी हुई थी। यह नौका महाराज देवनाम

की लडकी देवयानी की थी। देवयानी सोलह-सत्रह वर्ष की कुमारी थी। उसका छरहरा शरीर अभी गुलाब की कली की भाँति अधखिला, परन्तु शीघ्र ही एक प्रफुल्लित गुलाब के फूल की भाँति खिलने के लक्षण दर्शा रहा था।

जब नाव किनारे लगी तो देवयानी नौका पर से बाहर निकल आई। नौका से उतर सीढी पर खड़े हो पूर्व की ओर मुख कर उगते सूर्य भगवान् के दर्शन करने लगी। हृदय में ही भगवान् मार्तंड, जो उस समय पहाड तथा भवनो से ऊपर आ गये थे, को नमस्कार कर घाट की सीढियो पर चढ गई। सूर्य की किरणें उसके शरीर पर झिलमिल करती अथवा अठखेलियाँ करती हुईं प्रतीत हो रही थीं।

कुमारी के नख-शिख की बनावट, उसका अण्डाकार मुख, गुलाबी कपोल, हाथी-दाँत सम चमकता हुआ मस्तक, काले बादल सम केश और हिरणी की सी आँखें उसके उभरते सौन्दर्य को प्रकट कर रही थी। इस सौन्दर्य पर उसके माता-पिता सत्य ही अभिमान करते थे।

देवयानी सीढ़ियो पर चढकर एक क्षण के लिए किसी विचार में खडी रह गई। सामने उद्यान खुलता था, जो महल के साथ लगा हुआ था। कुछ विचार कर वह घूमी और दासियो की ओर देखने लगी। दानो दासियाँ नाव को घाट के एक ओर सीढ़ियों में लगे लोहे के कढ़ो से बाँध, राजकुमारी के पीछे-पीछे वहाँ आ खडी हुई थी। राजकुमारी ने उनसे कहा—"तुम जाओ। मैं उद्यान में घूमकर आऊँगी।"

दासियाँ अनिश्चित भाव से कुमारी को देखती रह गईं। उनमें से एक, जो अधिक साहस रखती थी, धीरे से कहने लगी—"राजकुमारी! आतप तीक्ष्ण, है और कुमारी के सुन्दर वर्ण को विवर्ण कर देगा।" देवयानी ने घूरकर उनकी ओर दृष्टिविक्षेप किया। क्रोध से उसके नासापुट फूलने लगे थे। दासियों ने भयभीत हो महल के उद्यान वाले द्वार की ओर प्रस्थान किया।

राजकुमारी उद्यान में जाकर मन्द गति से भ्रमण करने लगी। कुछ काल तक पेड़ो की छाया में घूमकर वह एक पेड के नीचे ठहर गयी। उसकी मुखमुद्रा अब भी गम्भीर थी। वह विचार निमग्न थी। जिस पेड के नीचे वह खडी थी, वह सेव का था। उस पर गुलाबी रग के फूल खिल रहे थे। भीनी-भीनी सुगन्धि से आकर्षित हुई मधु-मक्खियाँ, फूलो में सचित मधु के लोभ में, उनके आस-पास भिनभिना रही थीं। पुष्प-गन्ध से सुवासित वायुमडल में एक ऐसा सम्मोहन भाव था जो मनुष्य को वर्तमान से खीचकर भविष्य के स्वप्नलोक में ले जाने में शक्त था। राजकुमारी विचारो में लीन आत्मविस्मृत-सी हो अनजाने में सेव के गुलाबी फूलो को तोड तथा मसलकर फेंकने लगी। उसकी यह क्रिया उसके मन की असन्तुष्ट और आशाविहीन अवस्था की सूचक थी।

समीप ही एक गुलाब की झाड़ी थी। उस पर बडे-बड़े फूल खिल रहे थे। उसने एक बडे से फूल को तोड़ लिया और उसकी सुगन्धि को लेने के लिए नासिका के समीप ले जाकर एक लम्बा साँस खीचा। सुगन्धि उसके मस्तिष्क में चढ गई और उसमें मस्ती की मात्रा और भी बढ गई। उसने फूल को अपने कपोल से लगाया और उससे शीत-लता अनुभव की। इस पर वह अपने विचारो में और भी खो गई। वह स्वप्न लेने लगी। इस अचेतन-सी अवस्था में वह सेव के वृक्ष से फूल तोड़ती गई और उनको मसल-मसल कर भूमि पर फैंकती गयी। उसने इतने फूल मसल डाले कि उस जैसी कोमलागी और सुन्दरी से सौन्दर्य के ऐसे विनाश की कल्पना भी नही की जा सकती थी। स्वय कुसम सम कोमल, निर्दोष और स्वच्छ बाला भला कैसे ऐसे फूलो से ऐसा निर्दयता का व्यवहार कर सकती है। परन्तु वह तो स्वप्न ले रही थी, किसी दूर भविष्य का। वर्तमान से ओझल, भविष्य के आंचल में वास्तविकता से दूर वह विचर रही थी। क्षितिज के पार के किसी देश

काल और जनसमुदाय में उसके विचार जा चुके थे और अपने इन विचारो में ऐसा आनन्द अनुभव करती थी कि अपनी सुधबुध ही भूल गयी थी।

कई वर्ष हुए थे, उसने एक स्वप्न देखा था। एक अति सुन्दर पुरुष का जो एक चट्टान पर समाधिस्थ हो बैठा हुआ था। उसका मुख अद्वितीय आभा से देदीप्यमान था और ऐसा लगता था, मानो उसके मुख पर अलौकिक ओज टपक रहा हो। उसकी जटायें शिर पर अस्त-व्यस्त बँधी थी और चौथ का चाँद उनमें से दीप्त हो रहा था। चान्द की मन्द आभा, उसके मुख और शरीर के अवयवों पर पडकर उसके चारो ओर ओजमय आवरण बना रही थी। यद्यपि वह पुरुष समाधिस्थ था तो भी उसके मुख पर मन्दस्मित की झलक थी और वह अति प्रिय और मनोरम दिखाई दे रहा था। उसके प्रशस्त मस्तक से अकथनीय बद्धिमत्ता का परिचय मिलता था। उसकी लटाओ को बाँधने के लिए सर्प थे। एक बडा फणदार साँप उसकी ग्रीवा में माला का रूप धारण किए हुए था। कभी-कभी यह फणियर सर्प अपना सिर उठाता था, फण खोलकर सर-सर करता हुआ क्रोध में उस पुरुष के मुख पर देखता था और पश्चात् मानो उस पुरुष के सम्मोहन प्रभाव से मोहित होकर शान्त हो, सिर नीचा कर, एक कुण्डली में उसके विस्तृत वक्षस्थल पर लटक जाता था।

ऊँचा मस्तक, बडी-बडी, परन्तु बन्द आँखें, गोल परन्तु उभरी नाक, मुस्कराता अधर, लम्बा अण्डाकार मुख और दृढ़ चिबुक उस भली प्रकार निर्मित मुख के कुछ लक्षण थे। लम्बी ग्रीवा, चौडी छाती, सुदृढ़ और लम्बी भुजायें और पतली कमर उसके सुन्दर शरीर के द्योतक थे।

यह सब देवयानी ने, जब वह अभी बालिकामात्र ही थी, स्वप्न में देखा था और उस जादूभरे दृश्य से वह इतनी मोहित हुई थी कि

इतने वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी अपने मन से उसे निकाल नही सकी थी। इस स्वप्न का प्रभाव उसके मन पर बहुत गहरा हुआ था। साथ ही वह इस अद्भुत पुरुष के स्वप्न कभी-कभी पीछे भी देखती रही थी। इस कारण उसके हृदय पर उसका चित्र अधिक गहरा होता जाता था। सोये हुए वह उसे स्वप्नो में देखती थी और कभी जागते-जागते भी वह उसको अपने सम्मुख पाती थी।

वह विस्मय करती थी कि यह कौन पुरुष है और क्यों उसके सामने निरन्तर आता रहता है? उसने अपने जीवनकाल में किसी ऐसे व्यक्ति को अथवा उससे मिलते-जुलते किसी भी पुरुष को नही देखा था। इससे कह नही सकती थी कि ऐसा कोई पुरुष भूतल पर है भी, अथवा यह उसके मन का भ्रममात्र है।

उसने अनहोने भ्रम को अपने मन से निकाल देने का बहुत ही प्रयास किया था, परन्तु सफल नही हो सकी थी। यह दृश्य इतनी वार और इतनी स्पष्टता से उसके समक्ष आता था कि वह इससे घवराने लगी। इस पर भी यह इतना मनमोहक और आनन्दप्रद था कि जब वह उसके सामने नही होता था तो उसके पुनः प्रकट होने की उत्सुकता से कामना करती थी। इसके आ उपस्थित होने से वह अपने मन में शान्ति और शरीर में स्फूर्ति अनुभव करती थी। वह मन से चाहती थी कि यह दृश्य उसकी आँखो के सामने सदा बना रहे, और जब वह विलीन हो जाता था तो उसके मन में घवराहट और अशान्ति उत्पन्न हो जाती थी। स्वप्न आते-आते यदि उसकी नीद खुल जाती तो उसका मन चचल हो उठता था।

यह सब इतना महान् और उत्तम था कि इस पर विश्वास करना असम्भव प्रतीत होता था। इस कारण वह इसे अपनी अति अतरग सखियो को बतानें में भी सकोच करती थी। कभी-कभी तो यह सब उसके मन में इतना अधिक छा जाता था कि वह किसी के भी सम्मुख

कह जाने वाली होती थी, परन्तु उसी समय कोई उसके भीतर से उसका मुख बन्द कर देता प्रतीत होता था और यह उसके मन की ही वस्तु रह जाती थी। दूसरो की हँसी का लक्ष्य बनने का भय, सभव है, बड़ा कारण था, जिससे उसके हृदय का यह रहस्य हृदय में ही रह जाता और कोई भी उसका इस विषय में विश्वासपात्र नही बन सका। इस पर भी उसकी चिन्तामय अवस्था और प्राय विचारो में खोया रहना छुपा नही रह सका। उसकी सखियाँ उससे प्राय पूछती कि क्या कारण है कि वह एकान्त में भागती फिरती है। देवयानी उत्तर में मुस्करा भर देती और बहुत हुआ तो केवल यह कह देती—"तुम सब पागल हो। भला मुझको क्या चिन्ता हो सकती है ?"

इस पर भी जब वह बडी होने लगी और बाल्यावस्था से कौमार्यावस्था में प्रवेश करने लगी, तब उसको इन स्वप्नो और दृश्यो से विशेष आनन्द अनुभव होने लगा। साथ ही उसके मन में इस दृश्य से अधिक और अधिक सामीप्य प्राप्त करने की इच्छा होने लगी। वह चाहने लगी कि वह अपने स्वप्न-पुरुष की वास्तव में सगत प्राप्त कर सके। इस इच्छा की उद्भूति से और उसकी पूर्ति की आशा न होने से, मन में शोक और नैराश्य का अनुभव होने लगा।

उसके सज्ञान हो जाने पर और दिन-प्रतिदिन उसके मुखगाम्भीर्य को देख उसके माता-पिता के मन में उसके विवाह की चिन्ता उत्पन्न होने लगी। वे यह भी देख रहे थे कि राजकुमारी एकान्तसेवी होती जा रही है और सहेलियो की सगत भी उसे अरुचिकर-सी लग रही है। वे यह भी देख रहे थे कि नौका में एकाकी भ्रमण को वह अधिक पसन्द करने लगी है। इस सबका कारण वे जानना चाहते थे। इस दिशा में उन्होंने बहुत यत्न भी किया। उसकी सखियों को कहकर उसके रहस्य

को जानना चाहा, परन्तु देवयानी ने अपने रहस्य को भलीभाँति गुप्त रखा ।

उसकी सखियो में से कई तो देवयानी की सम-आयु और समाज में उसकी सम-श्रेणी की भी थी । वे जब उसको एकात की ओर भागती हुए देखती, अथवा जब वह उनके पास बैठी-बैठी खो-सी जाती, तब वे उससे हँसी-ठट्ठा करती । उससे प्रायः कहती—'सखि ! किसकी याद सताती है ? किसके लिए सूख-सूख कर तिनका होती जाती हो ? कौन सोभाग्यशाली है जो तुमको हमसे छीनकर लिये जा रहा है ?"

देवयानी अवाक् उनका मुख देखती रह जाती और जब कभी वे उसको वहुत तग करती तो वह खिन्न होकर कह देती—"तुम्हारा सिर है, जिसकी याद मुझको सता रही है ।" वह हँस देती और प्रायः लता-कुंजों में जाकर छुप वैठती और स्वप्नों में खो जाती ।

(२)

देवयानी अपने माता-पिता की इकलौती सतान थी । इस कारण भी उसके माता-पिता उसके विवाह के लिये अधिक उत्सुक थे । उनके परिवार की परम्परा का चलते रहना देवयानी के विवाह पर ही निर्भर था । अतएव वे उसके लिये पति ढूंढने में लग गए । उनकी इस विषय में चिन्ता धीरे-धीरे प्रसिद्धि पाने लगी । महाराज और महारानी के सम्बधियो, मित्रो, राज्याधिकारियो और पश्चात् धीरे-धीरे काश्मीर की सम्पूर्ण प्रजा को अवगत होने लगा कि राजकुमारी विवाहयोग्य हो गयी है । इस वरखोज की चर्चा काश्मीर राज्य से वाहर भी पहुँचने लगी । समाचार ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त और देवलोक में भी पहुँचा । देवलोक में देवर्षि नारद, जो महाराज देवनाम का परम मित्र था, भी इस समाचार को पा गया । इसको पाते ही वह काश्मीर चला आया । वह स्वयं देवनाम की लड़की की वर्तमान अवस्था और योग्यता देखना

कह जाने वाली होती थी, परन्तु उसी समय कोई उसके भीतर से उसका मुख बन्द कर देता प्रतीत होता था और यह उसके मन की ही वस्तु रह जाती थी। दूसरो की हँसी का लक्ष्य बनने का भय, सभव है, बडा कारण था, जिससे उसके हृदय का यह रहस्य हृदय में ही रह जाता और कोई भी उसका इस विषय में विश्वासपात्र नही बन सका। इस पर भी उसकी चिन्तामय अवस्था और प्राय. विचारों में खोया रहना छुपा नही रह सका। उसकी सखियाँ उससे प्राय पूछतीं कि क्या कारण है कि वह एकान्त में भागती फिरती है। देवयानी उत्तर में मुस्करा भर देती और बहुत हुआ तो केवल यह कह देती—"तुम सब पागल हो। भला मुझको क्या चिन्ता हो सकती है ?"

इस पर भी जब वह बडी होने लगी और बाल्यावस्था से कौमार्यावस्था में प्रवेश करने लगी, तब उसको इन स्वप्नो और दृश्यो से विशेष आनन्द अनुभव होने लगा। साथ ही उसके मन में इस दृश्य से अधिक और अधिक सामीप्य प्राप्त करने की इच्छा होने लगी। वह चाहने लगी कि वह अपने स्वप्न-पुरुष की वास्तव में सगत प्राप्त कर सके। इस इच्छा की उद्भूति से और उसकी पूर्ति की आशा न होने से, मन में शोक और नैराश्य का अनुभव होने लगा।

उसके सज्ञान हो जाने पर और दिन-प्रतिदिन उसके मुखगाम्भीर्य को देख उसके माता-पिता के मन में उसके विवाह की चिन्ता उत्पन्न होने लगी। वे यह भी देख रहे थे कि राजकुमारी एकान्तसेवी होती जा रही है और सहेलियो की सगत भी उसे अरुचिकर-सी लग रही है। वे यह भी देख रहे थे कि नौका में एकाकी भ्रमण को वह अधिक पसन्द करने लगी है। इस सबका कारण वे जानना चाहते थे। इस दिशा में उन्होने बहुत यत्न भी किया। उसकी सखियो को कहकर उसके रहस्य

को जानना चाहा, परन्तु देवयानी ने अपने रहस्य को भलीभाँति गुप्त रखा ।

उसकी सखियो में से कई तो देवयानी की सम-आयु और समाज में उसकी सम-श्रेणी की भी थी । वे जब उसको एकात की ओर भागती हुए देखती, अथवा जब वह उनके पास बैठी-बैठी खो-सी जाती, तब वे उससे हँसी-ठट्ठा करती । उससे प्रायः कहती—"सखि ! किसकी याद सताती है ? किसके लिए सूख-सूख कर तिनका होती जाती हो ? कौन सौभाग्यशाली है जो तुमको हमसे छीनकर लिये जा रहा है ?"

देवयानी अवाक् उनका मुख देखती रह जाती और जब कभी वे उसको बहुत तग करती तो वह खिन्न होकर कह देती—"तुम्हारा सिर है, जिसकी याद मुझको सता रही है ।" वह हँस देती और प्रायः लता-कुंजो में जाकर छुप बैठती और स्वप्नो में खो जाती ।

(२)

देवयानी अपने माता-पिता की इकलौती सतान थी । इस कारण भी उसके माता-पिता उसके विवाह के लिये अधिक उत्सुक थे । उनके परिवार की परम्परा का चलते रहना देवयानी के विवाह पर ही निर्भर था । अतएव वे उसके लिये पति ढूंढने में लग गए । उनकी इस विपय में चिन्ता धीरे-धीरे प्रसिद्धि पाने लगी । महाराज और महारानी के सम्बंधियो, मित्रो, राज्याधिकारियो और पश्चात् धीरे-धीरे काश्मीर की सम्पूर्ण प्रजा को अवगत होने लगा कि राजकुमारी विवाहयोग्य हो गयी है । इस वरखोज की चर्चा काश्मीर राज्य से बाहर भी पहुँचने लगी । समाचार ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त और देवलोक में भी पहुँचा । देवलोक में देवर्पि नारद, जो महाराज देवनाम का परम मित्र था, भी इस समाचार को पा गया । इसको पाते ही वह काश्मीर चला आया । वह स्वय देवनाम की लडकी की वर्तमान अवस्था और योग्यता देखना

चाहता था और देखकर इस विषय में देवनाम की सहायता करना चाहता था। उसको विदित था कि देवनाम का कोई पुत्र नहीं है और इस लड़की का पति ही काश्मीर का भावी राजा होगा। इस कारण पति का चुनाव न केवल लड़की के लिये ही महत्त्व का विषय था, न केवल काश्मीर के भविष्य के लिए विचार का विषय था, प्रत्युत अड़ोस-पड़ोस के राज्यो के लिये भी चिन्ता की बात हो सकती थी।

नारद चक्रधरपुर में आया तो महाराज देवनाम से मिला। उसने राजकुमारी से एकान्त में मिलकर उसके विषय में ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। उनकी स्वीकृति प्राप्त कर राजकुमारी को मिलने उसके आगार की ओर चल पड़ा। नारद देवयानी से परिचित था और वह देवर्षि को पहिचानती थी। वह पहिले कई बार चक्रधरपुर में आकर महाराज का आतिथ्य प्राप्त कर चुका था। पिछले कई वर्षों से वह इधर नही आया था। इस कारण राजकुमारी में हुए विकास और परिवर्तन से वह सर्वथा अनभिज्ञ था।

महल के सेवकों से पूछने पर उसको पता चला कि राजकुमारी नौका में भ्रमणार्थ गई हुई है। इस कारण वह राजघाट की ओर चल पड़ा। वह अभी उद्यान में प्रवेश भी नही कर पाया था कि उसको वे दासियाँ, जो राजकुमारी की नौका खेकर आ रही थीं भयभीत आती मिली। देवर्षि नारद ने उनसे राजकुमारी के विषय में पूछा। उन्होंने देवर्षि को पहिचाना और सम्मान से सिर झुकाकर उँगली से उद्यान की ओर सकेत कर दिया, और कहा—'भगवन्, उद्यान में भ्रमण कर रही है।"

नारद ने उनको आशीर्वाद दिया और स्वय उद्यान में देवयानी को ढूंढने चल पड़ा। उसने वहीं उससे भेंट करना उचित समझा। उसका विचार था कि एकात में वह देवयानी को स्वाभाविक अवस्था में देख सकेगा और उससे बात कर, उसके मन की अवस्था और बुद्धि की

प्रखरता का अनुमान भलीभाँति लगा सकेगा। इस कारण इस अवसर से प्रसन्नचित्त वह उद्यान में जा पहुँचा। दासियो ने सेव के पेडो के झुर-मुट की ओर संकेत किया था। नारद उधर ही गया और उसने देवयानी को वहाँ खडे सेव के फूलो पर अत्याचार करते देख लिया। वह उसको इस प्रकार एकान्त में खडे, ऐसी अस्वाभाविक वात करते देख दूर ही खडा हो गया और उसकी चेष्टाओ को ध्यान से देखने लगा। वह उसके शारीरिक विकास का निरीक्षण कर रहा था। कई वर्ष पूर्व उसने उसको देखा था। उस समय वह वालिकामात्र थी और कौमार्यावस्था में प्रवेश पाने ही वाली थी। अव वह उसके सम्मुख खिलती कली के समान कुमारी के रूप में थी जो एक युवती की अवस्था में पदार्पण करने जा रही थी।

देवयानी अपने स्वप्नो में लीन थी और उसको नारद के वहाँ आकर उसको देखते खडे रहने का ज्ञान नही हुआ। इस समय तक उसने अनेको फल तोडकर मसल डाले थे। इस पर भी उसको ज्ञान नही था कि उसनें क्या कर डाला है।

नारद ने उसके इस कार्य को पसन्द नही किया, परन्तु उसके इस प्रकार ध्यान में विलीन होने के कारण, उसको उसके अध्ययन का अवसर मिल गया। नारद ने अनुभव किया कि वह किसी गहन विचार में लीन है। वह अपने मन में सोचता था कि इस आयु में किसी युवक के विषय के अतिरिक्त और किस विषय का विचार इसके मन में हो सकता है? वह उसके विचार के विषय को समझने का यत्न करने लगा। कितनी देर तक राजकुमारी का यह कार्य चलता रहता, कहना कठिन है। इसका अन्त हुआ देवयानी की एक सखी के उसकी खोज में वहाँ आ जाने से।

वह सखी उससे मिलने आई थी। उसको अन्य सखियो से पता

चला था कि देवयानी नौका में विहार के लिये गई है। जब वह राजकुमारी से मिलने के लिए राजकुमारी के आगार के बाहर प्रतीक्षा कर रही थी तो उसे वे दासियाँ दिखाई दी थी, जो राजकुमारी की नौका लेकर लौटी थी। सखी ने उनसे पूछा तो ज्ञात हुआ कि देवयानी उद्यान में है। इस कारण वह उद्यान में जा पहुँची। उद्यान में उसने राजकुमारी को एक पेड के नीचे खडे फूलो को मसलते देखा। साथ ही उसने एक पुरुष को उसकी ओर देखते हुए खडे देखा। वह पुरुष को देख वहाँ ही ठिठककर खडी रह गयी।

सखी नारद को नही पहिचानती थी। उसने उसको पहिले कभी नही देखा था। वह अभी-अभी गुरुकुल से, कई वर्ष वहाँ रहकर, लौटी थी। जब वह गुरुकुल गयी थी तो वह बालिकामात्र थी।

राजकुमारी और एक पुरुष को देख उसने अनुमान लगाया कि इस पुरुष से मिलने के लिये ही वह उद्यान में आई है। यह पुरुष यद्यपि प्रौढावस्था में प्रवेश कर चुका था, इस पर भी अपने में एक विशेष प्रकार का आकर्षण रखता था। उन दोनो को इस स्थान पर देखकर उसे देवयानी के खोया-खोया-सा रहने का रहस्य आज पता चला। सखी के मन में आया कि यह पुरुष अवश्यमेव राजकुमारी से प्रेम प्रकट करने आया है। इस विचार के फुरते ही वह उत्सुकतावश चुनार के एक बडे पेड के पीछे छुप गयी, जिससे कि वह उनकी चेष्टाओ को देख सके। वह अपने मन में राजकुमारी की हँसी उडाने की योजना सोचने लगी। उसे यह बहुत ही विचित्र प्रतीत हुआ कि एक बडी आयु का पुरुष एक नववयस्का राजकुमारी से विवाह की बात करे। वह विचार करने लगी कि यह बात एक भारी हँसी का विषय होगी। नारद उसको चालीस वर्ष की आयु का प्रतीत हुआ था। ऐसा विचार वह उनकी बात करने की प्रतीक्षा करने लगी। कुछ देर वहाँ खडी रही, परन्तु उसे विस्मय हुआ जब उसने देखा कि न तो राजकुमारी ने फूल

तोडने बन्द किये और न ही वह पुरुष आगे बढा। उसने देखा कि दोनो में से कोई भी कुछ नही कहता। इस अनोखी स्थिति को देखकर विस्मय करती हुई वह पेड़ के पीछे से बाहर निकल आई और खिल-खिलाकर हँस पडी।

इस हँसी से राजकुमारी की स्वप्न-समाधि भग हुई, जिससे उसको क्रोध चढ आया। उसके आनन्द में विघ्न जो पड गया था। राजकुमारी सखी की घृष्टता से क्रोध में आ उसको दड देने के लिए उसकी ओर लपकी, परन्तु चपल सखी कूदकर पीछे हो गयी और इस विनोद के एक तीसरे साक्षी की उपस्थिति का ज्ञान कराने के लिये, हाथ के अगूठे से उसकी ओर सकेत कर दिया। नारद उन दोनो को देखकर हँस पडा था।

देवयानी ने नारद की ओर देखा और उसे पहिचान अपने आन्त-रिक भावो को तत्काल भूल नारद के पास जाकर बोली—"भगवन्, पिता जी महल में है।"

देवयानी ने समझा था कि देवर्षि पिता जी से मिलने आये हैं। उसको यह सुन विस्मय हुआ, जब नारद ने कहा—"देवयानी! मैं तुम्हारे पिता से मिल आया हूँ, अब तुमसे मिलने आया हूँ।"

उसने विस्मय प्रकट कर पूछा—"महाराज! किस कार्य से ?"

देवयानी को नारद के उससे मिलने आने की बात सुन भारी विस्मय हुआ था। वह उसके आशय का अनुमान नही लगा सकी थी। वह उसको बाल्यकाल से जानती थी। वह जानती थी कि वह उसके पिता के मित्र हैं। इस पर भी उससे उद्यान में एकान्त में मिलने आना विस्मयकारक था।

नारद ने जब देवयानी की चिन्तित मुद्रा में उससे अपने प्रश्न का उत्तर पाने को उत्सुक देखा, तो कहा—"देवयानी! क्या तुम नही समझती कि अब तुम्हारे विवाह का समय आ गया है ?"

देवयानी का मुख लज्जावश रक्ताभ हो गया और उसकी आँखें अनायास ही अवनत हो गयीं। नारद ने अपना कहना जारी रखा और कहा—"मुझको पता चला है कि तुम्हारे माता-पिता इस विषय में भारी चिन्ता कर रहे हैं। मैं यह अनुभव करता हूँ कि मुझको उनकी इस बात में सहायता करनी चाहिये।"

देवयानी कुछ क्षण मौन रही और फिर धीमी आवाज़ में, जिससे दूर खड़ी उसकी सखी न सुन सके, उसने कहा—"भगवन्! उन्होंने इस बात की चर्चा मुझसे कभी नहीं की।"

"और यदि वे इस विषय की चर्चा करते तो तुम क्या कहती?"

"मैं उनसे अपने वास्तविक विचार बताने का यत्न करती, जिससे उनकी चिन्ता मिट जाती।"

नारद मुस्कराया। उसने समझा कि उसका अनुमान सत्य निकला है। सचमुच ही देवयानी ने अपने भावी पति का निर्णय कर लिया है। इस पर उसने पूछा—"बेटी! क्या तुम मुझसे अपने मन की बात कह सकोगी? मैं समझता हूँ कि तुमको कुछ आपत्ति अथवा सकोच नहीं होना चाहिये। वह कौन है?"

"देवर्षि! आप सदा मेरे साथ पितातुल्य व्यवहार करते रहे हैं। मेरे मन में भी आपके प्रति वैसा ही सम्मान है। इस कारण मैं ठीक बात बताने में हानि नहीं समझती, परन्तु मुझको भय है कि आप मुझको कहीं निपट मूर्ख न मान बैठें। इस पर भी यदि आप कहते हैं, तो मैं अपनी कथा कहती हूँ। साथ ही आशा करती हूँ कि आप मुझ पर अनुग्रह रखेंगे। जैसा मैं अनुभव करती हूँ, ठीक वैसा ही वर्णन करूँगी। आज से लगभग पाँच वर्ष पूर्व मुझको एक स्वप्न दिखाई दिया था और उसमें मैंने एक व्यक्ति को एक चट्टान पर समाधि लगाये बैठे देखा था। उसकी रूपरेखा और उसकी भव्यता मैं आज तक भूल न सकी। मुझे ऐसा लगता है जैसे वही पुरुष मेरा पति होगा।"

"उसके साक्षात् दर्शन कभी किये है तुमने ?"

"नही, मैने कभी उनको प्रत्यक्ष नही देखा। इस पर भी मै सदैव उनके दर्शन करती हूँ। सुप्त-अवस्था में मैं उनके स्वप्न लेती हूँ और जागृत होती हूँ तो विचारो में उसे पाती हूँ।"

"यह सब कुछ मिथ्या और माया भी तो हो सकता है। सम्भव है कि स्वप्न-पुरुष का कोई अस्तित्व ही न हो !"

"यह कैसे हो सकता है ? मैने उनको इतनी बार और इतना स्पष्ट देखा है कि मै उनके अस्तित्व में विश्वास किये बिना रह ही नही सकती। उनके मोहक रूप ने मेरे मन पर ऐसी गहरी छाप लगाई है कि मैं अब अन्य किसी को अपना पति ग्रहण करने की बात सोच ही नही सकती।"

इससे नारद को घबराहट और चिन्ता होने लगी और वह चुप रह गया। वह मन में सोचने लगा कि इसके स्वप्नो का पुरुप संसार में शायद है ही नही और हो सकता है कि अपनी काल्पनिक भावनाओ के कारण और भावुकता के वश वह कुमारी ही रहे। उसके ऐसा रह जाने का परिणाम काश्मीर राज्य और उसके पडोसी राज्यो पर कितना भयकर हो सकता है, यह अनुमान कर वह कांप उठा। वह चिन्ताग्रस्त होकर महल की ओर लौट गया। जाते हुए वह मन में विचार कर रहा था कि देवयानी के माता-पिता को इस स्थिति से अवगत कर देना चाहिये। उसको लडकी पर भी दया आ रही थी। कही उसके स्वप्न मिथ्या सिद्ध हुए तो उसकी क्या अवस्था होगी ! इस विचार से उसकी चिन्ता उत्तरोत्तर वृद्धि पा रही थी।

जब नारद चला गया तो देवयानी वही खडी रह गयी। वह अपने मन की बात देवर्षि को बताने से अब पश्चात्ताप करने लगी थी। वह सोचने लगी थी कि अब उसकी कथा का उसके माता-पिता को पता चल जायेगा और फिर उसकी सखियो को भी विदित होने से न रहेगा।

वे सब उसको मूर्ख समझेंगे और उसकी खिल्ली उड़ायेंगे। वह इसी उधेड़बुन में वहाँ खड़ी थी कि उसकी सखी उसके समीप आ पूछने लगी—"सखी, कौन था यह ?"

देवयानी की सखी का नाम सुमति था। वह उसकी परम सखी थी और जगत्-विख्यात वैय्याकरण पाणिनी की लड़की थी। जब सुमति ने पूछा तो देवयानी सोचने लगी कि उसको बतावे अथवा न। यदि बतावे भी तो कितना भर। देवयानी अभी निश्चय नही कर पाई थी कि सुमति ने अपना प्रश्न दुहरा दिया। उसने पूछा—"इतनी देर तक यह वृद्ध तुम से क्या बातें कह रहा था ? जब तुमने नमस्कार की थी वह मुस्करा रहा था और जाने के समय वह निराश तथा क्रुद्ध प्रतीत होता था।"

"हाँ," देवयानी ने कुछ बताने पर विवश होकर कहा—"मैंने भी ऐसा ही अनुभव किया है। यह मेरे विवाह की चर्चा कर रहा था और उस विषय में मेरे विचार सुनकर रुष्ट हो चला गया है।"

सुमति खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसने समझा कि वह राजकुमारी से स्वय विवाह करने को कह रहा था और राजकुमारी ने न कर दी है। अत हँसकर उसने पूछा—"वह है कौन ?"

देवयानी ने देवर्षि का परिचय दिया तो सुमति के विस्मय का ठिकाना नही रहा। उसको देवलोक के सगीताचार्य के, देवयानी से विवाह के लिये, इतनी दूर आने पर विस्मयजनक आनन्द अनुभव हुआ। इस अर्ध-वृद्ध देवता की इस धृष्टता की बात सुन वह मन में हँसी और महल के उस भाग की ओर भाग गई जहाँ अन्य सखियाँ देवयानी की प्रतीक्षा कर रही थी।

वह इस घटना से लाभ उठाकर देवयानी की हँसी उड़ाना चाहती थी। देवयानी उसको हँसते हुए भागते देख उसके मन के भावो को ताड़ गयी। वह उसे रोककर सत्य बात बताना चाहती थी, परन्तु सुमति

तब तक आँखों से ओझल हो चुकी थी। यह देख देवयानी के मन में सखियों के वहाँ आ उससे अनर्गल हँसी-ठट्ठा करने का भय समा गया। इससे वह महल के दूसरे पक्ष की ओर चली गई।

वह अन्यमनस्क भाव से महल के उस भाग में जा पहुँची जहाँ नारद उसके माता-पिता से बात-चीत कर रहा था।

(३)

नारद ने देवयानी के पास से आकर देवयानी के स्वप्न-पुरुष की बात उसके माता-पिता को बता दी। पूर्ण कथा बताकर उसने कहा—"मित्र ! उसके मन की यह अवस्था अति चिन्तनीय है।"

नारद द्वारा वृत्तान्त सुनकर महाराज और महारानी भी चिन्ता सागर में गोते खाने लगे। फिर कुछ रुककर देवनाम ने पूछा—"इस स्वप्न-पुरुष का उसने क्या विवरण दिया है ?"

नारद चिन्ता के कारण यह पूछना ही भूल गया था। वह तो घबराहट में ही वहाँ से चला आया था। विवरण जानने के लिए नारद देवयानी को बुलाने की बात कहने ही वाला था कि वह अपनी सखियों से छुपने के लिए उसी आगार में घुस आई, परन्तु अपने तीनों बड़ों का गम्भीर वार्त्तालाप में मग्न देख, वहाँ से लौट पड़ी और आगार से निकल भागना चाहती ही थी कि उसकी माँ ने उसको वापिस बुला लिया। नारद को अपने मन का रहस्य बताने के तुरन्त पीछे वह उसके सामने उपस्थित होना नहीं चाहती थी, परन्तु माँ के बुलाने पर उसको रुकना पड़ा। वह लौटकर उसके सम्मुख खड़ी हो गयी।

"बैठो" माँ ने कहा। देवयानी अपनी माँ के समीप बैठ गई और भूमि की ओर देखने लगी।

'यह सत्य है क्या ?"

"क्या माँ ?"

"देवर्षि कह रहे हैं कि तुम किसी के स्वप्न देखा करती हो। उससे तुम विवाह भी करना चाहती हो।"

"हाँ! माँ!"

"वह कौन है?"

"मैं नही जानती। हाँ, उसके रूप को पहिचानती हूँ।"

"तुमने उसको कहाँ देखा है?"

"केवल स्वप्नो में।"

"तुम कैसे जानती हो कि वह वास्तव में कही है? यह केवल भ्रम भी तो हो सकता है!"

"माँ! दृश्य सदैव इतना स्पष्ट, सुन्दर और रमणीय होता है कि इसके असत्य होने का विश्वास नही होता। मैं नित्य इस दृश्य को देखती हूँ और मुझको इससे आनन्द मिलता है।"

"तुम पागल हो रही हो, देवयानी!" माँ ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा—"मुझको भय है कि तुमको किसी रुग्णालय में न भेजना पडे। कैसे तुम ऐसी बातों पर विश्वास कर सकती हो, जो तुमको केवल स्वप्नो में दिखाई देती हैं? जीवन सत्य है। स्वप्न सत्य नहीं है। विवाह और पति भी सत्य होने चाहियें। स्वप्न की वस्तुओ का अस्तित्व नही होता।"

इस समय पिता ने बात टोककर कहा—"पहिले इसको उसकी रूपरेखा वर्णन करने दो। शायद इससे समस्या सुलझ सके।"

माँ ने सशय में सिर हिला दिया, परन्तु नारद ने देवनाम के प्रस्ताव का समर्थन कर दिया और उससे पूछा—" बेटी देवयानी! तनिक उसकी रूपरेखा तो वर्णन करो। देखें वैसा पुरुष कोई है भी या नही।"

देवयानी ने आँखें मूँद ली और धीरे-धीरे अपने स्वप्न-पुरुष की रूपरेखा वर्णन कर दी। वैसी ही, जैसी वह स्वप्नो में देखा करती थी। उसने कहा—"मैंने उसको इतनी बार देखा है और

उसके व्यक्तित्व से इतना प्रभावित हुई हूँ कि मै उससे गहरा प्रेम करने लगी हूँ। मैं यह अनुभव करती हूँ कि मैं उसको छोडकर किसी अन्य से विवाह नही कर सकूंगी।"

दोनो वृद्धजन लडकी का हठ देखकर चकित रह गये और कुछ काल तक वे दोनो उसका मुख देखते रहे। नारद उस स्वप्न-पुरुष की रूपरेखा सुन अपने को उत्साहित-सा अनुभव करने लगा। उसने कहा—"परन्तु देवयानी, यह चित्र जो तुमने वर्णन किया है, महादेव शिव का है और उसका तो परलोक-गमन हो चुका है। वह इस मृत्युलोक में अब विद्यमान नही। भगवान् शिव देवासुर-सग्राम में एक विख्यात व्यक्ति था। उन दिनों वह युवा था, पश्चात् उसका विवाह पार्वती से, जो हिमाचल प्रदेश के राजा की लडकी थी, हुआ था। आयु पूर्ण होने पर दोनो स्वर्ग सिधार गये। इस घटना को चिरकाल हो चुका है। इस समय उसका पति के रूप में चिन्तन करना न केवल व्यर्थ है, प्रत्युत आपत्तिकारक भी है। काश्मीर के शक्तिशाली राजा देवनाम की कन्या एक भ्रम के पीछे पडी रहे कुछ भला प्रतीत नही होता।"

देवयानी के सम्मुख यह एक नवीन परिस्थिति थी। जहाँ वह अपने इष्टदेव को महादेव शिव समझ आनन्द से पुलकित हो उठी थी, वहाँ उसके इस मृत्यलोक से बाहर होने की बात सुन निराश भी हुई थी। इस कारण वह अपने मन की इस द्विविध अवस्था में चुप थी। नारद ने अपनी बात की व्याख्या करते हुए फिर कहा—"देवयानी! सुनो! तुमने जो विवरण अपने इस स्वप्न-पुरुष का दिया है उससे यह बात स्पष्ट ही है कि वह चित्र महादेव शिव का ही है। मैं अपने ज्ञान से जानता हूँ कि वह अब इस लोक में नही है और उसकी प्राप्ति असम्भव है। इस कारण उसका चिन्तन व्यर्थ है। तुम उसके लिये जीवनभर कुंवारी रह सकती हो, परन्तु काश्मीर की वर्तमान अवस्था में तुम्हारा यह निर्णय अत्यन्त हानिकर होगा। तुम जानती हो कि तुम्हारा कोई

भाई नही है। अतएव तुम्हारे माता-पिता तुम्हारी सन्तान के लिये उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हैं। राज्य का उत्तराधिकारी वही होगा।

"यदि तुमने विवाह नही किया तो तुम्हारे पिता के सम्बन्धी राज्य की लालसा में आपस में लड मरेंगे। यहाँ गृहयुद्ध होगा और देवलोक की भाँति यहाँ भी विदेशियो का राज्य स्थापित हो जावेगा।

"इसका प्रभाव केवल काश्मीर पर ही नही, प्रत्युत सपूर्ण आर्य-जगत् पर पडेगा। इस कारण तुमको अपना कर्त्तव्य पहिचानना चाहिए। गान्धार, कामभोज और देवलोक तो पहिले ही म्लेच्छो के अधिकार में जा चुके हैं। तुम्हारे इस भ्रममूलक व्यवहार के कारण काश्मीर भी उनके अधिकार में चला जावेगा। पश्चात् ब्रह्मावर्त और आर्यावर्त के लिये भी भय उत्पन्न हो जावेगा। मेरी सम्मति मानो, तो इस विचार को छोड दो, और कही विवाह कर लो। यदि तुम चाहो तो मैं इस कार्य में तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ। मैं ज्ञात भूमडल में कई वार घूम चुका हूँ और प्रत्येक राजकुमार को जानता हूँ।"

देवयानी उत्तर देने के स्थान उठ खडी हुई और शीश नवा, नमस्कार कर आगार से बाहर चली गयी। नारद ने देखा कि उसकी आँखें डवडवा रही है। इससे उसने उसको रोकना उचित नही समझा। वह उसको विचार करने का अवसर देना चाहता था।

देवयानी अपने को दो परस्पर विरोधीभावनाओ के बीच पिस रही अनुभव करती थी। एक भावना थी उस रूपछवि के प्रति जो वार-वार उसको स्वप्नो में दिखाई देती थी। दूसरी भावना थी अपने देश तथा धर्म के प्रति कर्त्तव्य की। देवर्षि ने जो चित्र उसके सम्मुख खीचा था, उसका विचार कर वह काँप उठी। इन दो भावनाओ के सघर्ष को न सह सकने के कारण ही आँखो से आँसुओ की अविरल धारा वह निकली थी। मन से वह अपने स्वप्न-पुरुष को आत्मसमपर्ण कर चुकी थी और वह इसके लिये जीवनभर अविवाहित रह सकती थी, परन्तु वह

सोचती थी कि क्या-अपने देश, धर्म और जाति के लिये कर्त्तव्यपालन करने में इतना त्याग नही करना चाहिए। इस प्रकार अनिश्चित मन अपने पिता के आगार से निकल अपने शयनागार की ओर जा रही थी कि मार्ग में उसकी सखियो ने उसे घेर लिया।

उद्यान से भागकर सुमति सखियो के पास गयी थी और उन सबको अपनी धारणा अनुसार नारद की कथा सुना, सबको साथ ले उद्यान मे जा पहुँची। वहाँ राजकुमारी को न पा सब महल में उसे ढूंढने लगी। उन्होने उसको अपने पिता के आगार में बैठा देख यह समझ लिया कि अभी भी उसके विवाह की चर्चा चल रही है। वे समझती थीं कि राजकुमारी पर नारद से विवाह कर लेने के लिये दबाव डाला जा रहा है। इस कारण वे सब उस आगार से कुछ दूर देवयानी के आगार के मार्ग पर, उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। जब वह पिता के पास से आयी तो सब उसको घेरकर खडी हो गयी और हँसी-ठट्ठा करने का विचार करने लगी, परन्तु जब उन्होने राजकुमारी की आँखो में डबडबाते आँसू देखे तो अवाक् रह गयी। उन्होने घेरा तोड़ दिया और उसको अपने आगार की ओर जाने दिया।

देवयानी को दुःखी देख सबके हृदय में टीस-सी उठी। उन्होने सुमति से प्राप्त ज्ञान के आधार पर समझा कि उसके माता-पिता ने उसका विवाह नारद से कर देना स्वीकार कर लिया है। सुमति के अनुमान के आधार पर उनको यह लगा कि देवयानी ने नारद से विवाह करने से न कर दी है और वह इससे दुःखी हो रोती हुई अपने आगार में जा रही है। उसके दुःख का आदर कर कोई भी उसके साथ नही गई।

वास्तविक परिस्थिति के ज्ञान से महाराज, महारानी तथा नारद अति विक्षुब्ध हो उठे थे। महाराज और महारानी अपनी लड़की से अति स्नेह रखते थे और वे लड़की की इच्छा का आदर करते, यदि उसके

प्रेम का भाजन इस ससार में जीवित होता। अब तो थोथी भावनामात्र थी और वे समझ नही पा रहे थे कि किस प्रकार राजकुमारी को इस मिथ्या भावना से मुक्त करायें। नारद हताश नही हुआ। उसको देवयानी के उच्च आदर्शो के लिये त्याग की भावना में विश्वास था। उसने अपने मित्र देवनाम को सात्वना देते हुए कहा—"मै लडकी के शुभ विचारों, उसकी श्रेष्ठ शिक्षा और उसकी पारिवारिक धार्मिक प्रवृत्तियो पर विश्वास रखता हूँ। मैने उसके सम्मुख पूर्ण समस्या रख दी है और मुझको विश्वास है कि वह अपनी भ्रममूलक भावनाओ को त्याग सकेगी। उसको काश्मीर राज्य के उत्तराधिकारी पाने की आवश्यकता अनुभव होगी और वह विवाह के लिये उद्यत हो जावेगी।"

"मै भी यही आशा करती हूँ।" महारानी ने अपने मन की दुर्बलता और सशय को दबाते हुए कहा—"वह सदा आज्ञाकारिणी पुत्री रही है। यदि उसको इस विषय की गम्भीरता का ज्ञान करा दिया गया तो वह अपना कर्त्तव्य समझ, मान जावेगी।"

"हमको उसे विचार करने का अवसर देना चाहिये। जब वह पूर्ण परिस्थिति पर विचार करेगी तो वह हमारे प्रस्ताव को स्वीकार कर लेगी। इतने में हमको उसके विवाह की कोई निश्चित योजना बना लेनी चाहिये और वह योजना उसके सम्मुख रखनी चाहिये। कोरी शिक्षा से काम नही चलेगा। यदि कोई आशापूर्ण योजना उसके मनन करने के लिये दी गई तो वह निराश नहीं होगी। अन्यथा वह जीवन को नीरस और लक्ष्यहीन पाकर दु ख अनुभव करेगी।"

"परन्तु हमारे सम्मुख उसके योग्य अभी कोई लडका भी तो नहीं है।"

नारद के मन में एक प्रस्ताव उठ रहा था। उसने वह प्रस्तुत कर दिया। उसने कहा—"मै चाहता हूँ कि हम उसके लिये स्वयवर का आयोजन करें। इसकी तिथि आज से एक वर्ष पश्चात् रखें। इस काल में वह अपने पुराने लगाव को भूलने का प्रयत्न करेगी और साथ ही

अपनी इच्छा अनुसार अपने पति चुन सकने की आशा में लीन हो जावेगी।

"पिछले कुछ स्वयवरो में अशान्ति विघटित हुई है। इस पर भी हम पूर्ण यत्न करेंगे कि हमारी सेना इस अवसर पर किसी प्रकार की दुर्घटना न होने दे। इस प्रकार अपनी लडकी को अपना साथी ढूंढने की स्वतन्त्रता देकर हम अपना कर्त्तव्य पालन कर सकेगे।"

महाराज देवनाम इस प्रस्ताव से प्रसन्न हो उठा, पर महारानी अभी भी चिन्तित थी। वह समझती थी कि स्वयंवर से उसकी लडकी का भाग्य तथा देश और धर्म का भविष्य जूए की वाजी पर लगा देने वाली वात होगी।

नारद ने समझाया कि निमत्रण केवल उन राजाओ-महाराजाओ को भेजा जावेगा जिनके विषय में कुछ ज्ञात होगा और जिन पर हम विश्वास रखते होगे। उनमें से जिसको वह वरेगी, हमारी स्वीकृति प्राप्त होगी। मैं आर्यावर्त और ब्रह्मावर्त के अधिकाश राजकुमारो और युवराजो को जानता हूँ। जिनके विषय में हम ठीक समझेंगे उनको ही निमत्रण भेजेंगे।

जो कठिनाई उत्पन्न हो गई थी उसका यह सुझाव अच्छा माना गया। चित्रकार वुलाये गये जिनको राजकुमारी के वहुत से चित्र वनाने की आज्ञा दी गयी। यह विचार किया गया कि प्रत्येक निमत्रण-पत्र के साथ राजकुमारी का चित्र, उसकी शिक्षा और अन्य योग्यताओ का विवरण भेजा जावे।

आमंत्रितो से भी यह निवेदन कर देने का निश्चय किया गया कि वे भी अपने आने से पूर्व अपने विषय में पूर्ण वृत्तान्त और अपना चित्र भेज दें, जिससे राजकुमारी अपना निर्णय करने में भलीभांति समर्थ हो सके।

(४)

प्रस्तुत कथा का काल अंतिम महाप्लावन के सहस्रो वर्ष पीछे का है। जब प्लावन का जल उतर गया, मनु की संतान बहुत बढ गई और उस संतान का एक भाग वाह्लक देश में, जो काश्मीर के दक्षिण में था, आकर बस गया। उन्होने इस देश का नाम ब्रह्मावर्त रखा। इनमें से कुछ और मनचले निकले और वे और आगे बढ़े और उन्होने अगले देश का नाम आर्यावर्त रख दिया। प्लावन के समय जो लोग हिमालय की उपत्यकाओ में रहते थे वे देवता कहलाये। जल उतर आने पर वे उपत्यकाओं से उतर आये और नदियो के मैदानो से होते हुए विन्ध्याचल के समीप जा पहुँचे। इस समय उनका विन्ध्याचल के पार रहने वाले राक्षसो से संघर्ष आरम्भ हुआ, जो देवासुर-संग्राम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। राक्षस दक्षिण समुद्र में स्थित एक ऊँचे और विशाल द्वीप के रहने वाले थे और प्लावन में बच गये थे। जल उतर जाने पर ये उस भूमि पर, जिसको आज भारत कहते हैं, आ गये और उत्तर की ओर बढते-बढते विन्ध्याचल के पर्वतो में पहुँच देवताओ से टकरा गये।

इस समय मनु की संतान भी पश्चिम की ओर से चलती हुई आर्यावर्त देश में आ पहुँची। देवताओ को राक्षसो से युद्ध करने के लिए सहायकों की आवश्यकता थी। इस कारण उन्होंने मानवो का स्वागत किया। उनको वेद अर्थात् ज्ञान दिया और अपने मित्र बनाकर राक्षसो पर विजय प्राप्त की। देवताओं की असुरो पर विजय तो हो गयी परन्तु ब्रह्मावर्त और आर्यावर्त पर मनुसन्तान का, जो आर्य कहाये, राज्य हो गया। देवता अपने निवासस्थान देवलोक से ही सन्तुष्ट रहे। इस प्राचीन काल में आर्यो और देवताओं ने अनेक युद्ध लड़े और म्लेच्छों और राक्षसो से इस देश का उद्धार किया। इन युद्धो में अन्तिम लंका विजय का युद्ध था। दशरथपुत्र राम ने लंका के राजा रावण को पराजित कर आर्य संस्कृति की दुंदुभि बजाई।

काल व्यतीत होता गया और मानवो का प्रभाव बढने से देवता दुर्बल होते गए। धीरे-धीरे देवता केवलमात्र देवलोक से ही सतुष्ट रहने लगे। मनु की वह सतान, जो पहिले पूर्व की ओर नही आई थी, अब सहस्रो वर्ष पीछे इस ओर अभिमुख हुई। यद्यपि पहिले आये हुए भी मनु की सन्तान थे, परन्तु वे देवताओ की सगत से सभ्य और ज्ञानी हो चुके थे। जो लोग दूसरे दल के साथ आये, वे अभी भी म्लेच्छ थे। वे सुसंस्कृत भाषा का व्यवहार नही जानते थे। इन म्लेच्छो ने मध्य एशिया में एक तुखार नाम का शक्तिशाली राज्य स्थापित कर लिया था और वहाँ से ब्रह्मावर्त्त के हरे-भरे मैदानो की ओर बढने आरम्भ हो गये थे। ये चन्द्रवशी थे।

चन्द्रवशियो ने कामभोज, जो आज अफगानिस्तान के नाम से जाना जाता है, विजय कर लिया था। वहाँ से वे गान्धार पर भी अधिकार जमा चुके थे। गान्धार के एक सरदार का लडका नहुष, देवलोक की ख्याति सुनकर, वहाँ जा पहुँचा और अपना राज्य वहाँ स्थापित कर बैठा।

इस समय से सहस्रो वर्ष पूर्व काश्मीर की वादी पानीसे भरी हुई एक सरोवर थी। इसका नाम सतिसर था। कश्यप ऋषि की योजनानुसार इस सरोवर के किनारे के पहाडो को वाराहमुख के समीप तोडकर जल निकाल दिया गया और सरोवर की भूमि जलहीन होकर एक सुन्दर हरी-भरी वादी वन गई थी। यह वादी कश्यप ऋषि के नाम पर काश्मीर के नाम से विख्यात हुई। इस कथाकाल में काश्मीर में आर्यो का राज्य था। देवलोक में चन्द्रवशी नहुष राज्य करता था। गान्धार में नहुष का एक सम्वन्धी काकूप राजा था। जव देवलोक और गान्धार में चन्द्रवशियो का राज्य स्थापित हो गया तव देवनाम को काश्मीर की दोनो सीमाओ पर एक भारी सेना रखनी पड़ी। देवलोक में नहुष का राज्य हो जाने पर वहुत से देवता भागकर काश्मीर

में आ गये थे। इन्द्राणी शची भी काश्मीर राज्य में आकर ठहरी हुई थी। इस प्रकार देवनाम का उत्तरदायित्व बहुत बढ गया। देवर्षि नारद देवलोक और काश्मीर में आता-जाता रहता था और वह देवलोक के उद्धार की योजना काश्मीर की सहायता से सम्पन्न करना चाहता था। इस बीच में देवयानी के विवाह की समस्या आ उपस्थित हुई।

देवलोक में नहुष के राज्य से अत्याचार और आतक फैल रहा था। जो देवता भाग सकते थे भाग गए थे। जो किसी कारण से भागने में असमर्थ थे, वहाँ नहुष के साथियो के अत्याचार के नीचे पिस रहे थे। देवलोक का राजा इन्द्र नहुष का वन्दी था और उनके द्वारा कमलसर नाम के दुर्ग में कडी देखभाल में रखा हुआ था।

नहुष और उसके साथी देवताओं की सभ्यता और सस्कृति के लिए कोई आदरभाव नही रखते थे। न वे स्वय यज्ञादि कर्म करते थे, न वे उनके करने की स्वीकृति किसी को देते थे। काश्मीर राज्य में आर्य सस्कृति, जो देव सस्कृति की पुत्री थी, प्रचलित थी। काश्मीर के महाराज देवनाम देवलोक की दुर्दशा की वात जानकर बहुत दु ख अनुभव करते थे। इस सहानुभूति के कारण नारद, जो प्रच्छन्न रूप से देवलोक की अवस्था से अवगत रहता था, काश्मीर के कार्यो में रुचि लेने लगा था। वह इनसे सहायता प्राप्त करने की आशा करने लगा था।

जिस दिन देवयानी को यह पता चला कि उसका स्वप्न-पुरुष वास्तव में विद्यमान नही तो उसको अति दु ख हुआ। उस दिन और अगले दिन वह अपने आगार से वाहर नही निकली और देवर्षि के वचनो पर मनन करती रही। वह यह मानती थी कि कुल का क्षय होने देना न केवल धार्मिक विचार से पाप है, प्रत्युत उस काल की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के कारण दु ख और क्लेश का कारण वन सकता है। प्राचीन आर्य सस्कृति के विनाश का आरम्भ, जो कामभोज और गान्धार के पराजित होने से हुआ था, अव देवलोक के नहुष के

अधिकार में चले जाने से, और भी विस्तार पा रहा था। वैदिक विचारधारा का स्रोत देवलोक ही थी। मानव समाज जब-जब ज्ञान की आवश्यकता में होता था, वह इन्द्रादि देवताओं की शरण में जा, तपस्या कर, ज्ञान और शक्ति प्राप्त करता था। अब देवलोक के ही विनाश से वह ज्ञानस्रोत विलुप्त हो गया था। इससे काश्मीर का उत्तरदायित्व बढ गया था।

देवयानी विचार करती थी कि ऐसी अवस्था में यदि काश्मीर के उत्तराधिकारी की अनुपस्थिति हुई तो रहा-सहा धर्म तथा संस्कृति का आधार भी परतन्त्र होने से नष्ट हो जावेगा। इससे उसका मन कल्पना-जगत् से निकल उसे कार्यक्षेत्र में आने की प्रेरणा देता था। इस पर भी वह मनोरंजक सम्मोहनी छवि, जो वह स्वप्न में देखा करती थी, उसको अन्तिम निश्चय कर सकने में बाधा दे रही थी।

वह अभी अनिश्चित मन दो प्रेरणाओं से संघर्ष कर ही रही थी कि सुमति उससे मिलने आई। अन्य सखियाँ पिछले दिन की घटना के पश्चात् उससे मिलने नहीं आयी थी। वे समझती थी कि राजकुमारी और उसके माता-पिता के झगडे में उनको हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। वे अभी तक यही समझती थीं कि उसके माता-पिता उसको नारद से विवाह देने का हठ कर रहे हैं।

सुमति एक शुभ समाचार लेकर आई थी। उसने आते ही कहा—"राजकुमारी! अब तो प्रसन्न हो जाओ। इस शुभ समाचार के पश्चात् शोकभवन में रहने का कोई कारण नहीं रहा।"

देवयानी को स्वयंवर के विषय में कुछ पता नहीं था। इस कारण वह विस्मय में सखी के मुख को देखती रह गयी। सखी ने राजकुमारी से गले मिलते हुए कहा—"भगवान् का धन्यवाद है कि यह निर्णय हो गया है।"

इस पर देवयानी ने पूछ ही लिया—"क्या हुआ है सखि?"

हो रहा । गगा को तो केशो में स्थान मिला था, आप कहाँ स्थान पाने की आशा में हैं ?"

"इच्छा तो थी चरणो में स्थान पाने की, परन्तु हमारे परिवार की समस्या भी तो तुम जानती हो । मेरा कोई भाई नही है । राज्य का कोई उत्तराधिकारी नहीं । साथ ही म्लेच्छो का चारों ओर राज्य स्थापित हो चुका है । ऐसी अवस्था में मेरा क्या कर्त्तव्य है. यह विचार-णीय विषय है ।"

"इसमें विचार करने की कौनसी बात है ? राज्य प्रजा का है । इसकी चिन्ता प्रजा को करनी चाहिये । राजा नही होगा तो गणराज्य स्थापित हो जावेगा ।"

राजकुमारी मुस्कराई और बोली—"वैय्याकरण महर्षि की लडकी हो न ! सन्धि और विच्छेद करने की योग्यता राज्य में काम नही देती सखि ! भाषा में तो यह विद्या चल सकती है, पर राज्यकार्य में नहीं । महामुनि नारद का कहना है कि मेरे विवाह न करने से हमारे सम्बन्धियो में सिंहासन के लिये प्रतिस्पर्धा चल पडेगी और काश्मीर में गृह-युद्ध होते ही गान्धार अथवा देवलोक से इस पर आक्रमण हो जावेगा । म्लेच्छ लोग, जो अपनी अज्ञानता को भी ज्ञान मानते है, यहाँ भी अन्धकारमय राज्य स्थापित कर देंगे । यह तो महा-पाप होगा ।"

"परन्तु महामुनि जी ने देवलोक को म्लेच्छो के अधिकार में जाने से क्यो नही बचा लिया । सस्कृतभाषी देवता अपने छदो और वेदगान से म्लेच्छो का विध्वस क्यो नही कर सके ?"

'सुना है कि वे ससारभ्रमण पर गये ए थे । पीछे यह सब हो गया ।"

"तो अब तो आ गये है । अब भी समय है कि अपनी वीणा की झकार से नहुष की धज्जियाँ उडा दें । देखो सखि ! दूसरो को

ज्ञान देना बहुत सरल है। मेरी राय मानो तो स्वयंवर अस्वीकार न करो। ऐसा सुअवसर सौभाग्यवान् राजकुमारियों को ही मिलता है। संसारभर के राजा-महाराजा यहाँ आवेंगे। अपने नयनों को हमारी राजकुमारी के चरणों में बिछावेंगे और हम सबको इस भव्य दृश्य को देखकर गद्‌गद होने का अवसर प्राप्त होगा।"

(५)

उसी दिन नारद ने उचित समझा कि वह देवयानी से मिलकर उसके पिता के निर्णय की सूचना उसे दे दे। वह आया तो देवयानी, जो अभी भी सुमति से बातचीत कर रही थी, उठकर शीश नवा हाथ जोड़ सत्कार से नमस्कार कर महामुनि को आसन देने लगी। सुमति वहाँ से हट जाना चाहती थी, परन्तु राजकुमारी ने उसकी बाँह पकड़कर उसे रोक लिया।

नारद के बैठने पर देवयानी और सुमति दोनों उसके सामने बैठ गयी। नारद ने अपने मन की बात कह दी—"बेटी देवयानी! मित्र देवनाम ने मेरे कहने पर तुम्हारे स्वयंवर की घोषणा कर दी है। मैं यह समझता हूँ कि इस स्वयंवर का निश्चय हो जाने से तुमको अपनी इच्छानुसार पति वरने का अवसर मिलेगा। इससे तुमको सन्तोष होना चाहिये।"

"परन्तु देवर्षि, जो है नही, वह स्वयंवर में कैसे आ जावेगा ?"

"हम तो घोषणा कर देंगे। यदि परलोक से वे आना चाहेंगे तो आ जावेंगे। हमको, जो ससार-बंधनो में बँधे हुए है, यहाँ की विवशताओं के कारण जो प्राप्त है उस पर ही संतोष करना पड़ता है। जो कुछ काश्मीरनरेश तुमको उपलब्ध करा सकने में समर्थ है, वह करा दिया जावेगा।"

"आपकी इस बात को मैं मान भी लूं, तब भी तो आपके द्वारा वर्णित राजनीतिक परिस्थिति में मैं जो करूँगी वह ठीक ही होगा, कौन कह सकता है। मैं तो यह समझी थी कि आप ही उचित प्रवन्ध कर लेंगे। जब मैंने अपने मन की सर्वोच्च भावनाओं को देश और धर्म के लिये न्योछावर करने का निर्णय किया है, तो फिर यह स्वयंवर उपयुक्त प्रतीत नहीं होता।"

"धन्य हो देवयानी! मैं तुमसे और तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा से यही आशा करता था। इस पर भी, स्वयंवर होगा और यदि तुम्हारी यही भावना बनी रही तो तुम्हारे वरण में हम तुमको सम्मति देने के लिये सदैव तत्पर रहेंगे। उस समय, यदि तुम चाहोगी तो राजनीतिक परिस्थिति का भी ध्यान कर लिया जावेगा।"

इस पर सुमति मुस्कराई। देवर्षि ने उसको मुस्कराते देख लिया। इससे उसके मन की बात जानने के लिये पूछ लिया—"क्या राजकुमारी की सखी हमारी सम्मति पर विश्वास नहीं रखती?"

देवयानी ने सुमति के मन की बात कह दी। उसने कहा—"यह समझती है कि आप जो देवलोक को नहीं बचा सके तो काश्मीर को क्या बचा पायेंगे?"

नारद हँस पड़ा। उसने कहा—"भगवान् की इच्छा के विपरीत हम क्या कर सकते हैं? इस पर भी प्रयत्न करना तो मनुष्य का कर्त्तव्य है। वह हम निरन्तर कर रहे हैं। यहाँ भी अपनी बुद्धि के अनुसार यत्न करना ही तो हमारे बस की बात है।"

"यह कहती थी," देवयानी ने सुमति की ओर संकेत करते हुए कहा—"यदि काश्मीर में गणराज्य स्थापित हो जाये तो मुझको राज-नीति की बलिदेवी पर भेंट चढ़ाने की आवश्यकता नहीं रहेगी।"

नारद इस प्रश्न पर गंभीर विचार में डूब गया। उसने कुछ

विचारकर पूछा—"यह तुम्हारी सखी ,अपनी आयु से कुछ अधिक ज्ञानवान प्रतीत होती है। यह कौन है और किसकी पुत्री है ?"

सुमति को ऐसा प्रतीत हुआ कि नारद उसकी प्रशंसा कर रहा है। इससे उसका मुख लज्जा से आरक्त हो गया। देवयानी ने बताया—" यह महर्षि पाणिनी जी की सुपुत्री सुमतिदेवी है और उज्जयिनी में ज्योतिष विद्या पढकर आयी है।"

"तभी। परन्तु बेटी ! पुस्तको में पढे ज्ञान और ससार की ठोकरें खाकर प्राप्त किये अनुभव में अन्तर है। गणतन्त्र युद्धकालीन पद्धति नही है। युद्धकाल में तो एकतत्र राज्य ही सबल और सफल होता है। आज इस देश में युद्ध की परिस्थिति उत्पन्न हो चुकी है। एक विदेशीय जाति ने इस देश पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिया है। देश के द्वार कामभाज पर और इसकी ड्योढी कन्धार पर विदेशियो का अधिकार हो चुका है। उत्तर में देवलोक ें भी उनका राज्य स्थापित हो गया है। इस प्रकार इस युद्धकाल में काश्मीर के शत्रुओ से घिरे होने पर यहाँ गणतन्त्र की स्थापना घातक सिद्ध होगी। गणतन्त्र राज्य एक संतुष्ट और सपन्न देश में ही चल सकता है। ऐसे राज्य वाला देश शत्रु का विरोध करने में समर्थ नही हो सकता।

"गणतन्त्र पद्धति पर बहुत परीक्षण हो चुके हैं और उस अनुभव से हम लाभ उठाना चाहते हैं। वैदिक काल में यही पद्धति प्रचलित थी, परन्तु बाहरी भय से बचने के लिये गणतन्त्र राज्यो ने स्वय अपने ऊपर एकतंत्र शासन स्वीकार किया था। अब पुनः हम उन परीक्षणो को दुहराना नहीं चाहते।"

सुमति चुप रह गई। उसने पुराण और इतिहास का अध्ययन नही किया था। इस कारण वह नारद के कहने का उत्तर नही दे सकी। इस पर नारद ने पुनः कहा—"तुम्हारे लिये अभी किसी योग्य गुरु से पुराण और इतिहास पढ़ने की आवश्यकता है। राजनीति का विषय

इतना सुगम नही कि इस विषय में कभी भी अन्तिम बात कही जा सके। राज्य प्रजा के साथ सम्बन्धित एक आयोजन है। प्रजा में सब मनुष्य समान नहीं होते। उन सबको प्रसन्न और संतुष्ट करना एक अति कठिन कार्य है। युद्ध अथवा संघर्ष काल में इस प्रकार की कठिनाई उत्पन्न नही होने देनी चाहिए। गणतन्त्र में यह कठिनाई बढ़ जाती है। आत्मश्लाघा और आत्माभिमान गणतन्त्र में बढ़ते हैं और ये दोनो राज्यकार्य-संचालन में बाधक होते हैं।"

"मैं तो यह कह रही थी" देवयानी ने कहा—"स्वयंवर की क्या आवश्यकता है ? मैं अपने को आपसे अधिक योग्य पारखी नही मानती। जिस कार्य के निमित्त मेरे विवाह का आयोजन किया जा रहा है, उसमें तो कुछ भी सम्मति देने के योग्य मैं नही हूँ।"

"इस पर भी मेरी यही सम्मति है कि स्वयंवर होना ही चाहिए। हम तुम्हारी सहायता के लिए यहाँ उपस्थित होगे। अनेकानेक राजा-महाराजाओ के आने पर श्रेष्ठ वर पाने में सहायता मिलेगी।"

नारद देवयानी के व्यावहारिक बुद्धि के अनुसार कार्य करने के लिए मान जाने पर बहुत प्रसन्न था। जाते समय उसने आशीर्वाद दिया और कहा—"नियत तिथि से कुछ पहिले ही आ जाऊँगा।"

जब देवर्षि चले गए तो सुमति ने कहा—"राजकुमारी, अब तो प्रसन्न हो जाओ।"

"नही सखि ! स्वयंवर ने मेरे कंधो पर भारी बोझा डाल दिया है। भगवान् ही जाने मैं कैसे पार उतरूंगी। देवर्षि कहते हैं सहायता करेंगे परन्तु मैं सोचती हूँ कि वे किस प्रकार सहायता कर सकेंगे।"

सुमति को नारद का यह कहना कि उसको किसी सुयोग्य गुरु से पुराण-इतिहास पढ़ने चाहियें, पसन्द नहीं आया। इस पर भी उसने इस विषय में बात नहीं चलाई।

देवयानी के स्वयंवर की वात पूर्ण काश्मीर में फैल गई और लोग उत्सुकता से इस अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। सबको आशा थी कि इस अवसर पर भारी समारोह होगा। देश-देशान्तर से राजा-महाराजा आयेंगे। काश्मीर में व्यापार वढेगा और करोड़ो रुपये काश्मीर के महाराज और आने वाले अतिथि व्यय करेंगे। यह धन निर्धन जनता के हाथ में पहुँच जावेगा।

(६)

देवलोक की राजधानी अमरावती थी। इस सुन्दर नगर के लोग नहुष और उसके साथियो के पाँवो तले कुचले जा रहे थे। लाखो वर्षों के, जव से मनुष्य ने वुद्धि पाई थी, आविष्कारो से सम्पन्न यह नगरी नहुष के म्लेच्छ सैनिको द्वारा नष्ट की जा रही थी। अति सुन्दर देव-कन्यायें इनकी वासना की शिकार हो रही थी। निरक्षर विजेता सुसस्कृत देवताओ पर विजय प्राप्त कर, प्रत्येक प्रकार का अत्याचार कर रहे थे। ये लोग दया-धर्म का नाम नही जानते थे और उनकी निर्दयता केवल स्त्रियो के प्रति आकर्षण द्वारा ही कम हो सकती थी।

नहुष ने इन्द्र का सहस्रो झरोंखो वाला सुरम्य प्रासाद अपने रहने के लिए चुन लिया था। प्रति रात्रि वीसियो लडकियाँ उसके सम्मुख लाई जाती थी और उनमें से एक को, जो सवसे अधिक सुन्दर होती थी, अपने प्रयोग के लिए रख लेता था। शेष अपने मित्रो और कर्मचारियो में वितरण कर देता था। यह क्रम नित्यप्रति चलता था और देवलोक की जनता दाँत पीसकर रह जाती थी परन्तु कर कुछ नहीं सकती थी।

एक वार नहुष को सचेत भी किया गया था। उसके एक कर्मचारी ने कहा था—"श्रीमान्! इस व्यवहार से तो यहाँ की जनता विद्रोह के लिये उठ खडी होगी और हम अल्पसख्या में होने से कष्ट पायेंगे।"

नहुष का उत्तर था—"राज्य करने में शक्ति सव से वडी युक्ति

कई दिन हो चुके थे। इस परिस्थिति से लाभ उठाने के लिए नीति ने नहुप के मन में एक विचार को जन्म दे दिया। एक रात वातो-वातो में उसने पूछ लिया—"महाराज! आपकी आयु कितनी है?"

"क्यो क्या वात है? तुम्हारे लिये तो अभी युवा ही हूँ।" नहुष ने उसके भावो को न समझते हुए कहा। इस पर नीति ने अपना अभिप्राय वताया। उसने कहा—"मेरे पूछने का प्रयोजन यह नहीं है। मेरा आशय तो यह था कि आपके कोई पुत्र नही, जो आपके पीछे आपका राज्य सम्हाल सके। यूं तो भगवान् जाने आपकी संतान कहाँ कहाँ है, परन्तु विवाहित पत्नी, जिसे महारानी की पदवी प्राप्त हो, द्वारा प्राप्त पुत्र ही राज्य का अधिकारी हो सकेगा। मैं समझती हूँ कि आपकी मृत्यु पर इस राज्य के लिये आपके लोगो में झगड़ा होगा और यह राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जावेगा।"

"पर मैं मरना नही चाहता।"

"इस पर भी अन्त तो एक दिन आवेगा ही। महादेव जैसे योगेश्वर मर गये। इस ससार में कुछ भी स्थायी नही है।"

नहुप की मोटी वुद्धि में यह वात समा गयी। यूँ तो नहुप का विवाह एक सर्दार की लडकी से अपने देश में हो चुका था और उस पत्नी से उसका एक पुत्र भी था, परन्तु देवलोक में आकर उसका विचार अपनी पत्नी और पुत्र के विषय में वदल गया था। उसको अपनी पत्नी और पुत्र कुरूप दिखाई देने लगे थे। इस कारण किसी से भी उसने उनका उल्लेख नही किया था। सव कोई उसको अविवाहित ही समझते थे। इस कारण उसने पूछा—"तुम क्या चाहती हो? वताओ, मैं क्या करूँ?"

"आप किसी सुन्दर लडकी से विवाह कर लीजिये। उसे अपनी पटरानी वनाइये और लोगो से उसका मान कराइये। इस पर लोग

उसको और उसकी सन्तान को आपका उत्तराधिकारी मानेंगे। भगवान् करे आप सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहे। आपके पश्चात् आपका वह लडका देवलोक का राजा होगा। लोग केवलमात्र इस कारण कि वह आपका लडका होगा, उसका मान करेंगे और उसकी आज्ञा का पालन करेंगे। इस प्रकार आपका वश चल पडेगा।"

"यह विचार बहुत सुन्दर है। प्रिय नीति! तुम बहुत बुद्धिमती हो। तुम सत्य कहती हो कि मैं सदा जीवित नही रह सकता और सदा पुत्र भी उत्पन्न नहीं कर सकूंगा। क्या तुम मेरी रानी बनना चाहोगी।"

नीति यही तो चाहती थी। उसने कहा—"यह तो श्रीमान् की आज्ञा पर निर्भर है। आप आज्ञा करेंगे तो मैं देवलोक की रानी के रूप में अपना कर्तव्य पालन कर सकूंगी।" नीति ने नहुष से बहुत प्रेम प्रकट कर आलिगन किया और वात तय हो गयी।

अगले दिन महाराज नहुष ने अपने साथियो और मन्त्रियो से मत्रणा की। उन्होने महाराज की विवाह की वात को तो सराहा, परन्तु नीति का महारानी वनना स्वीकार नही किया। परिणाम यह हुआ कि नीति के प्रस्ताव का टाल-मटोल होने लगा। नीति ने एक दिन अपने व्यवहार को अति प्रेममय वनाकर महाराज से वचन की पूर्ति का आग्रह किया। महाराज ने वासनावश वचन पालन करने के लिये स्वीकार कर लिया, परन्तु अगले दिन मन्त्रियो के कहने पर नीति को मरवा डाला।

नीति तो गई, परन्तु एक विचार छोड गई। नहुष की इच्छा दिन-प्रति-दिन उग्र ही होती गई कि उसको अपना उत्तराधिकारी पैदा करना चाहिए। इस वीच में काश्मीर की राजकुमारी देवयानी के स्वयवर का समाचार आया। समाचार लाने वाले ने वताया कि काश्मीर-राज की पुत्री सर्वथा छोटी आयु की है और अति सुन्दर है। उसके मन्त्रियो ने जो महाराज का विवाह का विचार सुन चुके थे, राय दी कि इस

लडकी से विवाह करना उचित होगा। नहुप ने सदेह में सिर हिलाते हुए कहा—"पर वहाँ उसके स्वयवर में मुझको बुलाएगा कौन ? महाराज-काश्मीर मुझको अपना शत्रु समझता है। दो वार मेरी सेना काश्मीर पर आक्रमण कर चुकी है और वहाँ से पराजित हो भाग चुकी है।"

इस पर भी उसने दूतो को पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिए भेजा। वे समाचार लाये कि वहुत वडी संख्या में राजाओ और राजकुमारो को निमंत्रण भेजे गये हैं। स्वयवर की तिथि निश्चित कर दी गई है। आमन्त्रित लोग चक्रधरपुर में एकत्रित होगे और निश्चत तिथि के दिन राजकुमारी अपने पति का, उसके गले में विजयमाल डालकर, निर्वाचन करेगी। इस विवाह के पश्चात् महाराज देवनाम और उसकी पत्नी सन्यास लेंगे तथा राज्य अपने दामाद को दे जावेंगे। भेदिये देवयानी के सौन्दर्य का विवरण भी लाये। उन्होंने वताया कि वह फूल-समान कोमल, मखमल-समान मृदुवदन और श्वेत गुलाव के समान सुन्दर है। वह हंस-समान गति वाली मृगनयनी ससार में अद्वितीय है।"

"महाराज !" उनका कहना था—"देवयानी का मूल्य देवलोक का राज्य भी नही हो सकता।"

महाराज-काश्मीर की कन्या के सौन्दर्य का वर्णन सुन नहुप उसकी प्राप्ति की योजना पर विचार करने लगा। उसने अपने अन्तरग मन्त्रियो से पूछा—"कैसे प्राप्त किया जा सकता है उसको ?"

उत्तर था—"वहाँ जाने से।"

"महाराज-काश्मीर हमारा शत्रु है। उसने मुझे नही वुलाया और यदि मैं वहाँ चला भी गया तो वह लडकी मुझ-से बूढे को पति नही चुनेगी।"

"इस अवस्था में क्या यह ठीक न होगा कि काश्मीर पर आक्रमण कर दिया जावे और लडकी को उठवा लिया जावे ?"

"मैं दो वार आक्रमण कर चुका हूँ । मेरी सेना काश्मीर राज्य के कुछ ही कोसो तक भीतर जा सकी थी ।"

इस पर एक मन्त्री ने कहा—"हमको वहाँ चोरी-चोरी जाना चाहिए और जव वह जयमाल लेकर आये तो उसे बल पूर्वक उठा लाना चाहिये । महाराज वहाँ पर मायावी रूप में हो और उसको उठाकर जब भागें तो सेना वहाँ रक्षा के लिये उपस्थित हो ।"

यह योजना नहुष को पसन्द आई और इस योजना को कार्यरूप में परिणत करने का प्रयत्न होने लगा । सहस्रो सैनिक व्यापारियो के रूप में एक-एक दो-दो कर काश्मीर में घुस गये । चक्रधरपुर से लेकर देवलोक की सीमा तक इन लोगो ने मार्ग सुरक्षित कर दिया । चक्रधरपुर में भी भेदियो और सैनिको का जाल विछा दिया । देवयानी का स्वभाव और उसकी रुचि जानने के लिये विशेष भेदिये लगा दिये गये । जव सव व्यवस्था हो गई तो नहुष स्वय रत्नो के सौदागर के रूप में चक्रधर-पुर में जा पहुँचा ।

(७)

महर्षि पाणिनी की लडकी स्वय ज्योतिष और गणित की पण्डिता थी । वह जव पाँच ही वर्ष की थी, उज्जयिनी में शिक्षा के लिये भेजी गयी थी और वहाँ उन्नीस वर्ष की आयु तक रही । जव वह लौटी तो उसकी विद्वत्ता की ख्याति काश्मीर के महाराज और महारानी तक पहुँची और उन्होने उसको महल में आमन्त्रित किया । वहाँ उसका देवयानी से परिचय कराया । यह परिचय मित्रता और फिर घनिष्ठता में बदल गय ।। सुमति न केवल विदुषी थी, प्रत्युत स्वभाव की अति सरल और प्रसन्नचित्त भी थी ।

देवयानी के अपने मन के रहस्य प्रकट करने के पश्चात् दोनो में घनि-ष्ठता और भी बढ गयी । अब देवयानी जब कभी भी अपने हृदय की बात

करना चाहती तो वह सुमति को वुला लेती और उससे मन्त्रणा करती। उनकी बातों का विषय प्राय. देवयानी के स्वप्न होते थे। सुमति का ज्योतिष का ज्ञान इन स्वप्नो पर टीका-टिप्पणी में सहायक होता।

जव स्वयंवर के लिये निमंत्रण भेजे जा चुके थे, तव एक दिन उत्सुकतावश देवयानी ने अपनी सखी से अपने भविष्य को पढ़ने का वहुत आग्रह किया। उसने पूछा—"सखि, आज तो मैं तुमको अपना भविष्य पूछे विना नही छोड़ूगी। वताओ भविष्य मेरे लिय क्या क्या सुख और कष्ट रखता है। काश्मीर राज्य का क्या होने वाला है और मैं उसके भविष्य-निर्माण में कुछ भाग रखती हूँ या नही ?"

सुमति इतने वडे प्रश्न की उलझन में झांकना नही चाहती थी। विशेष रूप से राज्यो का इतिहास एक मनुष्य के आचार-व्यवहार पर निर्भर नही होता, यह वह समझती थी। जाति के वहुसख्यक सदस्यो के पाप-पुण्यो से राज्य वनते और विगड़ते हैं। राजा तथा मंत्री तो वहु-सख्यक जनता के प्रतिबिम्वमात्र होते हैं। इस पर भी जव देवयानी का आग्रह वढता गया तो उसने गणना आरम्भ कर दी। ज्यो-ज्यो गणना चलती गई विषय गम्भीर होता गया और दोनो आगार में प्रात. से साय तक द्वार वंद कर वैठने लगीं।

परिणाम निकला और देवयानी को वताया गया। सुमति का कहना था कि उसके भाग्य में किसी देवता की पत्नी वनना लिखा है। वह देवता ईश्वर की सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट विभूति है, परन्तु भावी जीवन के कुछ वर्ष घोर सघर्ष और भागदौड़ के हैं। उसे देश-विदेश घूमना पड़ेगा और साधारण जनता की भाँति भी रहना पड़ेगा। अन्त में उसके मन की अवस्था ऐसी होगी कि संन्यास में आश्रय लेगी।

काश्मीर के विषय में यह पता चला कि उसकी सन्तान वहाँ राज्य करेगी। वहाँ का राज्य सुख और शान्ति से चलेगा, परन्तु उसके राज्य

के अन्त में यह देश भी अपने पडौसी राज्यो की भाँति दु ख तथा क्लेश के बादलो से घिर जाएगा। इन बादलो में भी एक आशा की किरण प्रतीत होती है। उस किरण का विकास हो पावेगा अथवा नही, अभी कहना कठिन है। इतना तो स्पष्ट है ही कि उन काले बादलो से रक्त बरसेगा। वह रक्त ही बादलो से बहकर उनकी कालख को धो सकेगा।

इस भविष्यवाणी ने देवयानी को गम्भीर विचार में डाल दिया। वह सोचती थी कि क्या यह सत्य होगा कि वह देव-पत्नी बनेगी। क्या उसके स्वप्न सत्य होंगे और वह महादेव शकर के चरणो में रहने के लिये सन्यासिन् बनेगी। उसके हृदय में इस विचार से गुदगुदी होने लगी। साथ ही जब वह देश के भविष्य के विषय में विचार करती थी तो काँप उठती थी। उसके मन में काले काले बादलों और रक्तवर्षा की बात ने एक विशेष उलझन उत्पन्न कर दी थी। वह चाहती थी कि इस आपदा के निवारण के लिये यदि कुछ किया जा सके तो किया जाय। इसलिये इस आने वाली आपदा का और अधिक ज्ञान प्राप्त किया जाय।

इस कारण उसने एक दिन सुमति से पूछ ही लिया—"सखि! तुमने बताया था कि काले बादल घिर आने वाले है। वे काले बादल कौन हैं? कहाँ से आने वाले हैं वे? और फिर उनको टाला नही जा सकता क्या? इसके लिये क्या करना होगा?"

सुमति का कहना था कि जातियों के भविष्य के विषय में ज्योतिष कुछ अधिक स्पष्ट बात नही बताता। इस पर भी कुछ धीमा-सा ज्ञान आने वाले काल में गृह-नक्षत्र के सयोग के अध्ययन से हो सकता है।

"तो करो न। इसके अध्ययन के लिये इससे अच्छा समय और कौन होगा? कौन कोई परिवार है तुम्हारा, जिसकी सुश्रूषा से तुमको अवकाश नही?"

विवश सुमति को भविष्य के अन्धकार में डुबकी लगानी पड़ी । महीनो दिन-रात के परिश्रम के उपरान्त जो कुछ वह जान पाई, उसनें अपनी सखी देवयानी के सम्मुख रख दिया । उसका कहना था—"ब्रह्मावर्त और आर्यावर्त के बहुत से भाग पर क्षीरसागर में से उठी आंधी छा जाने वाली है । इस आंधी में वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, पुराण इत्यादि आर्ष ग्रंथो में प्रतिपादित धर्म का लोप होगा । तपस्वियो की तपस्या भग होगी । ब्राह्मण और महात्मा धनलोलुप हो जीविकोपार्जन के लिये धर्म-अधर्म का भेद भूल जावेंगे । जनता में अन्यायाचरण का बोलवाला होगा । भाई बहन की हत्या करना चाहेगा । बाप बेटी से दुराचार करेगा । स्वसुर पतोहू की लज्जा हरण करेगा । इस पुण्यभूमि में घोर अत्याचार तथा अविचार छा जायेंगे ।

"भगवान् विष्णु का आसन डोल उठेगा और वे पुनः इस देवभूमि का म्लेच्छो से उद्धार करेंगे । पुनः वेद-वेदाग का प्रचार होगा और भगवान् की प्रिय, यह भूमि, पुनः सुख और शान्ति प्राप्त कर उन्नति की ओर अग्रसर होगी ।"

उसने स्वयवर में पति वरने का निश्चय कर लिया । वह विचार करती थी कि सुमति की भविष्यवाणी यदि सत्य होनी है तो महादेव अवश्य स्वयवर में पधारेंगे । उसको जो बात समझ नही आ रही थी, वह यह थी कि जब वे इस ससार में नही हैं तो फिर कैसे स्वयवर में आवेंगे और यदि आ गये तो कैसे मैं उनको पहिचानूंगी । सुमति का कहना था कि देवयानी से यदि किसी देवता का विवाह होना है तो वह महादेव शिव से ही होगा । इस पर भी सुमति ने कहा—"पर सखि ! यह सब कुछ असत्य भी तो हो सकता है ।"

"तो तुम्हारी गणना भी असत्य हो सकती है क्या ?"

"गणना में भूल की सभावना तो कम हो सकती है । इस पर भी ज्योतिष एक निश्चित विज्ञान नही । इसमें कारण है । यह मनुष्यो के

के अन्त में यह देश भी अपने पडौसी राज्यों की भाँति दु ख तथा क्लेश के वादलो से घिर जाएगा । इन वादलो मे भी एक आशा की किरण प्रतीत होती है । उस किरण का विकास हो पावेगा अथवा नही, अभी कहना कठिन है । इतना तो स्पष्ट है ही कि उन काले बादलो से रक्त बरसेगा । वह रक्त ही वादलो से बहकर उनकी कालख को धो सकेगा ।

इस भविष्यवाणी ने देवयानी को गम्भीर विचार में डाल दिया । वह सोचती थी कि क्या यह सत्य होगा कि वह देव-पत्नी बनेगी । क्या उसके स्वप्न सत्य होंगे और वह महादेव शकर के चरणो में रहने के लिये सन्यासिन् बनेगी । उसके हृदय में इस विचार से गुदगुदी होने लगी । साथ ही जब वह देश के भविष्य के विषय में विचार करती थी तो काँप उठती थी । उसके मन में काले काले वादलों और रक्तवर्षा की बात ने एक विशेष उलझन उत्पन्न कर दी थी । वह चाहती थी कि इस आपदा के निवारण के लिये यदि कुछ किया जा सके तो किया जाय । इसलिये इस आने वाली आपदा का और अधिक ज्ञान प्राप्त किया जाय ।

इस कारण उसने एक दिन सुमति से पूछ ही लिया—"सखि! तुम-ने वताया था कि काले वादल घिर आने वाले है । वे काले बादल कौन हैं ? कहाँ से आने वाले हैं वे ? और फिर उनको टाला नही जा सकता क्या ? इसके लिये क्या करना होगा ?"

सुमति का कहना था कि जातियो के भविष्य के विषय में ज्योतिष कुछ अधिक स्पष्ट वात नही वताता । इस पर भी कुछ धीमा-सा ज्ञान आने वाले काल में गृह-नक्षत्र के सयोग के अध्ययन से हो सकता है ।

"तो करो न । इसके अध्ययन के लिये इससे अच्छा समय और कौन होगा ? कौन कोई परिवार है तुम्हारा, जिसकी सुश्रूषा से तुमको अव-काश नही ?"

विवश सुमति को भविष्य के अन्धकार में डुवकी लगानी पडी। महीनो दिन-रात के परिश्रम के उपरान्त जो कुछ वह जान पाई, उसनें अपनी सखी देवयानी के सम्मुख रख दिया। उसका कहना था—"ब्रह्मावर्त और आर्यावर्त के वहुत से भाग पर क्षीरसागर में से उठी आंधी छा जाने वाली है। इस आंधी में वेद, ब्राह्मरण ग्रन्थ, उपनिषद्, पुराण इत्यादि आर्ष ग्रथो में प्रतिपादित धर्म का लोप होगा। तपस्वियो की तपस्या भग होगी। ब्राह्मरण और महात्मा धनलोलुप हो जीविकोपार्जन के लिये धर्म-अधर्म का भेद भूल जावेंगे। जनता में अन्यायाचरण का वोलवाला होगा। भाई वहन की हत्या करना चाहेगा। वाप वेटी से दुराचार करेगा। स्वसुर पतोहू की लज्जा हरण करेगा। इस पुण्यभूमि में घोर अत्याचार तथा अविचार छा जायेंगे।

"भगवान् विष्णु का आसन डोल उठेगा और वे पुन: इस देवभूमि का म्लेच्छो से उद्धार करेंगे। पुनः वेद-वेदाग का प्रचार होगा और भगवान् की प्रिय, यह भूमि, पुन: सुख और शान्ति प्राप्त कर उन्नति की ओर अग्रसर होगी।"

उसने स्वयवर में पति वरने का निश्चय कर लिया। वह विचार करती थी कि सुमति की भविष्यवाणी यदि सत्य होनी है तो महादेव अवश्य स्वयवर में पधारेंगे। उसको जो वात समझ नही आ रही थी, वह यह थी कि जव वे इस संसार में नही हैं तो फिर कैसे स्वयवर में आवेंगे और यदि आ गये तो कैसे मैं उनको पहिचानूंगी। सुमति का कहना था कि देवयानी से यदि किसी देवता का विवाह होना है तो वह महादेव शिव से ही होगा। इस पर भी सुमति ने कहा—"पर सखि! यह सव कुछ असत्य भी तो हो सकता है।"

"तो तुम्हारी गणना भी असत्य हो सकती है क्या ?"

'गणना में भूल की संभावना तो कम हो सकती है। इस पर भी ज्योतिष एक निश्चित विज्ञान नही। इसमें कारण है। यह मनुष्यो के

कर्म के विषय में है और मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र हैं। ज्योतिष का आधार है जन्म का समय। जन्मकाल में सूर्य, चन्द्र तथा अन्य नक्षत्र जिस राशि में होते हैं, वैसा ही पूर्व जन्म का भाग्य मानना चाहिये। वर्तमान जन्म के कर्म अनेकानेक परिस्थितियो पर निर्भर हैं। यही कारण है कि जन्मकुण्डली के आधार पर प्रतीत की गयी घटनाएँ सर्वथा सिद्ध नही भी हो सकती। दृढ़ निश्चय वाला मनुष्य अपने भाग्य को बदल भी सकता है। इस विद्या का लाभ केवल यह है कि भविष्य की झाँकी प्राप्त कर मनुष्य अपने कार्यक्रम का निश्चय कर सकता है और दुर्भाग्य को, कम से कम कुछ सीमा तक, सौभाग्य में बदल सकता है। साथ ही सौभाग्य को अधिक उज्जवल कर सकता है।"

अपने कथन की पुष्टि में सुमति ने अपने विषय में बताया—"मैं तुमको अपने भविष्य के विषय में, जो कुछ जान सकी हूँ, यदि बता दूँ तो मेरे कथन का अर्थ स्पष्ट हो जावेगा। मेरे गुरु जी ने, जिनसे मैं ज्योतिष सीखती थी, मेरी जन्मपत्री बनाई थी और उन्होंने देखकर बताया था कि मेरा विवाह किसी असुर से होगा। इसकी मुझको भारी चिन्ता लगी। मैं बहुत सावधानी से रहने लगी। उज्जयिनी एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त नगर है। सब देशो और जातियो के लोग वहाँ आते हैं और ज्ञानवृद्धि के लिये वही रहते हैं। मेरे सब प्रकार से बचे रहने पर भी एक नवयुवक मुझ पर दृष्टि रखने लगा। पहिले ही दिन जब मुझको उसके आचरण का ज्ञान हुआ, तो मैंने उससे उसकी जाति पूछी और उसकी जाति जानकर मैं वहाँ से भाग आई। अब मेरा प्रेम एक आर्य जाति के विद्वान् से हो गया है। वह तोखार (मध्य एशिया) का रहने वाला है और पिता जी से शिक्षा ग्रहण कर रहा है। वह मुझसे बहुत प्रेम करता है और मैं समझती हूँ कि मैंने अपना भाग्य यत्न करके बदल दिया है। यद्यपि विवाह के विषय में मैंने अपने माता-पिता की स्वीकृति नही माँगी परन्तु मुझे आशा है कि वे मान जाएंगे।"

इन विषयो के अतिरिक्त भा अन्य कई अन्तरग विषयो पर दोनों सखियो में वात-चीत चलती रहती थी और धीरे-धीरे दोनो में घनिष्ठता वढती गई। सुमति अपने भावी पति के विषय में भी देवयानी से वातें करती रहती थी।

सुमति का निर्वाचित युवक तुखार के एक महाविद्वान् परिवार का सदस्य था। ऋषि पाणिनी की ख्याति से आकर्षित हो उनसे मीमासा पढने को चक्रधरपुर में आया हुआ था। वह स्वयं ससार की प्राय: सभी प्रमुख भाषाओं का अध्ययन कर चुका था। उस भाषा से लेकर, जो पक्षियों के चित्रो में लिखी जाती थी, उन भाषाओं तक, जो रेखाओं के गुंफनों मे लिखी जाती थी, वह सब भाषाओं का अध्ययन कर चुका था।

गुरु से ज्ञान पाने के साथ ही साथ उसे गुरुगृह से सुमति भी प्राप्त हुई। कल्लर, यह उस विद्वान् युवक का नाम था, जब सुमति उज्ज-यिनी से लौटी थी, उसके व्यक्तित्व से वहुत प्रभावित हुआ था। इस पर भी एक वर्ष पर्यन्त वह अपने मन के भावो को उससे कह नहीं सका था।

वसन्त ऋतु का एक दिन था। पक्षी अपने जीवन-सगियो को वुलाने के लिये चहचहा रहे थे। पुष्प अपनी भीनी-भीनी सुगन्धि से मधुमक्खियों का आवाहन कर रहे थे। वृक्ष सुरक्षित वायु की मस्ती में झूल रहे थे। ऐसे समय में कल्लर के हृदय की भावना फूटकर प्रकट हो गई। उसने सुमति को मधुमती के तट पर एक पेड के नीचे खडे देखा। वह नदी के शीतल जल में नौकाओं का प्रवाहित होना देख रही थी। वहाँ खडी वह कल्लर को वहुत ही सुन्दर और आकर्षक लगी और वह उसके आकर्षण को छुपा नही सका। उसके समीप आ, वह वोल उठा—"सुमति! क्या तुम प्रकृति में चारो ओर जीवन प्रस्फुटित होता पाती हो? कोयल की कू-कू, चिड़ियो का चहचहाना, मक्खियो और भँवरो की भन-भन, ये सव नवजीवन के प्रतीक हैं। कैसा सुहावना समय है।"

सुमति कल्लर को इस प्रकार बातें करते देख विस्मित हुई। यह भी विख्यात था कि वह उसके पिता के सब विद्यार्थियो में से गम्भीर रहने वाला है। उसने कल्लर के मुख की ओर देखा तो उसकी आँखो को अपने पर गढ़े देख सब कुछ समझ गयी। उसमें युवको की अपनी सगिन पाने की स्वाभाविक पिपासा दिखाई देती थी। वह मुस्कराई और बोली—"नवजीवन तो कही दिखाई नही देता। यह तो वही पुरानी बात है जो प्रकृति वर्ष के पश्चात् वर्ष में करती आई है। लक्ष-लक्ष वर्षो में जो इस ऋतु में होता रहा है, ठीक वही आज भी हो रहा है। इसमें नवीनता कुछ नहीं।"

"ठीक है। इस पर भी परिवर्तन तो है ही और परिवर्तन ही जीवन नही है क्या?"

सुमति पुन गम्भीर हो गयी। उसने अपने सामने जलप्रवाह को देखते हुए कहा—"मैं समझती हूँ कि अभी आपको बहुत कुछ सीखना है। परिवर्तनमात्र को जीवन नही कहते। जीवन तो प्रेरणा है, जो प्राकृतिक रूप में होने वाली घटनाओं पर राज्य करने की है। यह प्रकृति को युक्तिपूर्वक चुनौती है। नदी में जल के बहने को जीवन नही कहा जा सकता, यद्यपि परिवर्तन तो यह भी है।"

कल्लर निरुत्तर हो गया। सुमति की जीवन शब्द की मीमासा विद्वत्तापूर्ण थी। वह सुमति के मुख को देखता हुआ नये शब्दो और नये वाक्यो की खोज कर रहा था, जिससे वह अपने मन के भाव प्रकट कर सके। उसकी समस्या को देख सुमति की हँसी फूट पडी और उसने कहा—"आपको घबराने की आवश्यकता नही। यह विषय व्याकरण से सम्बन्ध नहीं रखता। यह तो मनोविज्ञान का विषय है। आओ किसी अन्य विषय पर बात करें, जिसको आप भलीभाँति जानते तथा समझते हो। मैं देख रही हूँ कि आज आपके मुख से वाणी का प्रस्फुटन हुआ है।"

इस पर कल्लर ने पुन: साहस बाँधकर कहा—'आप ठीक कहती है। मैं कहना चाहता था कि वसन्तकुसुम की भाँति आप भी स्वच्छ और सुन्दर दिखाई दे रही हैं।"

"और मधुमक्खी की भाँति आप आकर्षित हो आये हैं। ठीक है न ?"

इस वात ने कल्लर को पुन. चुप और लज्जित करा दिया। सुमति का मुख मुस्कराया हुआ था, जिसने पुनः उसको कहने के लिये उत्साहित कर दिया। उसने साहस बाँधकर कहा—'मधुमक्खी ! हाँ ! नहीं। मधुमक्खी नही, प्रत्युत एक समझदार माली की भाँति जो फूलो के मूल्य को समझता है और जानता है कि भूमि मे क्या खाद देनी चाहिये, जिससे फूलो में सुगन्धि अधिक और अधिक हो सके।"

इस प्रकार भाषाओ के ज्ञाता को वात करने के लिये शब्द मिलने लगे और वह अपने हृदय के छुपे भाव प्रकट करने लगा—"इस सुन्दर पुष्पो से लदी वादी में अनेक कुसुम नित्य देखता हूँ, परन्तु जो कुछ मैंने तुममें देखा है, वह उन सबसे भिन्न है। काश्मीर की लडकियों के नख-शिख, रूप-रग और हाव-भाव प्रकट में तो सुन्दर है, परन्तु जो विशेष ओज और प्रतिभा और आँखो में ज्योति यहाँ देखता हूँ, यह अन्यत्र दिखाई नही देती।"

एक विदुषी लडकी से प्रेम प्रकट करना कठिन वात है, परन्तु कल्लर ने यह कार्य भलीभाँति सपादित किया और शीघ्र ही सम्बन्ध घना और अधिक घना होता गया। अन्त में उन्होने निश्चय कर लिया कि माता-पिता की स्वीकृति के पश्चात् वे विवाहसूत्र में बँध जावेंगे। सुमति की माँ को उनके परस्पर सम्बन्ध का सदेह हुआ तो उसने अपने पति से वात की। परिणाम यह हुआ कि देवयानी के स्वयंवर से पूर्व ही दोनो की सगाई हो गई।

एक दिन कल्लर और सुमति नौका में मधुमीत पर विहार कर रहे थे कि दोनो में होने वाले स्वयवर पर बात चल पडी। कल्लर ने सुमति से पूछा—"तुम अपनी सखी की जन्मकुण्डली क्यो नही देखती? वह किम प्रकार का पति पाने वाली है, उसको वता देती तो अच्छा रहता।"

वह हँसकर बोली—"मेरा विश्वास ज्योतिष पर से उठ गया है।"

"कबसे ?"

"जबसे मैंने आपको पाया है। मेरी जन्मकुण्डली में कुछ और ही लिखा है।"

इस बात से कल्लर की उत्सुकता बढ़ गई। उसने पूछा—"क्या लिखा है तुम्हारी कुण्डली में ?"

"मेरे गुरु महाराज ने, जो ज्योतिषशास्त्र के वहुत वडे ज्ञाता हैं, मेरी कुण्डली मे देखकर कहा था कि मेरा पति असुर होगा। मुझे विश्वास है कि आप असुर नही है।"

"कौन कह सकता है ? शायद पूर्व जन्म में मै असुर रहा होऊँ।"

"परन्तु मै तो आपसे इस जन्म में विवाह कर रही हूँ।"

"तव तो वहुत सचेत रहने की बात है। कही कोई असुर आकर तुम्हारा अपहरण न कर ले।"

"हाँ! सतर्क रहने की आवश्यकता है। वास्तव में एक असुर से मेरा सम्पर्क हुआ था। वह लका द्वीप का रहने वाला था और मैं उसको छोडकर भाग आई हूँ।"

"पर वह तुम्हारा पीछा यहाँ तक भी तो कर सकता है। खैर, तुमने राजकुमारी की कुण्डली देखी तो होगी ?"

"हाँ, जन्म कुण्डली के अनुसार वह एक देवता की पत्नी वनने वाली है, परन्तु महाराज किसी भी देवता को निमन्त्रण नहीं भेज रहे।"

"देवताओं का पतन जो हो गया है आज !"

"राजकुमारी को महादेव के स्वप्न आते रहते हैं और वह चाहती है कि वे आकर उसको ले जावें।"

" तो क्या वे अभी जीवित हैं ?"

"किसी ने उनको मरते नही देखा। यह कहा जाता है कि वे और उनकी पत्नी पार्वती, चिरकाल हुआ, इस मृत्यलोक को छोड चले गए थे।"

"इसका अर्थ यह हुआ कि उसकी जन्मकुण्डली कुछ अनहोनी बात बताती है।"

"भगवान् जाने क्या होगा ! मेरी जन्मकुण्डली असत्य सिद्ध हो रही है और राजकुमारी की जन्मकुण्डली के सत्य सिद्ध होने की सभावना प्रतीत नही होती।"

(८)

स्वयंवर पर आने वालो के लिये एक सौ एक निमन्त्रण भेजे गये थे और आमंत्रित जनो ने देवयानी का चित्र देखा और उसकी योग्यता का विवरण पढा तो मग्न हो गये। उस आमंत्रित पत्र के उत्तर में सब राजाओ और राजकुमारो ने अपने-अपने चित्र और अपने राज्यसम्बन्धी विवरण भेजे।

नियत तिथि से पूर्व ही लोग चक्रधरपुर में आ पहुँचे और इस आशा में कि वे इस सुन्दरी से वरे जायेंगे, अपने-अपने दल-बल साथ लाये थे। इन एक सौ एक के साथ सहस्रो पुरुष तमाशा देखने के लिए एकत्रित हो गये। इस उत्सव पर एकत्रित जनो में सैंकडो व्यापार करने के लिए आ पहुँचे। काश्मीर के प्राय. सभी प्रतिष्ठित जन इस आयोजन में महाराज की सहायता देने के लिए बुलाए गये। इन सब अभ्यागतो के साथ सहस्रों नौकर-चाकर सेवा के लिए आए।

सब अभ्यागतो के लिए विशेष घर निर्माण किये गये थे, जहाँ वे

ठहराए गए। प्रत्येक आने वाले का नगरद्वार पर स्वागत किया गया और आदरसहित उनको गृहो में ले जाया गया। देवनाम स्वय उनके निवासस्थान पर गया और पश्चात् वे उससे मिलने के लिए आये। जब ये लोग महाराज देवनाम से मिलने के लिए आये तो देवयानी को पर्दे के पीछे से उनको देखने का अवसर मिला। उनके चित्र और उनके गुणो तथा उनके राज्यो का विवरण तो देवयानी के पास पहिले ही पहुँच चुका था और वह उनका अध्ययन कर चुकी थी। अब उसने उनके चित्रो का उनके साथ मिलान किया।

सुमति के ज्योतिष के कारण देवयानी स्वयवर में अधिक रुचि लेने लगी थी। इस पर भी वहाँ इतना कुछ देखनें को था और इतना कुछ विचार करने को था कि वह घबरा उठी और किसी निर्णय पर पहुँच नही सकी। एक वस्तु वह ढूँढ रही थी। वह समझती थी कि उसके स्वप्न-पुरुष का चित्र भी आना चाहिए । वह कही दिखाई नही दिया। इस समय देवर्षि नारद उससे मिलने आया। वह उसको देख मन में शान्ति अनुभव करने लगी और उनके पाँव में जा पडी।

नारद ने उसको इतना अधीर देख पूछा—"क्या है देवयानी ?"

"देवर्षि ! यह जो चित्रो का ढेर लग गया है और विवरणात्मक पत्रो की पुस्तक-सी वन गई है, मै इससे घबडा उठी हूँ। नही जानती कि मै क्या करूँ। मेरी सखियाँ अपनी भिन्न-भिन्न सम्मति से मुझे पागल बना रही हैं। माता-पिता स्वागत में सलग्न हैं और इस विषय में उन्होने मुझे अकेला छोड दिया है।"

नारद ने उसको उठाया और देखा कि देवयानी के आँसू अविरल वह रहे हैं। उसने राजकुमारी के सिर पर प्यार देते हुए कहा—"मुझको यहाँ से गये हुए एक वर्ष होने वाला है। जाने से पूर्व मैंने वचन दिया था कि मैं समय पर आ जाऊँगा। सो आ गया हूँ । इस काल में मै तुम्हारे ही काम में लगा हुआ था। सो आज रात को हम बैठेंगे और

विचार करेंगे। हम अपनी बुद्धि तथा शक्ति अनुसार विचार कर ठीक ही कार्य करेंगे। पश्चात् भगवान् के भरोसे अपनी नौका छोड़ देंगे।"

देवयानी के मन का बहुत-सा बोझा हल्का हो गया। नारद के चले जाने के पश्चात् उसने अपने आगार को भीतर से बन्द कर चित्रों को पुनः देखना आरम्भ किया। बहुत से चित्र, जब उनका असल से मिलान किया गया, तो असत्य सिद्ध हुए। एक चित्र, जो काश्मीर के जागीरदार का था, देवयानी को कुछ देखा-भाला प्रतीत हुआ। उसने उसके साथ आये विवरण को पढा। उसमें केवल यह लिखा था—"विक्रम। आयु तेईस वर्ष, मृगया में रुचि रखने वाला। एक गांव का स्वामी और दस सहस्र रजत वार्षिक की आय।"

देवयानी को इतना सक्षिप्त विवरण बहुत भला लगा। इसके मुकाबिले में अन्य लिखने वालो ने बीसियो पृष्ठ लिखे थे। इस विवरण से वह नहीं जान सकी कि पहिले उसने उसको कहाँ देखा है।

सायं होने से पूर्व सुमति आई तो उससे उसने अपने चित्रों और विवरणो से उत्पन्न विचार बताये। सुमति स्वय एक चित्र लेकर आई थी। उसने वह चित्र राजकुमारी को दिखाते हुए कहा—"सखि! मैं समझती हूँ कि यह चित्र तुमको सबसे अधिक पसन्द आएगा।"

यह शिव का ताण्डव नृत्य करते हुए का चित्र था। देवयानी ने उसको देख पूछा—"कहाँ से मिला है तुमको यह?"

"पिता जी का कोई परिचित उनको यह दे गया है। वह यह कह गया है कि इसको आपके पास पहुँचा दिया जावे और कहला दिया जावे कि भगवान् स्वयं स्वयंवर में पधार रहे है।"

"तो क्या भगवान् के स्वर्ग सिधार जाने का समाचार असत्य है?"

"मै नही जानती। पिता जी भी, जितना मैंने बताया है, इससे अधिक नही जानते।"

"मुझको यह कुछ भी समझ नहीं आ रहा। यह चित्र पिता जी के द्वारा आना चाहिये था। मैं उनकी स्वीकृति के बिना कुछ नहीं करूँगी। यह कुछ रहस्यमय बात प्रतीत होती है।"

सुमति इससे अधिक कुछ नहीं जानती थी। इस कारण वह चुप रही।

रात के समय देवयानी, उसके माता-पिता तथा देवर्षि नारद मन्त्रणा करने को बैठे। इस समय सब चित्र देखे गये और उनके साथ आये विवरण पढे गए। इन पर नारद की सम्मति सुनी गई। देवयानी ने विक्रम के विषय में उससे पूछा। उसको बताया गया—"काश्मीर की सीमा के समीप, जो गान्धार की ओर है, उस की जागीर है। एक बार इसके पितामह ने राज्य की कोई भारी सेवा की थी और उस सेवा के लिये उसको दो गाँव दिये गये थे। विक्रम के पितामह इस उपहार को अपर्याप्त मान रूठकर चले गये थे और तबसे वे और उसके परिवार के लोग राज्यदरबार में नहीं आये। विक्रम के पिता एक सिंह का आखेट करते मारे गये। तब विक्रम बालकमात्र था। अब इस परिवार को राज्य के समीप लाने के लिये मैंने ही इसको निमन्त्रण भिजवाया है।"

"मुझको ये परिचित-से प्रतीत हो रहे हैं। कल वे पिता जी से मिलने आये थे। उनका स्वर और बोलने का ढग भी जाना-बूझा प्रतीत हुआ है। मैंने समझा कि कोई सम्बन्धी होंगे।"

इस विचारगोष्ठी में देवयानी ने वह चित्र भी रखा जो सुमति दे गई थी। इस चित्र को देख नारद को अचम्भा हुआ। उसने पूछा—

उनमें होती थी। फिर यह आया कैसे और उन्होने इसको महाराज के द्वारा क्यो नही भेजा ? मुझको इसमें कुछ कपट प्रतीत होता है। यह सखी कौन है ? इसके पिता का क्या नाम है ?"

"आप तो इसको पहिले भी देख चुके है। महर्षि पाणिनी की पुत्री है।"

"इस चित्र को लाने वाला कहाँ रहता है ?"

'यह मेरी सखी नही जानती।"

"मै उसके पिता से मिलकर कल पता करूँगा। मुझको यह लुकाव-छुपाव पसन्द नही है।"

इस विचारगोष्ठी में सब नामो में से पाँच के चित्र पृथक् कर लिये गये। उनमें एक विक्रम का भी था। इन पाँचो युवको को अगले दिन भोजन पर आमन्त्रित किया गया और देवयानी द्वारा पर्दे के पीछे बैठकर इनके निरीक्षण करने का प्रबन्ध कर दिया गया।

इस रात देवयानी को पुन: स्वप्न आया। इसमें उसने योगेश्वर शिव को बहुत स्पष्ट रूप में देखा। इस रात वह उसको केवल दिखाई ही नही दिया प्रत्युत उससे कुछ बोला भी। ऐसा पहिले कभी नही हुआ था। इस पर भी जो कुछ स्वप्न-पुरुष ने कहा उसका स्मरण देवयानी को नही रहा। उसने स्वय पूछा—"क्या आप मुझको ग्रहण करेंगे ?"

इसका उत्तर केवल एक मुस्कुराहट थी। यह मुस्कुराहट इतनी मोहक थी कि वह अपने को उसके पाँव पड़ने को रोक नहीं सकी। जब वह पाँव से उठी तो वह अदृश्य हो चुका था। इस स्वप्न ने उसके मन में पुन. अपने इष्टदेव की स्मृति हरी-भरी कर दी, उसको ऐसा प्रतीत होता था।

अगले दिन नारद सुमति के पिता से मिलने गया। महर्षि अपने शिष्यों में बैठा ज्ञान-ध्यान की बातें कर रहा था, जब नारद आया तो ऋषि

उसके स्वागतार्थ उठ खडा हुआ। सब शिष्य भी उठ खडे हुए और दोनों ऋषियों के चारों ओर खडे हो गए। साधारण आवभगत के पश्चात् नारद ने वहाँ आने का उद्देश्य वर्णन कर दिया। उसने कहा—"भगवन्! आपकी पुत्री ने कल राजकुमारी देवयानी को एक चित्र दिया था। मैं यह जानने आया हूँ कि वह आपको किसने दिया है? वह चित्र महादेव शिव का-सा है परन्तु, जहाँ तक मुझको उनकी रूप-रेखा का स्मरण है, यह उनका प्रतीत नही होता।"

महर्षि ने कहा—"तीन दिन हुए एक पुरुष मेरे पास आया था। उसने यह चित्र देकर कहा था कि मैं अपनी पुत्री द्वारा इसे राजकुमारी के पास भिजवा दूं। उसको विदित था कि सुमति राजकुमारी की प्रिय सखी है। उसने एक मौखिक सदेश भी दिया था कि जिसका यह चित्र है वह स्वय भी स्वयवर में आवेगा। अतएव मैंने वह चित्र और सदेश भिजवा दिया था।"

"आप उस पुरुष को जानते है क्या?"

"केवल इतना ही कि मैंने उसको कुछ दिन पूर्व अपने होने वाले जामाता के साथ देखा था।"

"मैं आपके जमाता से मिलना चाहता हूँ।"

कल्लर उस समय शिष्यो में उपस्थित था। नारद उसको एक ओर ले गया और उससे पूछने लगा—"इस व्यक्ति से आपका परिचय किस प्रकार हुआ था।"

कल्लर कुछ घबरा-सा गया और पूछने लगा—"क्या दुर्घटना हो गई भगवन्?"

"पहिले तुम बताओ कि तुम्हारी इस व्यक्ति के साथ क्या-क्या बातचीत हुई है। पश्चात् मैं इस विषय में कुछ बता सकूँगा।"

कल्लर ने नारद को बताया—"एक दिन नदी में नाव चला कर

लौट रहा था जब मैंने उसको पहली बार देखा था। मैं और सुमति दोनो थे। उसने हमारा पीछा किया। जब हम मन्दिर में प्रवेश कर रहे थे तो कुछ मित्रों ने मुझको द्वार पर रोक लिया। मुझसे अपने किसी वादविवाद में वेसम्मति चाहते थे। इस समय उस पीछा करने वाले व्यक्ति ने समीप आकर कहा—"मैं आपसे एकान्त में कुछ बात करना चाहता हूँ।"

मैं पुनः उसके साथ नदी की ओर लौट गया। मार्ग में उसने पूछा—"यह आपके साथ राजकन्या थी क्या ?"

"मैं हँस पड़ा और मैंने सुमति का नाम-धाम बताया। तब उसने कहा कि यह राजकुमारी की परम सखी होगी।"

"मैंने जब स्वीकार किया तो उसने कहा कि कल राजघाट पर दो युवतियाँ नौका पर जा रही थी। किसी ने मुझको वहाँ बताया कि उसमें एक राजकुमारी है। उनमें एक यह लडकी थी। इस कारण मैंने पूछा है। क्षमा करना। शायद यह आपकी बहन है ?"

"मैंने उसको बताया कि नही, यह मेरी भावी पत्नी है।"

"इस पर उसने बताया कि वह एक राजकुमार का सचिव है। उसके स्वामी स्वयवर पर आने वाले हैं। उन्होने उसे राजकुमारी के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिये पहिले भेज दिया है। यदि मैं इसमें उसकी सहायता करूँ तो वह मुझको भारी लाभ पहुँचा सकेगा।"

"मैंने पूछा कि वह क्या जानकारी चाहता है तो उसने मुझसे बहुत प्रश्न पूछे। उनमें कोई ऐसी बात नही थी जिसको मैं छुपाने की आवश्यकता समझता।"

नारद ने पूछा—"क्या आप राजकुमारी के स्वप्नो के विषय में जानते हैं ?"

इस समय कल्लर ने कुछ चिन्तित होकर कहा—"हाँ, मुझको ति ने बताया था।"

"और यह स्वप्नों की बात तुमने उस किसी राजकुमार के सचिव , बताई थी क्या ?"

कल्लर झूठ नही बोल सका। उसने कहा—"हाँ, यह बात भी बताई थी।"

नारद को, जो कुछ वह जानना चाहता था, पता चल गया था। वह बिना किसी से कुछ कहे लौट आया और अपने मन में सचेत रहने का निर्णय कर चुप कर रहा।

मध्याह्न के भोजन के समय स्वयवर पर आये अभ्यागतों में से पाँच निर्वाचितों को निमन्त्रण था। वे आये तो नारद ने उनसे बहुत विस्तार से वातचीत की। इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र आदि विषयो पर एक लम्बा वार्त्तालाप हुआ। जब तक भोजन हुआ वे बातें करते रहे और देवयानी पर्दे के पीछे छुपकर देखती और सुनती रही। उनको विशेष बुलाने के विषय में बताया गया कि उनके परिवार का देवनाम के परिवार से पूर्व सम्बन्ध होने से यह विशेष बुलाने का आयोजन किया गया है। सब आमन्त्रित पूर्णतया सतुष्ट होकर लौटे।

सायकाल पुन देवयानी के साथ विचार-विमर्श के लिये गोष्ठी हुई। महाराज देवनाम ने सुमति के चित्र लाने के विषय में जाँच का परिणाम पूछा। नारद ने अपने मन की बात नहीं बताई। उसने केवल यह कहा—" मै उस व्यक्ति को मिल नही सका। अभी कुछ निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। इस पर भी इतनी बात स्पष्ट है कि कोई भी हो उसके जीवन का विवरण और चित्र महाराज द्वारा ही
... था।"

... में बहुत समय तक वातचीत हुई और परिणाम

स्वरूप विक्रम को घर के उपयुक्त माना गया। महाराज ने विक्रम के सरल विवरण को वहुत पसन्द किया। देवयानी ने उसकी वीरतापूर्ण वार्त्तालाप को वहुत सराहा और महारानी ने उसके चक्रधरपुर के समीप रहनें को गुण माना। नारद ने उसके इतिहास और पुराण के ज्ञान की सराहना की। इस पर भी सव कुछ देवयानी की स्वयवर के समय पर की अन्तिम इच्छा पर छोड दिया। पश्चात् वार्त्तालाप पुन: देवयानी के स्वप्नो पर चल पडी। देवयानी ने वताया कि उसे पिछली रात को वहुत ही विचित्र स्वप्न दिखाई दिया है। जसको ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वे कही समीप ही है। इस पर भी उसने अपना विचार वताया कि उनको उसके पिता जी से मिलना चाहिये था।

उस दिन फिर यह घोषणा करवा दी गई कि यदि कोई राजकुमार आज भी अपना आत्म-विवरण तथा चित्र भिजवा देगा तो उसको भी महाराज की ओर से स्वयवर में सम्मिलित होने का निमत्रण मिल जावेगा। देवयानी को इस घोषणा का पता था और उसको यह भी विदित था कि कोई उस घोषणा के कारण नही आया।

देवयानी अपने पूर्व सस्कारो के कारण महादेव शिव पर मुग्ध थी और जव उस ज्योतिर्मय रूप-छवि का चिन्तन करती थी तव उसको सव कुछ फीका प्रतीत होने लगता था। इस पर भी वह यह समझती थी कि स्वयंवर का अर्थ ही यह है कि वे यहां पधारें, जिससे वह उन के गले में जयमाला डाल सके। इस स्वप्न की वात छोड़कर उसको सवसे अधिक विक्रम पसन्द था, और जव उसके माता-पिता और देवर्षि ने भी उसको ही पसन्द किया है, तो वह पहिले से अधिक सन्तुष्ट और शान्तचित्त थी।

देवनाम ने नगर की रक्षा और स्वयवर के शान्तिपूर्वक सम्पन्न

होने के लिये एक प्रबल सेना को नियुक्त कर रखा था। स्वयवर के लिये निर्मित मण्डप चारो ओर से भलीभाँति रक्षित किया गया था। साथ ही नगरभर में स्थान-स्थान पर सैनिक खड़े थे।

इस रात देवयानी को पुनः स्वप्न आया। आज शिव पार्वतीसहित प्रकट हुए थे। एक बात विचित्र थी और वह यह कि देवयानी पार्वती को अपने रूप में ही देख रही थी। यह देख वह काँप उठी और स्वप्न भग हो गया। उसके मन में अनेको बातें थीं जो इन स्वप्नो के कारण उसके मन में बार-बार आ रही थी।

स्वयवर के दिन जब वह अपने दैनिक कार्य से निवृत्त हुई तो उसकी सखियाँ आ गयीं और उसको कपडे पहिनाकर तैयार करने लगी। जब सुमति आई, तब देवयानी लगभग तैयार हो चुकी थी। वह उससे पृथक् में बातचीत करना चाहती थी, परन्तु अन्य सखियाँ उसको छोड नही रही थी। बहुत ही कठिनाई से देवयानी को अवसर मिला। कुछ वस्तु अपने शयनागार में भूल आने का बहाना कर, वह वहाँ गई और सुमति को अपने साथ ले गई। अन्दर पहुँच उसने भीतर से द्वार बन्द कर लिया और सुमति से पूछा—"उस चित्र का कुछ और पता मिला ?"

सुमति के पास बताने के लिए कोई समाचार नही था। उसने केवल यह कहा—'ये स्वप्न तो कभी-कभी स्वभाव से आने लगते हैं। इनके लिये तुम अपनी बुद्धि का प्रयोग छोड नही सकती।"

"अब मैं मण्डप में जा रही हूँ। मैं चाहती थी कि यदि इस चित्र में कुछ भी यथार्थता होती तो उनको अपने यहाँ होने की सूचना देनी चाहिये थी।"

"राजकुमारी !" सुमति ने कहा—"स्वप्नलोक को छोड वास्तविकता में विचरना बुद्धिमत्ता के लक्षण हैं। जो प्राप्य है उसको छोडकर अनिश्चित

के पीछे भागना मूर्खता है। यही कारण है मैं ज्योतिष में विश्वास छोड़ अपने पुरुषार्थ और बुद्धि में विश्वास करने लगी हूँ।"

दोनो शयनागार से बाहर आयी और सखियो में जा पहुँची। वहाँ से वे सखियो में घिरी हुई स्वयवर मण्डप की ओर चल पडी।

(६)

इस समय स्वयंवर का पूर्वकार्य आरम्भ हो गया था। सवा सौ ब्राह्मणो ने यज्ञ आरम्भ कर दिया था। सामगान हो रहा था। साथ-साथ हवन किया जा रहा था। सबके सब स्वयवर के लिये आमन्त्रित राजा-महाराजा अपने-अपने विशेष कर्मचारियो सहित सिहासन के दाहिनी ओर विराजमान थे। राजकुमारी से वरे जाने के इच्छुक राजा तथा राजकुमार प्रथम पक्ति में उच्च आसनो पर आसीन थे और उनके सेवक उनके पीछे बैठे थे। सिहासन पर महाराज तथा महारानी के लिये आसन था, परन्तु अभी वे भी यज्ञ पर बैठे थे, जो मण्डप के मध्य में भूमि पर ही हो रहा था। ये तथा महाराज के सम्बन्धी तथा कर्मचारी वेदी पर पूर्वाभिमुख बैठे थे और ब्राह्मण, जो यज्ञ करवा रहे थे, वेदी पर पश्चिमाभिमुख आसीन थे। स्वयंवर देखने के लिये आये दर्शक सिहासन के सम्मुख यज्ञवेदी के पार बैठे तथा खडे थे। मण्डप के बाहर तथा भीतर सैनिक एक भारी संख्या में नियुक्त थे।

सिहासन के बाईं ओर उसके कुछ नीचे देवयानी के लिये आसन था और उसके साथ एक और रिक्त आसन था। सिहासन के पीछे स्त्रियो के लिये स्थान था।

जब देवयानी वहाँ पहुँची तो यज्ञ की पूर्णाहुति पड रही थी। देवयानी पूर्णाहुति दे रहे अपने माता-पिता के पीछे आकर खडी हो गयी।

यज्ञ समाप्त हो गया। महाराज, महारानी और देवयानी अपने-अपने स्थानो पर जाकर बैठ गये। नारद, जो यज्ञ में ब्राह्मणों के साथ

गई। वह व्यक्ति पहिले चक्कर में वहाँ नहीं था। उसका रूप भगवान् शिव का सा था। देवयानी ने देखा। वही जटाजूटधारी, सर्पों की माला पहिने, जटाओं में चन्द्राकार मणि-माणिक्य-जडित भूषण लगाए बैठा था। फणदार सर्प, जो उसके गले में लटक रहे थे, फूत्कार करते हुए देवयानी की ओर देख रहे थे। देवयानी ने आँखें मूंद अपने स्वप्न, पुरुष से उसका मिलान किया। उसने अनुभव किया कि वह तेज और सम्मोहन शक्ति में, जो उसके स्वप्न पुरुष में थी, बहुत हीन था। उसने आँखें खोल पुन उस पुरुष को ध्यान से देखा। उसकी रूपरेखा को अपने हृदय में स्थित मूर्ति से मिलाने के लिए उसने पुन आँखें मूंदी। उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि वह वह व्यक्ति नही है, परन्तु सुमति की भविष्यवाणी और उस चित्र का, जो सुमति लाई थी, आना उसको प्रेरणा दे रहा था कि उसका वर यही है।

नारद ने देवयानी को एक स्थान पर खडे होकर विचार करते देख ध्यान से उस व्यक्ति को देखा। दूर से ही शिव की रूपरेखा के पुरुष को देख वह भाँप गया कि इसमें कुछ धोखा है। वह उठकर उस स्थान पर आ, देवयानी के पीछे खडा हो, शिव का स्वाग किए नहुष को पहिचान गया।

देवयानी ने मन कडा कर जब दूसरी बार आँखें खोली तो शिव के मायावी रूप में नहुप ने माला स्वीकार करने के लिए शीश झुका दिया। देवयानी ने भी माला डालने के लिए हाथ आगे बढ़ाया। इसी समय नारद ने अपना हाथ उसके कधे पर रखा और कहा—"देवयानी, यह तुम्हारा इष्टदेव नही। यह मायावी नहुष है, जिसने देवलोक पर धोखे से राज्य प्राप्त किया है।"

देवयानी ने तुरन्त माला पीछे कर ली और उसको पुन ध्यान से देखा। इस बार उसको स्पष्ट दिखाई पडा कि उसकी जटाएँ इत्यादि कृत्रिम हैं। उसने मन में भगवान् का ध्यान किया और कृतज्ञताभरी

दृष्टि से नारद की ओर देखा। नारद ने देवयानी का विवर्ण मुख देखकर कहा—'अपना कार्य समाप्त करो बेटी !"

देवयानी ने आगे बढने के लिए अपना पग उठाया तो नहुष को क्रोध चढ आया। उसने जटायें इत्यादि उतारकर फेंक दी और लपककर देवयानी को उठा कधे पर डाल लिया। उसे लेकर वह भाग खडा हुआ।

नहुष के सैनिक साधारण वस्त्रो में उसके पीछे खडे थे। उन्होने अपने खड्ग नगे कर लिए और नहुष तथा देवयानी को चारो ओर से घेर लिया। इस घेरे में घिरा नहुष मंडल के द्वार की ओर चल पड़ा।

इस पर पूर्ण मडप में हाहाकार मच गया। दर्शक एक ओर हट गए। आमन्त्रित राजा-महाराजा किंकर्तव्य विमूढ़ एक ओर खडे हो गए। द्वार पर काश्मीर के सैनिको ने मार्ग रोक लिया और अन्य सैनिक, जो मडप में खडे थे, तलवारें खींच देवयानी को छुडाने के लिए गान्धार-सैनिको के घेरे पर टूट पड़े। युद्ध की यह अवस्था देख देवनाम भी अपनी खड्ग निकालकर नहुष की ओर लपका।

यह सब कुछ घटने पर भी नहुष के सिपाही पग-पग कर मडप की ओर बढ ही रहे थे। नहुष के नाम का आतक भी मडप में छा गया था। लोग जानते थे कि वह महाबली पुरुष है और इस आतंक-भाव से लाभ उठा गान्धार-सैनिक कश्मीर के सैनिको को पछाड रहे थे। इस पर भी देवनाम जी तोडकर लड़ रहा था।

नहुष का पूर्ण प्रयत्न इस बात में था कि वह शीघ्रातिशीघ्र मंडप से बाहर निकल जाये। बाहर उसके सहस्रो सैनिक देवयानी को लेकर भाग जाने का प्रबन्ध किये हुए थे। अब बाहर खड़े गान्धार-सैनिक मंडप के द्वार पर आक्रमण कर उसको अपने अधिकार में कर लेने का यत्न कर रहे थे। वह अपने सिपाहियो को पुकार-पुकार कर कह रहा था—

"द्वार की ओर बढो।" उसको विश्वास था कि एक बार वह द्वार के बाहर पहुँच गया, तो उसके लिये देवयानी का अपहरण करना सुगम हो जावेगा।

काश्मीरसैनिक लड रहे थे, परन्तु उनके शारीरिक बल के सामने गाजर-मूली की भाँति कट रहे थे। ऐसा प्रतीत होने लगा था कि दो-चार पल में देवयानी का अपहरण हो जावेगा। देवयानी नहुष के कन्धे पर लटकी हुई हाथ-पाँव मार रही थी, परन्तु नहुष की सुदृढ़ लोहरूप भुजाओ में सिह के मुख में हिरनी की भाँति फँसी हुई छटपटा रही थी।

यह दृश्य देख विक्रम का रक्त खौल उठा। वह अपने स्थान से उठा और तलवार निकालकर नहुष से ललकारकर बोला—"छोडो राजकुमारी को। पापी! दुष्ट!" और वह लपककर नहुष के सैनिको तथा मडप के द्वार के बीच जा पहुँचा। वह देख रहा था कि काश्मीर-सैनिको का बल उस ओर कम हो रहा है। विक्रम के समीप बैठे अन्य राजाओ-महाराजाओ ने कहा भी—"यह तुम्हारा काम नही युवक! यहाँ के महाराज को इस परिस्थिति की पहिले ही आशा करनी चाहिये थी और उसका प्रबन्ध पहिले ही कर लेना चाहिये था।"

परन्तु विक्रम के मस्तिष्क में तो वह उत्साह समा रहा था, जो मृगया के समय उसमें आ जाया करता था। उसके मन में आत्मगौरव की भावना जाग उठी थी। वह विचार कर रहा था कि काश्मीर की राजकुमारी को एक विदेशी उठा कर ले जाये, यह काश्मीर के प्रत्येक युवक के लिये लज्जा की बात है। इस भावना से प्रेरित वह इस युद्ध में ऐसे कूद पडा जैसे वह जगल में सिह का मुकाबिला करने को कूद पडा करता था।

विक्रम की ललकार सुन नहुष खिलखिलाकर हँस पडा और अपने

सैनिको से तिरस्कार के भाव में वोला—‘इस मच्छर को मसल डालो।”

पर हुआ इससे विपरीत। नहुष की गति द्वार की ओर अवरुद्ध हो गई। विक्रम की तीक्ष्ण तलवार ने वहाँ का पर्याप्त मैदान खाली कर दिया और रिक्त स्थान में काश्मीर के सैनिक आ डटे। इसके साथ ही यह हुआ कि गान्धारसैनिको के भारी सख्या में घायल अथवा मृत्यु के घाट उतारे जाने से विक्रम और नहुष आमने-सामने हो गये। नहुष के हाथ देवयानी को सम्भालने में लगे थे परन्तु अब इस चुनौती देने वाले को सामने देख उसनें देवयानी को कन्धे से उतार भूमि पर खडा कर, अपना बायाँ हाथ उसकी कमर में डाल उसको पकड रखा और दाहिने हाथ में तलवार निकाल विक्रम से लडने लगा। विक्रम के दो ही तीन वार झेलकर नहुष को पता चल गया कि उसका पाला किसी नौसिखिये से नही पड़ा। उसका प्रतिद्वन्दी युद्धकला में एक अति कुशल व्यक्ति है। इस कारण अपने शरीर का सतुलन ठीक रखनें के लिये उसको देवयानी की कमर से हाथ हटाना पडा। इससे देवयानी का स्वतत्र होने का अवसर मिल गया। इससे लाभ उठा उसने एक मृत सैनिक का, भूमि पर पड़ा खड्ग ले लिया और उसे चलाती हुई अपना मार्ग अपने पिता की ओर वनाने लगी।

मंडपभर में इस नई परिस्यिति के विषय में रुचि उत्पन्न होने लगी। देवयानी अपने मान और जीवन के लिये लड रही थी। दूसरी ओर देवनाम अपने सैनिको के साय देवयानी तक पहुँचने का यत्न कर रहा था। देवयानी को चडी भवानी की भाँति तलवार चलाते देख गान्धारसैनिको के छक्के छूट गये और इससे सग्राम का अंत हो गया। देवयानी जब अपने पिता के निकट पहुची तो नारद उसको महारानी के समीप ले गया और बहुत से सैनिक नंगी तलवारें लिये उसके चारो ओर घेरा डालकर खड़े हो गये।

नहुष ने जब प्रतिकूल परिस्थिति को देखा तो युद्ध को व्यर्थ मान उसने हथियार डाल दिये। विक्रम ने उसकी तलवार को ले लिया और नहुष को बदी बना लिया। गान्धारसैनिको ने भी अपने को बन्दी बन जाने दिया। नहुष के वन्दी होने का समाचार बाहर पहुँचा तो वहाँ भी गान्धार-सैनिको ने हथियार डाल दिये।

नहुष का प्रयास विफल गया। इसमें बहुत सीमा तक श्रेय विक्रम को मिला। देवयानी ने यह देखा था। विक्रम के चपल हाथो को लम्बी तलवार से गान्धार सैनिको का काम तमाम करते सबने देखा था। इस पर अनायास दर्शको के मुख से विक्रम की जयघोष निकल पडी—"जय हो वीर बहादुर की, जय हो।"

देवनाम ने जब युद्ध शान्त देखा तो सिंहासन के समीप खडे होकर उपस्थित जनो को भी शान्त कराया। इस समय नहुष के हाथ-पाँव बाँध उसे महाराज के सामने खडा कर दिया गया।

महाराज देवनाम ने सभा के शान्त हो जाने पर घोषणा की—"मैं समझता हूँ कि स्वयवर का शेष कार्य चालू होना चाहिये। इसको अब स्थगित नही किया जा सकता। राजकुमारी वर चुनने के लिये आ रही है।"

विक्रम के बायें बाजू पर घाव आ गया था और उस पर पट्टी बाँध वह पुन. अपने स्थान पर आ गया था। देवयानी ने नई पुष्प-माला

पकड़कर आदरसहित सिंहासन के पास ले गया। देवयानी के आसन के पास रिक्त आसन पर उसको बैठा दिया।

अब महाराज ने सभा में उपस्थित जनों को सम्बोधन कर कहा—"सभ्यगण! मैं आप सबका हार्दिक धन्यवाद करता हूँ। आमन्त्रित राजाओं महाराजाओं का मैं आभारी हूँ। कभी भी किसी भी कार्य में काश्मीर उनकी सेवा के लिये तैयार रहेगा। आप सबने देखा है कि राजकुमारी ने श्री विक्रम को वरमाला पहनाई है। मैंने उसके निर्णय को स्वीकार कर लिया है और उसको अपने सपुत्र समान आदरसहित यहाँ बैठाया है। इनका विवाह आज सायकाल यहाँ सम्पन्न होगा और मैं आप सबको उसमें सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रण देता हूँ। विवाहोपरान्त होने वाले भोज में आप सम्मिलित होकर मुझको कृतार्थ करेंगे, ऐसी मैं आशा करता हूँ।

"अब इस बंदी के विषय में, जो आपके सम्मुख खड़ा है, निर्णय भी मैं आपके सम्मुख कर देना चाहता हूँ। आप सबने इसके अपराध को देखा है।

"क्यों वन्दी महोदय! तुम कौन हो?"

"मैं देवलोक का विजेता नहुष हूँ। मैं वह हूँ जिसने सुरराज इन्द्र को वन्दी बनाया हुआ है।"

"तुमने यह अपराध क्यों किया? यह हमारे राज्य में धर्मविरुद्ध माना जाता है।"

"मैंने जो कुछ किया है वह मेरे अपने समाज में प्रचलित धर्म के विरुद्ध नहीं। मैंने अपने यहाँ का धर्म पालन किया है।"

'तुमको यह विदित होना चाहिये कि तुम अपने राज्य में नहीं हो।"

"परन्तु देवनाम! तुमने मुझको निमन्त्रण न भेजकर मेरा अपमान किया है। मैं तुम्हारा पड़ोसी हूँ। साथ ही तुम्हारे क्रीतदास

नारद ने लड़की के निर्णय को बदल दिया और उसके पूर्ण होने में बाधा डाली। वह मेरे गले में वरमाला डालने वाली थी। उसने उसको मना कर दिया। यह न्यायसगत नही हुआ। तुमने यह घोषणा की थी कि लड़की को वरने में स्वतन्त्रता होगी, परन्तु मैंने देखा कि उसको स्वतन्त्रता नही थी।"

"मेरे निमन्त्रण न देने के विषय में यह बात तुम्हारे ध्यान में होनी चाहिये कि तुम्हारी सेना ने दो बार काश्मीर पर आक्रमण किया था। यद्यपि तुम इन आक्रमणो में सफल नहीं हुए तो भी तुम्हारा यह कार्य शत्रुता का था। मै अपनी लड़की के स्वयवर पर अपने शत्रु को नही बुला सकता था। राजकुमारी को आमन्त्रित जनों में से ही वर चुनने की स्वतन्त्रता थी। अन्यथा स्वयवर-आयोजन के स्थान उसे ससार में भ्रमण कर वर ढूंढने की स्वतन्त्रता दी जाती।

"अतएव मेरे निमन्त्रण न भेजने में प्रबल कारण हैं। तुम मेरे पड़ोसी होते हुए भी मेरे शत्रु हो, परन्तु तुम्हारे निमन्त्रण के बिना आना और फिर तुम्हारा अपने स्वाभाविक रूप में न आकर मायावी रूप बनाकर यहाँ बैठना अपराध है। देवर्षि नारद के तुम्हारे धोखे के प्रकट कर देने पर देवयानी का तुमको वरमाल पहिनाने से इन्कार कर देना स्वाभाविक ही था। इस पर तुम्हारा उसको बलपूर्वक अपहरण करने का यत्न एक भारी अपराध है।"

"क्या दण्ड दोगे तुम मुझको ?"

"जो भी दण्ड यहाँ उपस्थित भाई-बन्धु तुम्हारे लिये उचित समझेंगे। इन्होंने सब कुछ स्वय देखा है।"

इस पर नहुष ने वहाँ उपस्थित राजाओ-महाराजाओ से कहा—"भाइयो! आप क्या कहते है? यदि मैं अपने प्रयास में सफल हो जाता तो आप मेरे शौर्य और चतुराई की प्रशसा करते। दुर्भाग्य से यह वीर पुरुष मेरी गणना में नही था। इस योद्धा ने युद्ध का पासा

पलट दिया है। इस कारण इस वीर की तो प्रशंसा करता हूँ, परन्तु इससे मुझमें कौन-सा दोष आ गया है ? केवलमात्र हार जाने से ही तो कोई निन्दनीय नही हो जाता।"

इस पर विक्रम अपने आसन से उठकर कहने लगा—"मै अपनी प्रशसा के लिये वन्दी का धन्यवाद करता हूँ। परन्तु मै उसकी युक्ति से सहमत नही हूँ। केवलमात्र शौर्य तो मूर्खों की दृष्टि में ही प्रशसा का कारण हो सकता है। शौर्यप्रदर्शन में उद्देश्य मुख्य है। यदि राम के स्थान रावण की विजय हो जाती तो वह प्रशसनीय न होता। इससे जनता के मन में उल्लास उत्पन्न नही होता। एक अपहरण की गयी स्त्री को छुडा सकना जनता की दृष्टि में सराहनीय हुआ है।

"इस पर भी मैं महाराज को यह सम्मति दूंगा कि वन्दी को आज मेरे विवाह की प्रसन्नता में छोड दिया जाय। मैं फिर किसी दिन इससे लोहा लेने का विचार रखता हूँ। मै जानता हूँ इस व्यक्ति ने सभ्य समाज के आचरण के विरुद्ध व्यवहार किया है। इस पर भी मेरा निवेदन है कि इसको मेरे ऊपर छोड दिया जावे। इसको यहाँ दण्ड मिल जाने पर मेरे पास इसको दण्ड देने का कोई अवसर नही रह जावेगा।"

सब लोग इस उदारता को देख 'वाह ! वाह !' करने लगे। सब जहाँ विक्रम की वहादुरी की प्रशसा करते थे वहाँ इस उदारता की भी मुक्तकठ से सराहना करते थे।

नारद विक्रम की इस दया से विचलित हो उठा। वह समझ रहा था कि नहुष अपने जाल में फँस गया है और उसको यहाँ वन्दी वना रखने से देवलोक परतन्त्रता के बन्धन से शीघ्र ही मुक्त हो सकेगा। इस कारण वह विक्रम की उदारता से असंतुष्ट था। इस पर भी वह जानता था कि महाराज देवनाम को अपने जामाता की प्रथम इच्छा को ठुकराना उचित नही।

नारद दाँत पीसता रहा और। देवनाम ने उठकर आज्ञा दे दी—"मैं अपने जामाता की पहिली माँग को 'न' नहीं कर सकता। इस कारण मैं नहुष को काश्मीर की सीमा पार ले जाकर मुक्त कर देने की आज्ञा देता हूँ।"

देव-लोक

(१)

"यदि मैं तुम्हारा नहुष के पंजे से उद्धार करने के लिए आगे न आता तो तुमसे विवाह का सौभाग्य मुझको प्राप्त न होता।" विक्रम अपनी पत्नी देवयानी को, जब वे रथ में बैठे स्वयंवर तथा विवाह के पश्चात् अपने घर को जा रहे थे, कह रहा था।

"आप यह ठीक कहते हैं। इस पर भी मैंने आपके अतिरिक्त और किसी को भी जयमाला नहीं डाली।"

"परन्तु तुम नहुष के गले में जयमाल डालने ही वाली थी।"

"उसने मायावी रूप बनाकर मुझको भ्रम में डाल दिया था। मैं समझती हूँ कि मुझे आपको अपना रहस्य बता देना चाहिए। मुझे उसे कहने में कोई लज्जा प्रतीत नहीं होती। इस पर भी इससे आपके मन में यह बात स्पष्ट हो जावेगी कि किस कारण से मैं उसके गले में जयमाला डालने जा रही थी।

"पिछले कई वर्षों से मुझे स्वप्नों में भगवान् शिव के दर्शन होते रहे हैं। वे इस प्रकार प्रकट होते रहे हैं कि मैं उनसे प्रेम करने लगी हूँ। यह रहस्य मेरे माता-पिता और देवर्षि नारद को विदित है। उन्होंने मुझको बताया कि यह मेरे मन का भ्रम है। कारण यह कि भगवान् शिव का देहान्त हुए चिरकाल हो चुका है। देवर्षि की राय से मैं स्वयंवर करने के लिये तैयार हुई थी और जीवनभर कुंवारी रहने

का विचार छोड़ दिया था। इस पर भी भगवान् के दर्शन स्वप्नो में होते रहे। मैं उन्हें अपने मस्तिष्क से निकाल नही सकी।

'स्वयवर से पूर्व जब मैंने आपका चित्र देखा तो कुछ आपका रूप मुझको जाना-बूझा प्रतीत हुआ। जब आप पहिली बार पिता जी से मिलने आये थे तो मै, जो पर्दे के पीछे बैठी आने वालो को देख रही थी, आपको देख चकित रह गई। ऐसा प्रतीत हुआ कि आप मेरे बचपन के परिचित हैं। यही कारण था कि मेरे कहने पर पिता जी ने दूसरे दिन पुन आपको भोजन के लिए आमन्त्रित किया, और मेरे मन में आपको ही वरने का निश्चय हो चुका था। परन्तु जब मैंने नहुष कै उस मायावी रूप को देखा तो अपने स्वप्नो के सस्कारो के कारण मैं विचलित हो चली थी। भगवान् का धन्यवाद है कि देवर्षि उसके कृत्रिम रूप को पहिचान गए और समय पर सचेत करने के लिए पास आ गए। उसके पश्चात् क्या हुआ श्रीमान् जी जानते ही हैं। इन सब बातो के होने पर भी श्रीमान् मुझको एक पतिव्रता सती साध्वी पत्नी के रूप में पावेंगे।"

विक्रम यह कथा सुन चकित रह गया और विस्मय में उसका मुख देखता रह गया। देवयानी ने समझा कि उसकी कथा का विक्रम पर अच्छा प्रभाव नही पड़ा। इस पर भी उसको अपने मन की बात बता देने में शोक नही हुआ। वह चाहती थी कि उनको सच्चाई का ज्ञान हो जाए। विवाहित जीवन के आरम्भ से ही वह परस्पर दोनों के मन में कोई भेद-भाव नही रहने देना चाहती थी, परन्तु जब उसने अपने पति को चुपचाप अपनी ओर देखते पाया तो उसके मन में एक प्रकार का भय-सा समा गया। उसके मन में चिन्ता उत्पन्न हो गई और वह उसके निवारण का उपाय सोचने लगी। इस कारण उसने पूछा—"श्रीमान्! क्या मैंने कोई बुरी बात कही है? यदि ऐसा है तो मैं क्षमा-याचना करती हूँ। स्वामी! क्या यह ठीक नही कि पति-पत्नी में कोई लुकाव-

छिपाव नहीं होना चाहिए ? इसी विचार से मैंने अपने मन की बात खोलकर रख दी है, जिससे मेरे शरीर और आत्मा के प्रति प्रभु को कभी यह कहने का अवसर न मिले कि मैंने कुछ बात उनसे छुपाकर रखी हुई है। सत्य का ज्ञान हो जाने से एक-दूसरे को समझने में सुभीता रहेगी। इससे हमारा जीवन सुखी रहेगा और आनन्दपूर्वक व्यतीत होगा।" इतना कहकर उसने झुककर अपने पति के चरणों को स्पर्श किया।

विक्रम ने उसको प्रेमभरी दृष्टि से देखते हुए कहा—"मुझको तुम्हारी कथा पर इतना विस्मय नहीं हुआ, जितना अपने अनुभवों का स्मरण हुआ है। सुनो ! मुझको भी बचपन में एक सुन्दर लड़की के स्वप्न आते रहे हैं। और यह जानकर तुमको विस्मय होगा कि मेरी स्वप्नों की लड़की का रूप तुम्हारे चित्र में मिला था, जो चित्र तुम्हारे पिता ने निमन्त्रण के साथ भेजा था। दोनों सर्वथा समान थे। स्वयंवर के विषय में मैंने निमन्त्रण से पूर्व भी सुना था, परन्तु यहाँ आने को मन नहीं कर रहा था। मुझको भय था कि बहुत छोटा जमींदार होने के कारण तुम्हारी दृष्टि में जचूंगा ही नहीं। मेरी माता जी ने बताया था कि मेरे बाबा काश्मीर राज्य से लड़कर चले आये थे, इस कारण राज्य में किसी प्रकार का मान पाने की भी आशा नहीं थी। परन्तु जब देखा कि तुम मेरे स्वप्नों की रानी हो, तो माँ तथा अन्य सम्बन्धियों के मना करने पर भी स्वयंवर में आ पहुँचा। जब महाराज का स्वयंवर से एक दिन पूर्व भोज के लिए निमन्त्रण मिला, तो चकित रह गया। आशा करता था कि तुम्हारे दर्शन होंगे, परन्तु हुआ वादविवाद देवर्षि से। मैं निराश लौटा। स्वयंवर के समय जब नहुष तुम्हारा अपहरण करने लगा तो मैं समझ गया कि मेरा अवसर आ गया है। अपने समीप बैठे साथियों के मना करने पर भी मैं कूद पड़ा और नहुष से दो-दो हाथ करने के लिए उसके सामने जा पहुँचा।

"मेरी प्रसन्नता का कोई अन्त नहीं रहा, जब नहुष बन्दी बना लिया गया और तुमने आकर जयमाल मेरे गले में डाल दी। उस समय मेरे सामने पूर्ण दृश्य धुधला-सा हो गया। जो कुछ भी हुआ वह इतना आनन्दोत्पादक तथा अनहोना था कि मेरे मन में किसी के बीच में पड सब कुछ बदल देने का भय आ गया था।"

देवयानी को यह कथा सुन अति विस्मय हुआ। स्वप्नो में समता से उसके मन में अनेकानेक अन्य विचार उत्पन्न होने लगे। उसके आनन्द का पारावार नहीं रहा और उसकी आँखो से आनन्दाश्रु बहने लगे। उसने आँसू पोछते हुए कहा—

"इससे तो यह पता चलता है कि हम अपने पूर्वजन्म के सस्कारो के बल से एक-दूसरे के लिए ही बने थे। कोई अज्ञात शक्ति थी जो हम दोनो को खीचकर इकट्ठा कर रही थी। मनुष्य उस शक्ति का विरोध नहीं कर सका और हम यहाँ पहुँच गए हैं। इससे तो मुझको और भी प्रेरणा मिलेगी, जिससे मैं आपकी सेवाभक्ति और भी श्रद्धा से कर सकूँगी।"

विक्रम की माँ ने बहू को देखा तो बहुत प्रसन्न हुई। उसने बहू को गले लगाया और उसे अपने लडके के आगार में ले गयी। पडोस की स्त्रियाँ आईं और विक्रम की बहू का सौन्दर्य देख चकित रह गयीं। किसी को स्वप्न में भी यह विचार नही आया था कि विक्रम का रूप इतना आकर्षक है कि महाराज-काश्मीर की राजकुमारी उसको वरेगी।

माँ पुत्र को एक ओर ले जाकर पूछने लगी—"बेटा यह कैसे हो सका है? कैसे तुम इतनी सुन्दर बहू को पा सके हो? महाराज-काश्मीर तो हमारे परिवार से असन्तुष्ट थे।"

"माँ! मैं नही जानता।" उसने आँखे चरणों में झुकाकर कहा—"यह सब तुम्हारे आशीर्वाद के प्रताप से हुआ प्रतीत होता है। कुछ

थोड़ी लडाई करनी पडी थी और शौर्य तथा शिक्षा, जो तुमने मुझको दी हुई है, मेरी सहायक सिद्ध हुई हैं।"

पुत्र के लिए उन्नति के इस नये द्वार के खुल जाने से माँ का हृदय गद्‌गद् हो उठा। उस छोटे से गाँव में वह अपना जीवन व्यर्थ गँवा रहा था।

एक दिन देवयानी ने अपने पिता की कठिनाई का वर्णन किया कि उनका कोई पुत्र न होने से वे राज्य का कार्यभार किसे सौंपें ? साथ ही उसने अपने पति से चक्रधरपुर से चलकर पिता जी को राज्य के कठिन कार्य में सहायता देने की प्रार्थना की। उसने अपने पिता को भी लिख दिया कि अपने जामाता को चक्रधरपुर आने का निमन्त्रण दें और उससे राज्य के कार्य में सहायता लें।

इस प्रकार अपने जन्म-स्थान पर कई मास तक रहने के पश्चात् विक्रम देवयानी सहित चक्रधरपुर के लिए तैयार हो गया। इस वार उसने अपनी माता को भी चलने के लिये कहा, परन्तु माँ ने एकदम न कर दी। माँ ने कहा—"जहाँ मेरे पति ने अपना अन्तिम श्वास छोडा था, मैं वहाँ पर ही मरना चाहती हूँ।"

देवयानी ने भी अपनी सास को अपने साथ ले चलने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु उसने कह दिया—"बेटी ! मुझको अति प्रसन्नता है कि तुम मेरे पुत्र की देखभाल कर रही हो। मुझको तुम पर पूर्ण विश्वास है। मैं जानती हूँ कि तुम अपने पति का कहीं पर भी अपमान नही होने दोगी। उसकी मान-प्रतिष्ठा से ही तुम्हारी मान-प्रतिष्ठा होगी। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। जाओ ! वीर धीमान् और चतुर पुत्रो की माँ बनो, जो तुम्हारे पति का नाम ससारभर में विख्यात करें।"

देवयानी का विश्वास था कि नहुप अपने अपमान का बदला अवश्य लेगा। इस कारण वह उत्सुक थी कि शीघ्रातिशीघ्र काश्मीर की रक्षा

का प्रबन्ध किया जाय। वह चाहती थी कि विक्रम इस कार्य में उसके पिता का साथ दे।

जब विक्रम चक्रधरपुर में पहुँचा तो देवनाम ने उसको सेनापति का पद दे दिया। यह काम विक्रम को अति रुचिकर था और वह सेना के पुन: सगठन और उसमें परिवर्द्धन करने के लिए जी-जान से लग गया। उसने गुप्तचरो का एक दल भी सगठित किया जो देवलोक गान्धार और ब्रह्मावर्त में जाकर वहाँ की सैनिक स्थिति का भेद लेकर उसके पास भेजने लगा। इस प्रकार उसने काश्मीर को अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बना डाला।

(२)

देवलोक हिमालय की ऊँचाइयों पर और उसके पार ऊँचे पठार पर स्थित देश था। काश्मीर से पूर्व-उत्तर की ओर जाने से इस देश में प्रवेश पाया जा सकता था। यह वादियो की एक शृखला थी जिसको ऊँचे पर्वत एक दूसरे से पृथक् करते थे। अन्तिम महाप्लावन के पूर्व से ही देवता इस स्थान पर रहते थे और स्थान की ऊँचाई के कारण प्लावन में वह जाने से बच गये। प्लावन के समय उन वादियों का तापमान साधारण था परन्तु प्लावन के पश्चात् भौगोलिक परिस्थितियों के बदल जाने से और समुद्र के दूर चले जाने के कारण यह स्थान धीरे-धीरे शीतप्रधान होता गया। देवताओ की बुद्धि और उनका प्लावनपूर्व के विद्वानो से प्राप्त हुआ ज्ञान लाखो वर्षो के मनुष्य के अनुभव का निचोड था। इस अपार ज्ञान के कारण ज्यो-ज्यो उनके देश में शीत बढती गई वे अपने विज्ञान के बल से देशभर के तापमान को जीवन के लिए अनुकूल अवस्था में रखते रहे।

उनको पूर्ण देश का तापमान साधारण रखना था, जिससे वे वहाँ आनन्द से रह सकें। इसके लिए उनको शक्ति का अतुल भंडार चाहिए था और इस शक्ति को उन्होंने प्रकृति के गर्भ से प्राप्त किया, जहाँ

वह सुषुप्त अवस्था विद्यमान थी। देवता उसके अस्तित्व को जानते थे और उसे प्रकृति से बाहिर निकालने का उपाय भी जानते थे। उन्होंने उसको एकत्रित किया और इस शक्ति का प्रयोग उन्होंने जीवन को सुलभ और सुगम बनाने में लगाया।

प्रकृति अपनी आदि अवस्था में शक्ति के अतिरिक्त और कुछ नही है। आदि प्रकृति के तीन रूप सत्, रज और तम जब तक सतुलित अवस्था में रहते हैं तब तक प्रकृति में परिवर्तन नही हो पाता। जब यह संतुलन टूटता है तब गति अर्थात् परिवर्तन उत्पन्न होता है और संसार के भिन्न-भिन्न पदार्थ उत्पन्न हो जाते हैं। ससार में प्रत्येक पदार्थ परिवर्तनशील है। कुछ पदार्थों में यह परिवर्तन द्रुत गति से होता है और कुछ में अत्यन्त धीमी गति से। अधिक पदार्थों में, जो इस ससार में स्थायी-से प्रतीत होते है यह परिवर्तन अति धीमी गति से हो रहा होता है।

जब पदार्थ मे परिवर्तन होता है तो उसमें सचित शक्ति किसी एक रूप में प्रकट होती है। इस शक्ति का प्रवाह पदार्थो के परिवर्तन की गति के अनुसार होता है। जहाँ गति तीव्र होती है वहाँ शक्ति प्रचुर मात्रा में निकलती है। जहाँ गति धीमी होती है वहाँ शक्ति भी कम मात्रा में निकलती दिखाई देती है। देवताओ की चतुराई इसमें थी कि वे एक स्थायी पदार्थ को लेकर उसमे परिवर्तन की गति को तीव्र कर सकते थे और उसमें शक्ति को एक धारा के रूप मे प्राप्त कर सकते थे। शक्ति की इस धारा को वे अपने देश को उष्ण रखने मे प्रयोग करते थे। देश को प्रकाशमय करने में, खेतो में उपज बढाने में और अपने यन्त्रादि चलाने में भी वे इस धाराप्रवाह शक्ति का प्रयोग जानते थे।

कुछ पदार्थों में वे इस परिवर्तन की गति को इतना तीव्र कर सकते थे कि शक्ति इतनी अधिक मात्रा में एकदम निकलती थी कि यह भयंकर

का प्रवन्ध किया जाय। वह चाहती थी कि विक्रम इस कार्य में उसके पिता का साथ दे।

जब विक्रम चक्रधरपुर में पहुँचा तो देवनाम ने उसको सेनापति का पद दे दिया। यह काम विक्रम को अति रुचिकर था और वह सेना के पुनः संगठन और उसमें परिवर्द्धन करने के लिए जी-जान से लग गया। उसने गुप्तचरों का एक दल भी संगठित किया जो देवलोक गान्धार और ब्रह्मावर्त में जाकर वहाँ की सैनिक स्थिति का भेद लेकर उसके पास भेजने लगा। इस प्रकार उसने काश्मीर को अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बना डाला।

(२)

देवलोक हिमालय की ऊँचाइयों पर और उसके पार ऊँचे पठार पर स्थित देश था। काश्मीर से पूर्व-उत्तर की ओर जाने से इस देश में प्रवेश पाया जा सकता था। यह वादियो की एक शृंखला थी जिसको ऊँचे पर्वत एक दूसरे से पृथक् करते थे। अन्तिम महाप्लावन के पूर्व से ही देवता इस स्थान पर रहते थे और स्थान की ऊँचाई के कारण प्लावन में वह जाने से बच गये। प्लावन के समय उन वादियो का तापमान साधारण था परन्तु प्लावन के पश्चात् भौगोलिक परिस्थितियो के बदल जाने से और समुद्र के दूर चले जाने के कारण यह स्थान धीरे-धीरे शीतप्रधान होता गया। देवताओ की बुद्धि और उनका प्लावनपूर्व के विद्वानो से प्राप्त हुआ ज्ञान लाखो वर्षो के मनुष्य के अनुभव का निचोड था। इस अपार ज्ञान के कारण ज्यो-ज्यो उनके देश में शीत बढती गई वे अपने विज्ञान के बल से देशभर के तापमान को जीवन के लिए अनुकूल अवस्था में रखते रहे।

उनको पूर्ण देश का तापमान साधारण रखना था, जिससे वे वहाँ आनन्द से रह सकें। इसके लिए उनको शक्ति का अतुल भंडार चाहिए था और इस शक्ति को उन्होंने प्रकृति के गर्भ से प्राप्त किया, जहाँ

वह सुषुप्त अवस्था विद्यमान थी। देवता उसके अस्तित्व को जानते थे और उसे प्रकृति से वाहिर निकालने का उपाय भी जानते थे। उन्होंने उसको एकत्रित किया और इस शक्ति का प्रयोग उन्होंने जीवन को सुलभ और सुगम बनाने में लगाया।

प्रकृति अपनी आदि अवस्था में शक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। आदि प्रकृति के तीन रूप सत्, रज और तम जब तक सतुलित अवस्था में रहते हैं तब तक प्रकृति में परिवर्तन नही हो पाता। जब यह संतुलन टूटता है तब गति अर्थात् परिवर्तन उत्पन्न होता है और संसार के भिन्न-भिन्न पदार्थ उत्पन्न हो जाते हैं। संसार में प्रत्येक पदार्थ परिवर्तनशील है। कुछ पदार्थों में यह परिवर्तन द्रुत गति से होता है और कुछ में अत्यन्त धीमी गति से। अधिक पदार्थों में, जो इस संसार में स्थायी-से प्रतीत होते हैं यह परिवर्तन अति धीमी गति से हो रहा होता है।

जब पदार्थ मे परिवर्तन होता है तो उसमें सचित शक्ति किसी एक रूप में प्रकट होती है। इस शक्ति का प्रवाह पदार्थों के परिवर्तन की गति के अनुसार होता है। जहाँ गति तीव्र होती है वहाँ शक्ति प्रचुर मात्रा में निकलती है। जहाँ गति धीमी होती है वहाँ शक्ति भी कम मात्रा में निकलती दिखाई देती है। देवताओ की चतुराई इसमें थी कि वे एक स्थायी पदार्थ को लेकर उसमे परिवर्तन की गति को तीव्र कर सकते थे और उसमे शक्ति को एक धारा के रूप मे प्राप्त कर सकते थे। शक्ति की इस धारा को वे अपने देश को उष्ण रखने मे प्रयोग करते थे। देश को प्रकाशमय करने में, खेतो में उपज बढाने में और अपने यन्त्रादि चलाने में भी वे इस धाराप्रवाह शक्ति का प्रयोग जानते थे।

कुछ पदार्थों में वे इस परिवर्तन की गति को इतना तीव्र कर सकते थे कि शक्ति इतनी अधिक मात्रा में एकदम निकलती थी कि यह भयकर

विस्फोट का रूप धारण कर सकती थी। इससे वे अपने शत्रुओं का नाश कर सकते थे।

पहाड़ियों की चोटियो पर उन्होंने शक्तिप्रसारक यन्त्र लगाए थे, जिनसे देश का पूर्ण वायुमण्डल रहने योग्य उष्ण बना रहता था। यह शक्तिप्रसारक यन्त्र महल की छत पर लगा था जिसका चालन इन्द्र स्वय करता था।

पारद एक स्थायी पदार्थ है। इस पर भी इसमें अन्य ससार के पदार्थो की भाँति सत्, रज और तम सतुलन में नहीं और इसमें परिवर्तन हो रहा है। यह परिवर्तन इतनी धीमी गति से हो रहा है कि सहस्रो वर्षो में भी इसमें एक प्रतिशत विघटन भी दिखाई नही देता। देवताओ ने पारद को जीवित करने का उपाय प्रतीत कर लिया था। यह जीवित पारद एक विशेष गति से विघटित होने लगता था जिससे शक्ति एक धारा में उपलब्ध होने लगती थी। बहुत कम पारद से अतुल शक्ति उपलब्ध हो सकती थी। इस प्रकार एक भरी पारद पूर्ण देवलोक को एक वर्ष तक ऊष्ण, प्रकाश-मय और हरा-भरा रखने के लिए पर्याप्त हो जाता था। आधी मरी भर पारद को विघटित करने से एक इतना भयकर विस्फोट हो सकता था कि पूरी की पूरी अमरावती चूर-चूर हो सके।

यह अपार शक्ति का स्रोत इन्द्र ने अपने ही हाथ में रखा था। पारद को जीवित करने का रहस्य उसको ही विदित था और यन्त्र के विघटित होने से शक्ति धारा रूप मे बहने लगती थी। वह यन्त्र उसके महल में ही लगा था। देवलोक में पारद-विघटन के सिद्धान्त को तो प्राय सब देवता विद्वान् जानते थे परन्तु उस यन्त्रादि का रहस्य, जिनके द्वारा यह कार्य सम्पन्न होता था, इन्द्र, उसकी पत्नी शची और कुछ सीमा तक देवपितामह ब्रह्मा को ही विदित था।

इस प्रकार सहस्रो वर्ष व्यतीत हो गए थे और देवलोक के लोग प्रकृति

के प्रतिकूल होने पर भी जीवन की सब आवश्यकताओ को इस जीवित पारद की सहायता से प्राप्त करते रहते थे। यन्त्रादि इतने सुचारु रूप से कार्य करते थे कि इस यन्त्रादि को चलाने के लिए इन्द्र को किसी अन्य व्यक्ति की सहायता की आवश्यकता नही पडती थी और पूर्ण देश-भर में जीवन-सामग्री उपलब्ध कराने के लिए दो-चार सौ व्यक्तियों को ही कुछ घण्टे दिन में कार्य कराना पडता था। शेष जनता का कार्य खाना, पीना आनन्द-भोग करनामात्र रह गया था। देवताओ में कुछ लोग तो ज्ञानप्राप्ति में लगे हुए थे। ये आत्मा, परमात्मा, कर्म, मोक्ष, ध्यान, समाधि इत्यादि विषयो की खोज में लगे रहते थे, परन्तु इस ज्ञान की सीमा थी, कुछ दूर जाकर उनके आगे पर्दा आ जाता था, जिसको हटा सकना असम्भव था। शेष जनता नाच-रंग, भोग-विलास और सुख-साधना में लगी थी।

देवासुर सग्रामो में मानवो की सहायता से अपने शत्रुओ को परास्त कर देवता सुख-वासना में फँस गये और जीवन की आवश्यकताओ को अनायास पा सकने के कारण आलस्य तथा प्रमाद में पड पतन की ओर अग्रसर हो गये। मानवो के ब्रह्मावर्त आदि देशो में आने के समय देवताओ में प्रजातंत्रात्मक राज्यसत्ता थी, परन्तु जब ये लोग निर्भय हुये और इनका जीवन-भोग सुखद और सुलभ हो गया तो इन्होंने राज्यकार्य सभी इन्द्र के हाथ छोड़ उस ओर ध्यान करना छोड दिया। इन्द्र को भी कुछ अधिक नही करना पड़ता था। अपने महल में बैठे-बैठे यन्त्र का चालन ही उसका कार्य था, शेष सब स्वयमेव चलता रहता था। खाने पहनने में कमी नही थी, इस कारण प्रयास करने की किसी को आवश्यकता अनुभव नही होती थी।

स्त्री-पुरुषो की संख्या विशेष अनुपात में रखना राज्य में शान्ति रखने का प्रमुख उपाय था। इन्द्र यह विद्या जानता था। उत्पन्न बच्चों

में आवश्यकतानुसार लिंग-परिवर्तन किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त, गर्भवती स्त्रियों में स्वेच्छा से लड़कियाँ अथवा लड़के कैसे हो सकते हैं, इसका ज्ञान भी प्रयोग में लाया जाता था। देश में सुख और शान्ति के लिये लड़कियो की सख्या लड़को से ड्योढ़ी रखी जाती थी। जब भी इसमें अतर पड़ता दिखाई देता था इस अनुपात को ठीक कर लिया जाता था।

देवता अपने देश की सुरक्षा में भी यत्नशील थे। परन्तु यह कार्य भी इन्द्र के हाथ में था। उसने अपने महल में दूरदर्शक यन्त्र लगाये हुये थे जो देश की सीमाओ के समाचार लाते रहते थे और यदि कोई सेना आक्रमण करती दिखाई देती तो इन्द्र अपने निवासस्थान में बैठा-बैठा ही सेना का विध्वस कर सकता था।

भोजन, वसन और गृहों का प्रबन्ध हो जाने पर और सुख-प्रसाधन उपलब्ध होने पर देवता प्रमादी और आलसी हो गये और इसी कारण उनका पतन हो गया।

नहुष के पहले भी अनेको लोगो ने इस सुख-सुविधा से परिपूर्ण देश को विजय कर अपना राज्य स्थापित करने का यत्न किया था, परन्तु सबने मुंह की खाई थी। वे सीमा पार करते ही विध्वस कर दिये गये थे। नहुष ने यह सब कुछ सुन रखा था और उसने देवताओं की इस शक्ति का रहस्य जानना प्रथम कार्य समझा। वह अकेला अमरावती में आया और इन्द्र के महल में रहने वालो से सम्पर्क स्थापित करने लगा।

इन्द्र-भवन के निवासियों से सम्पर्क स्थापित करने में वह सफल हो गया। उसने महल में बहुत से रहने वालो से मैत्री बना ली थी। धीरे-धीरे वह भवन के सेवकों में से एक हो गया। वह शारीरिक शक्ति विशेष मात्रा में रखता था। हृष्ट-पुष्ट होने से और लम्बा कद रखने से स्त्रियों का वह विशेष प्रिय था। इन्द्र का भवन नर्तकियो से भरा रहता था।

नहुष की उनमें विशेष प्रतिष्ठा थी। महल में दिन-रात नृत्य-गान होता रहता था। मृदंग-वीणा की ध्वनि से इसके आगार गूंजते रहते थे। कथावाचक तथा नाटककार अपनी अपनी कला की धूम मचाये रखते थे। पाचकों की भी वहाँ भरमार रहती थी, जो नित नये पकवान बनाते रहते थे।

एक बार जो इस महल में प्रवेश पा गया, वह मानो नवीन जगत् में जा पहुँचा और तदनन्तर उसकी बाहर आने की इच्छा नही रहती थी। उसकी सब इच्छायें और कामनायें पूर्ण होती रहती थी। नहुष भी भारी प्रलोभनों में फँस जाता यदि उसके मस्तिष्क मे यह बात समान गयी होती कि उसने इस सब वैभव पर अपना अधिकार प्राप्त करना है। इससे वह महल के प्रलोभनो से निर्लिप्त रहने का प्रयत्न करता रहता था।

कई वर्ष के प्रयत्न करने पर जितना कुछ जानना सम्भव था वह समझ गया। वह यह जान गया था कि इन्द्र यहाँ पर सर्वेसर्वा है और यदि वह उस पर अधिकार कर ले तो पूर्ण देश उसके पाँव तले पिस जायेगा। बहुत सोच-विचार कर उसने एक योजना बना डाली।

वर्ष में एक बार वसन्तोत्सव के समय देवता मदमत्त हो उत्सव मनाने को मानसरोवर के किनारे एकत्रित हो जाते थे और चौबीस घण्टे के आनन्द-विलास के पश्चात् अपने-अपने घरों को लौटते थे। नहुष ने इस अवसर को अपनी योजना की धुरी बना डाला।

वसन्तोत्सव चैत्र मास की एक नियत तिथि को मनाया जाता था। नहुष को इसका ज्ञान हो गया। इसके छः मास पूर्व उसने अपनी योजना को कार्यान्वित कर दिया। लगभग एक सौ साथियो को उसने अपने देश से बुला लिया। वे एक-एक दो-दो कर वहाँ आ गये और कई तरह के बहाने बना वहाँ रहने लगे। एक सेना, जिसमें पचास सहस्र सैनिक थे, अपने एक मित्र करण की सहायता से उसने तैयार कर ली।

इस सेना को उसने वसन्तोत्सव से पहली रात को सीमा पार करने की आज्ञा भेज दी। स्वय वह अपने दो मित्रो के साथ अमरावती में रहने लगा।

इस उत्सव में इन्द्र और इन्द्राणी विशेष रूप से भाग लेते थे। अनुभव से तथा लोगो से पूछकर नहुष उस दिन के उनके कार्य-क्रम को भलीभाँति जान गया था। उसकी योजना यह थी कि उस दिन वह अपने एक सौ सैनिकों की सहायता से इन्द्र और इन्द्राणी को शक्ति के केन्द्रित यन्त्रालय से पृथक् रखे और उसकी सीमापार खड़ी सेना द्रुतगामी तुरगो पर सवार होकर अमरावती पर चढ़ आवे और इस पर अधिकार जमा ले।

नहुष नाचने गाने वाली अप्सराओ से बहुत पसन्द किया जाता था और वह उनके लिए छोटे-मोटे अनेको कार्य करता रहता था। इस कारण जब वसन्तोत्सव के लिये, नियत तिथि से एक दिन पूर्व, इन्द्र से लेकर उसके महल के छोटे-मोटे सेवक तक उत्सव के लिये तैयार हुए तो नहुष की बहुत माँग थी। इस पर वह अपने दो सेवको के साथ इन्द्र के मनोरञ्जन करने वालो की मण्डली में उत्सव को चल पड़ा। अमरावती के पूर्ण नगरवासी, केवल रोगियों और वृद्धो को छोड़ शेष सब, उत्सव से पूर्व मध्याह्न को ही घरो से चल पड़े थे। इन्द्र और इन्द्राणी भी अपने रथ में सवार हो अपने महल से निकले और उन्होंने उत्सव की ओर प्रस्थान कर दिया।

इन्द्र के दल के लोग सायकाल मानसरोवर के तट पर पहुँच गये और सहस्रो नर-नारी वहाँ पहले ही पहुँच चुके थे। सब खुले मैदान में रात व्यतीत करने का प्रबन्ध कर चुके थे। इन्द्र के लिये विशाल और सुन्दर निवास-शिविर बनाया गया था। रात के भोजन के पश्चात् वीणा की मधुर ध्वनि से भरे वायुमण्डल में और सुरभित माध्वी की मस्ती में अति सुख और शान्ति की निद्रा, पूर्ण उत्सव में छा गयी। नहुष

की योजना इस रात और अगले दिन पर ही निर्भर थी। इस कारण चिन्ता और उत्सुकता के कारण वह रातभर शिविर के बाहर बेचैनी से बैठा रहा। वह देख रहा था कि अमरावती से या सीमा से कोई समाचार आता है अथवा नही। कोई सूचना कही से नही आई। उत्सव के दिन की पहली रात अति आनन्द से व्यतीत हुई।

(३)

अमरावती में एक भास्कर नाम का पहलवान रहता था। वह देवलोक में सबसे अधिक शक्तिशाली व्यक्ति था। उसका जीवन-कार्य ही व्यायाम करना और खाना-पीना था। प्रातः नित्य ब्राह्म मुहूर्त में जाग, शौचादि से निवृत्त हो अपने अखाडे में चला जाया करता और सूर्योदय से व्यायाम आरम्भ कर देता। यह व्यायाम वह निरतर सूर्य के सिर पर आ जाने तक करता। इस काल में उसके शरीर पर से पसीना छूट कर भूमि को गीला कर देता था।

मध्याह्न के समय वह व्यायाम बन्द करता और उसके शिष्य उसका बदन पोछकर सुखा देते। इस समय वह स्नान करता और पश्चात् भोजन के लिये घर जा पहुँचता। उसका दोपहर का भोजन मध्याह्नोपरान्त आरम्भ होता और तीसरे पहर के अन्त तक चलता रहता। दस सेर दूध, दो सेर मलाई, एक बालटीभर उबली सब्ज़ियाँ और एक ऊँचा ढेर रोटियों का उसका इस समय का खाना था। इसको धीरे-धीरे चबाकर खाकर वह सुरापान आरम्भ करता। कटोरे पर कटोरे वह सुरकियाँ लगाकर पी जाता। इस प्रकार सायकाल हो जाता और अब उसका रात का भोजन आरम्भ हो जाता। इसमें फल और माँस ही वह खाता। प्रायः हिरण का माँस ही उसको प्रिय था। रात का भोजन समाप्त कर वह आठ घण्टे गहरी नीद सोता।

भास्कर की पत्नी का नाम मलिन्द था। भास्कर स्वय तो साढे

पाँच हाथ ऊँचा और विशालकाय था परन्तु उसकी पत्नी मलिन्द दुबली-पतली स्त्री थी। भास्कर की दो लड़कियाँ थी, आशा और कृपा। दोनो अपनी माँ के समान सुन्दर शरीर रखती थी। परिवार अति प्रसन्न था। भास्कर सदा प्रसन्न और सन्तुष्ट रहता। मलिन्द घर के काम-काज में व्यस्त रहती। आशा तथा कृपा नृत्य और सगीत सीखती थी।

भास्कर के कोई लड़का नही था और इसका अभाव माँ और बहिनों को खलता था। यही एक बात थी जो कभी दुःख का कारण बन जाती थी। ऐसे अवसरो पर मलिन्द अपने पति से खीजकर कह देती—"इतनी भोजनसामग्री को व्यर्थ व्यय करने से क्या लाभ, यदि तुम मुझको एक पुत्र भी नही दे सकते ?"

"मैंने तुमको दो लड़कियाँ दी हैं। क्या तुम इनके लिए कृतज्ञ नहीं हो ?"

"दो चुहियाँ इतने बड़े पहाड़ में से ? लज्जा नही आती कहते हुए ?"

"इस पर भी देवलोक में वे सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियाँ हैं।"

"मुझको इससे क्या ? सौभाग्य उनको जिनसे उनका विवाह होगा। किसी विपत्ति के समय आश्रय होने के स्थान ये मुसीबत बन जायेंगी। यदि तुमने मुझको अपने समान एक पुत्र दिया होता तो बुरे दिनो में वह हमारा आश्रय तो होता।"

"कितनी मूर्ख हो तुम ?" भास्कर ने अभिमान से सिर ऊँचा करते हुये कहा—"दवलोक में बुरे दिन की बात कैसे कर सकती हो तुम ? क्या विपत्ति आ सकती हे यहाँ ? इस देश की ओर कौन दृष्टि कर सकता है ? परमात्मा भी यहाँ मुसीबत भेजने से पूर्व कई बार सोचेगा। हमने प्रकृति पर, जो भगवान् ब्रह्मा की पत्नी है, विजय प्राप्त कर ली है। क्या तुम नही जानती कि आँधी, वर्षा, भूचाल और बाढ़ इत्यादि

प्राकृतिक उपद्रवो पर इन्द्र का साम्राज्य है ? वह वलशालियो में महाबली है। अपनी तर्जनी को उठाकर वह शत्रुओ को भस्म कर सकता है।"

यह सब सत्य था। मलिन्द यह सब कुछ जानती थी और इससे इन्कार नही कर सकती थी।

इस पर भी मुसीवत आई। इन अभिमानी वेकार देवताओ की जाति पर दुःख और क्लेश के बादल घिर आये। जब सब वसन्तोत्सव मना रहे थे, दूर पश्चिम की ओर से पचास सहस्र सैनिको की सेना चुप-चाप देवलोक में घुसी चली आ रही थी और अमरावती में उसी दिन पहुँचने की दौड लगाये हुये थी।

भास्कर भी उत्सव में गया था। उसका भी वहाँ कार्यक्रम था। प्रात. प्रसन्न और चपल इन्द्र उठा और शौचादि से छुट्टी पा उत्सव में शामिल हो गया। इन्द्र और शची यज्ञ में सम्मिलित हुये। सहस्त्रों ऋषि और पुरोहित वैठे सामवेद का गान कर रहे थे और एक वृहत् हवन किया जा रहा था। यज्ञ के पश्चात् प्रातः का भोजन हुआ और उसके पश्चात् शारीरिक प्रतियोगिता हुई। इसमें भास्कर की शक्ति का प्रदर्शन भी हुआ। एक सौ सुदृढ पहलवान एकदम उस पर छोड दिये गये। दो लाख जनता के सामने देखते-देखते भास्कर ने उन सौ पहलवानो को गिराकर मात कर दिया तो जनता ने 'साधु ! साधु !' कह उसकी प्रशंसा की। शची ने मुक्ताहार दे उसको सम्मानित किया। इस पर भास्कर ने अपने कधो पर पचास पुरुषो को उठाकर, अखाडे में घूमकर दिखाया।

शारीरिक प्रतियोगिता समाप्त हो जाने पर मध्याह्न का भोजन हुआ। पश्चात् दो मुहूर्तभर विश्राम कर पूर्ण उत्सव में नाच, रंग, सगीत इत्यादि का कार्यक्रम आरम्भ हो गया। सहस्रो स्थानो पर अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कार्यक्रम चल रहा था। इन्द्र और शची अनेको स्थानो पर इस कार्यक्रम को देखने गये और जहाँ-जहाँ कुछ

विशेषता देखी वही पर पुरस्कार दिया । इस प्रकार सायकाल हो गया । पश्चात् फिर भोजन हुआ और रात को इन्द्र के शिविर में उसकी अपनी नाटकमडली द्वारा नाटक खेला गया । खुले मैदान में सहस्रो नर-नारियो ने नृत्य किया और फिर पीछे नाटक हुआ, जो मध्य रात्रि तक चलता रहा ।

यह उत्सव की समाप्ति थी । दिनभर के कार्यक्रम से देवता थक चुके थे । इस कारण सब गहरी निद्रा के अभिभूत हो गए । भास्कर का एक अपना शिविर था । पहलवान देवता सगीत में विशेष रुचि नही रखता था और जब बाहिर मैदान में नृत्य हो रहा था, वह बैठा अपना रात्रि का भोजन कर रहा था । मलिन्द और उसकी लडकियाँ नृत्य में भाग ले रही थी ।

नृत्य के पश्चात् आशा अपने साथ एक युवक को ले आई और बोली—"बाबा ये मदन हैं । मैं इनसे विवाह करना चाहती हूँ ।"

"विवाह !" "भास्कर ने बिस्मय में दोनो हाथ मदन के कधो पर रख दिये । मदन भास्कर के हाथों के बोझ से घबरा उठा । उसकी कठिनाई देख आशा ने आँख के सकेत से उसको सहन करने के लिए कहा । मदन दबकर बैठने ही वाला था कि भास्कर ने उसकी सहन-शक्ति से प्रसन्न हो अपने हाथ उठा लिए । इससे मदन की जान में जान आई । भास्कर ने मुस्कराकर कहा—"तुम एक अच्छे लडके प्रतीत होते हो । जाओ इसकी मा से स्वीकृति लेकर विवाह कर लो ।"

आशा मदन को ले अपनी माँ की खोज में चल पडी और भास्कर हिरण की भुनी हुई टाँग उठा खाने लगा । भास्कर भोजन कर सो चुका था जब मलिन्द और कृपा नाटक देखकर लौटी । आशा अपने पति के साथ चली गई थी ।

इन्द्र के शिविर में यथाविधि वीणा की मधुर स्वरलहरी वायुमण्डल

को तरगित कर रही थी और इन्द्र शची के साथ शिविर में गाढ निद्रा में लीन था।

दिनभर उत्सव में लोग वसन्त ऋतु के उल्लास में मदमत्त हुए गाते-वजाते, नाचते-कूदते रहे थे। नर-नारि, वाल-वृद्ध सव उत्सव के आनन्द में पागल हुए से घूमते रहे थे। अतएव मध्य रात्रि में उत्सव समाप्त होने पर जव लोग सोये तो फिर घोर निद्रा में विलीन हो गए। प्रात: वहुत दिन निकल आने तक लोग थकावट और मद्य की मस्ती दूर करने के लिए सोते रहे। जव जागे तो सवसे प्रथम समाचार जो उनके कानों में पडा, वह एक विदेशी सेना का देवलोक में घुस आने का था।

वहुत प्रातःकाल सीमा से एक अश्वारोही समाचार लेकर आया था कि गान्धारसेना ने देवलोक पर आक्रमण कर दिया है और सेना तीव्र-गामी अश्वो पर सवार हो अमरावती की ओर चली आ रही है। इस समाचार के मिलते ही इन्द्र और शची अमरावती की ओर चल पडे। नहुष उनसे दो घडी पूर्व ही अपने घोडे पर सवार हो विदा हो गया था।

लोगो ने जव आक्रमण का समाचार सुना और साथ ही जव इन्द्र और शची के अमरावती की ओर प्रस्थान के विषय में जाना, तो जो क्षणिक चिन्ता उनके मन में आई थी वह दूर हो गई। उनको विश्वास था की इन्द्र वडी से वडी सेना का विनाश करने की शक्ति रखता है। वे नही जानते थे कि उसके अमरावती पहुँचने से पूर्व ही नगर और महल पर गान्धारो का अधिकार हो गया होगा। इससे सव लोग यह आशा कर रहे थे कि उनके अमरावती लोटने से पूर्व ही आक्रमणकारी सेना का विध्वंस हो चुका होगा।

परन्तु नहुष इस वात के लिए तैयार था। वह इन्द्र से दो घडी पूर्व ही मानसरोवर से चल पडा था। सीमा से समाचार लाने वाला आया

एक-एक को भीतर जाने दिया गया। गान्धार-सैनिक अपनी खड्ग नगी किए खड़े थे और जब लोग एक पक्ति में भीतर जा रहे थे तो वे उनमें से सब युवा स्त्रियो तथा लडकियो को पृथक् करते जाते थे। जब कोई इसका कारण पूछता तो कह देते कि देवलोक के विजयोत्सव पर उत्सव में पचास सहस्र सैनिकों के मनोरजन के लिए स्त्रियाँ चाहिएँ। स्त्रियो को पतियो से, माताओ को पुत्रो से, बहिनो को भाइयो से पृथक् करने का यह कार्य अति भयकर था और नगर के द्वारो पर हाहाकार मची हुई थी।

इस हाहाकार में एक बार झगडा भी हो गया। जब भास्कर अपने परिवार वालो के साथ द्वार पर पहुँचा, तो उसे भी रोक लिया गया। जब आशा को उसके पति मदन से पृथक् करने लगे तो मदन ने बाधा डाली और सैनिक की नंगी तलवार उसके पेट में घुस गई। वह तुरन्त वहीं ढेर हो गया। भास्कर, जो यह देख रहा था, आगे लपका और सैनिक के हाथ से तलवार छीनकर सैनिको को चुनौती देने लगा। एक सैनिक आगे बढ़ा था कि भास्कर ने तलवार का वार कर दिया। भास्कर तल-वार को विशेष रूप से चलानी नहीं जानता था, परन्तु उसकी तलवार जब सैनिक की तलवार के साथ बल के साथ टकराई तो वह सैनिक के हाथ से छूटकर दूर गिर गई। गान्धार-सैनिक इस वृहत्काय शरीर को देखकर डर गये। इस कारण एक ने कहा—"यह क्या कर रहे हो ?"

"मैं अपनी महिलाओ की रक्षा कर रहा हूँ।"

सैनिको ने उससे झगडा करना अनुचित मान कह दिया—"कौन-कौन महिलाएँ हैं तुम्हारी ?"

भास्कर ने अपनी स्त्री और लडकियो को दिखा दिया और सैनिको ने उन्हें जाने दिया। सैनिको ने समझा कि जब इतनी और मिल रही है तो इन तीन के लिए क्यो जान जोखम में डाली जाए। वे भास्कर के विशालकाय और ऊँचे शरीर को देख कुछ डर गए थे।

भास्कर नगी तलवार हाथ में लिए अपनी स्त्रियो को ले, नगर में से निकलता हुआ अपने घर जा पहुँचा। घर पहुँचकर उसने तलवार भूमि पर फेंकते हुए अपनी स्त्री और लड़कियो के राख समान श्वेत मुख को देख कहा—"अब क्या हो ?"

"देवता, सोचो। बहुत अभिमान था तुमको अपनी जाति पर और इन्द्र की बुद्धि और चतुराई पर। अब तो तुमको पता चल गया है न कि यह तुम्हारी शक्ति ही है जो मुसीबत में हमारी सहायक हुई है ?"

"तुम सत्य कहती थी"—भास्कर ने कहा—"यदि इस समय मेरे साथ मेरे जैसा एक और होता तो हम इन कुत्तों को अमरावती से भगा देते।"

"अब इस अभिमान की बात को अपने पास ही रहने दो। अब तो इस नगर से बचकर भाग निकलने की सोचनी चाहिए। मैं समझती हूँ कि इन राक्षसो के राज्य मे हम अधिक काल तक सुरक्षित नही रह सकते। यह अच्छा नही होगा क्या कि जब ये रँगरलियाँ मना रहे हो, हम यहाँ से नौ दो ग्यारह हो जायें ?"

"ऐसा ही करना अभीष्ट होगा।"

अपनी शक्ति को स्थिर रखने के लिए भोजन करना आवश्यक माना गया। उन्होंने मध्याह्न में कुछ भोजन किया था और नही जानते थे कि कितनी देर तक भाग-दौड करनी होगी।

उस दिन भास्कर को पेट भरना एक समस्या हो गई। इस पर भी ज्यो-त्यो करके कुछ प्रबन्ध किया गया। भोजन के पश्चात् इन्होने कुछ विश्राम किया और ब्राह्ममुहूर्त से भी पूर्व वे घर से निकल पडे। मकानो की आढ में हो छुपते हुए और अँधेरी गलियो में से निकलते हुए लुका-छिपी करके वे नगर के बाहिर पहुँच गए।

नगर में गत रात गान्धारो ने बड़ी उच्छृङ्खलता से व्यतीत की। पचास सहस्र सैनिको ने नगरभर में प्रस्तुत सब मद्य पी डाली। अन्न के भडार खाली कर दिए। मिठाइयों की दूकानें लूट लीं। सुन्दर नर्तकियो को नचा-नचा कर थका डाला और स्त्रियो से बलात्कार किया। नगर भर में इन सैनिकों ने इतना उपद्रव मचाया कि सहस्रो वर्षों से सुख और चैन का जीवन व्यतीत करने वाले देवता "त्राहि माम्, त्राहि माम्" कर उठे।

अमरावती अति सुन्दर नगर था। परन्तु इन अशिक्षित जंगलियो को इसे नष्ट-भ्रष्ट करने में आनन्द मिलता था। देवागनाएँ सौन्दर्य में अद्वितीय थीं, परन्तु इन पशुओ ने उनसे बलात्कार कर-कर उनके प्राण ही मानो-हर लिये। देवता लोग अति स्वादिष्ट भोजन बनाते थे, इसलिये इन पेटुओ ने उसको खा-खा कर वमन किया और फिर खाया। जगमग करता, प्रसन्नता और आनन्द की लहरियों में झूमता तथा धन-धान्य से भरपूर नगर इन मूर्खों ने एक रात में ही नष्ट-भ्रष्ट कर डाला।

(५)

नहुष की सेना के सेनापति का नाम करण था। जब नहुष इन्द्र के महल में पहुँच गया तब उसने करण को उसके प्रयास पर पुरस्कार देने के लिए राजभवन का रक्षक नियुक्त कर दिया। भवन के एक कक्ष में उसके रहने के लिए स्थान भी दे दिया।

करण कामभोज के एक गाँव के एक निर्धन परिवार का युवक था। वह जब बालकमात्र ही था तो उसके पिता का देहान्त हो गया। उसकी माँ एक शिक्षित आर्य महिला थी, जिससे एक गान्धार का विवाह हुआ था। जब करण के पिता का देहान्त हुआ तो उसने करण को पूरी-पूरी शिक्षा दिलवाई। इस शिक्षा के उपरान्त करण नहुष के पिता के पास कार्य करने लगा। नहुष अपने पिता के मरने पर देवलोक

चला गया और वहाँ देवलोक को विजय करने की योजना बना करण को सेना ले चढ आने की आज्ञा दे दी। करण जब विना किसी प्रकार की वाधा के अमरावती जा पहुँचा तो नहुष उसकी चतुराई पर मुग्ध हो गया।

नहुष ने उसको अपने समीप रखने के लिए महल के रक्षको का नायक नियक्त कर दिया। करण यद्यपि इससे सन्तुष्ट नही था तो भी वह नहुष के साथ विदेश में झगडा करना उचित नही समझता था।

महल की रक्षा के लिए सब दो सौ रक्षक थे। करण ने पचास-पचास को वारी-वारी से रक्षा करने का भार सौंप दिया और इसके पश्चात् वह अपने भवन की देख-भाल करने के लिए चला आया।

उसके निवास-स्थान में तीन आगार, पाकशाला तथा स्नानागार इत्यादि थे। सबमें उचित सामान और प्रवन्ध था। अपने रहने के प्रवन्ध से सन्तुष्ट होकर वह वाहर निकला तो महल के एक कक्ष में भीड़ देखकर, उसका कारण जानने के लिए वहाँ जा पहुँचा। वहाँ वहुत-सी स्त्रियाँ खडी रो रही थी। उसने एक सैनिक से पूछा तो उसने वताया—"ये स्त्रियाँ महल में से पकडी गई हैं। अब हम इनका वटवारा कर रहे है।"

"वटवारा क्यो ?"

"इनका रात में प्रयोग होगा।"

करण के माथे पर त्योरी चढ़ गई। इस पर एक अन्य सैनिक ने कहा—"श्रीमान् ! आज रात विजयोत्सव मनाया जायेगा। नगरभर की स्त्रियाँ गान्धारो के मनोरजन के लिए पकडी जा रही हैं। हमने भी यही किया है।"

करण यद्यपि इन सब वातो को पसन्द नही करता था परन्तु इस समय सैनिको का विरोध करने की क्षमता न रख सकने से चुप था।

वह निराश और दु:खी अपने घर की ओर लौट पड़ा। इस पर एक ने उसे पुकार कर कहा—"सर्दार! इनमें से एक आपके हिस्से में भी आई है।"

"मेरे भाग में कैसे ?" करण ने पुन: उत्तेजित हो पूछा।

"ये सब एकावन हैं। हम में से प्रत्येक चार के भाग में एक-एक मिली है। एक बच गई थी इस कारण हमने यह निर्णय किया है कि एक जो बची है वह आपको दी जावे।"

करण उसको स्वीकार करने से 'न' करने वाला था, परन्तु यह विचार कर कि यदि वह उनमें से एक को भी बचा सके तो भी ठीक है, उसने पूछा—" कौन है वह ?"

एक सुन्दर कुमारी कन्या को पकडकर उसके सम्मुख कर दिया गया। वह लडकी नीम के पत्ते की भाँति काँप रही थी। उसके ओष्ठ रक्त-विहीन हो रहे थे और मुख राख की भाँति सफेद पड़ गया था। करण को उस लडकी पर दया आ गई। करण ने सोचा कि यदि वह इसे स्वीकार नही करता तो ये पशु उसका भी बुरा हाल करके छोडेंगे। इस कारण उसने कह दिया—"अच्छी बात है। इसको मेरे गृह छोड़ आओ।"

सैनिको ने समझा कि उनका सर्दार प्रसन्न हो गया है। इससे वे उस लडकी को धकेलकर करण के गृह की ओर ले गए और उसको एक आगार में बन्द कर बाहिर से ताला लगा दिया।

करण नहुप के रहने का प्रबन्ध देखने चला गया। वहाँ सब कुछ सन्तोषजनक पा वह अपने निवास स्थान पर पहुँचा। बाहिर खड़े सैनिक ने ताली देकर करण से कहा—"सर्दार, वह उस कमरे में बन्द है।"

करण ने ताली ले सैनिक को कहा—"अच्छी बात है। तुम जाओ।" जब वह चला गया तो करण ने द्वार भीतर से बन्द कर

लिया और उस आगार का ताला खोला, जिसमें लड़की बन्द थी। जब द्वार खोला, तो उसने देखा कि लड़की आगार के एक कोने में सिकुड़ी बैठी गंभीर विचार में मग्न है। आगार खुलने पर वह घबराकर उठ बैठी और और कोने में सिकुड़कर खड़ी हो गई। करण को उस पर दया आ रही थी। वह उसको देखते हुए मन में सोच रहा था कि कैसे उसको सान्त्वना दे। कुछ विचारकर वह एक ओर रखे पलंग पर बैठ गया और लड़की से बोला—'इधर आओ।"

लड़की थरथर कांपती हुई धीरे-धीरे उसके सम्मुख आकर खड़ी हो गई। करण ने उससे पूछा—"क्या नाम है?"

लड़की ने धीरे से भर्राये स्वर में कहा—"सुमन।"

"किसकी लड़की हो?"

"महल के निरीक्षक श्री चन्द्रकान्त की।"

"वह कहाँ है?"

"मार डाला गया है। मेरी माँ बीमार थी इस कारण हम वसन्तोत्सव में नहीं गए थे। जब ये लोग आये और मुझको और मेरी माँ को पकड़कर ले जाने लगे, तो पिता ने विरोध किया। एक सैनिक ने उनकी हमारे सम्मुख ही हत्या कर दी और हम दोनों को लेकर अन्य स्त्रियों में खड़ा कर दिया।

"वहाँ सब सैनिकों के नाम लिख एक कलस में डाल दिये गए। और हम सबको कहा गया कि कलस में हाथ डाल-डाल कर चार-चार नाम निकालें। मैं सबसे पीछे थी। मेरे कलस तक पहुँचने तक सब नाम निकल आये थे। जिस-जिस स्त्री ने जो-जो नाम निकाले थे वे चार-चार उस स्त्री को ले गए। मेरी माँ को भी वे ले गए हैं। मुझको आपके पास भेज दिया है।"

करण इस वृत्तान्त से सोच में पड़ गया। वह सोच रहा था कि यह

अत्याचार क्या पच जायेगा ? यदि इसका फल मिला तो कितना भयकर होगा । इसके परिणामों पर विचार कर वह काँप ... । ... पर उसने लड़की से कहा—"तुम इस घर से जाना चा... ... सकती हो।"

"कहाँ जाऊँ, बाहिर आपके लोग घूम रहे हैं। बाहिर निकलते ही वे मुझ पर झपटेंगे और ....।"

"तो तुम यही रह जाओ। तुमने भोजन किया है या नही ?"

"इच्छा नहीं है।"

"अच्छी बात है। बाहिर भोजनालय में भोजन रखा है। उसे इच्छा हो तो खा लेना। उमी आगार में सो जाना।" इतना कह करण स्वय सोने की तैयारी करने लगा। लड़की बाहिर चली गई। एक गिलासभर जल एक ही घूँट में पी आगार के एक कोने में भूमि पर ही लेटी रही।

करण दिनभर की भाग-दौड़ से थका हुआ था। इस कारण पलग पर लेटते ही सो गया। प्रात काल उठा और शौचादि से निवृत्त हो बाहिर के कमरे में आया तो लड़की को घुटनो में सिर दिये बैठा देख उसके विषय में चिन्ता करने लगा। मन में यह निर्णय कर कि उसको यही पड़ा रहने दिया जाय क्योंकि बाहिर तो उसकी दुर्गति होगी, उस लड़की से पूछने लगा—"रात सो सकी हो या नही ?"

"पिछली रात कुछ नींद आई थी।"

"रात कुछ खाया था ?"

"नही। इच्छा नही हुई।"

"तुमको मुझसे भय लगता है ?"

"पहिले तो लगता था, अब कम होता जा रहा है।"

"डरने की कोई बात नही। जाओ, स्नानादि से छुट्टी पा लो और

कुछ खाने-पीने का प्रवन्ध करो। मैं तुम्हारी माँ का समाचार लेने जाता हूँ।"

करण घर से वाहिर आया तो उसका पता चला कि पचास स्त्रियों में से सात मर गई हैं। इनके साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया गया था। इनमें सुमन की माँ भी थी। इस समाचार से वह अत्यन्त दुःखी हुआ।

यह करण ही था जिसने नहुष को चेतावनी दी थी कि इस व्यवहार से देवलोक की पूर्ण जनता विगड जावेगी। इस ही के उत्तर में नहुष ने कहा था कि वह इस जाति को सदा के लिए अपना दास वनाने के अर्थ इसके स्त्रीवर्ग को पतित करना चाहता है और इस देश में भारी सख्या में वर्ण संकर सन्तान उत्पन्न करना चाहता है। इस उत्तर से करण के रोंगटे खडे हो गए। वह विना अधिक वातचीत के अपने काम में लग गया था।

जव करण मध्याह्न का भोजन करने आया तो सुमन ने पहिला प्रश्न अपनी माँ के विषय में किया। करण मुख देखता रह गया। उसके मुख से यह समाचार निकल नही सका। उसे चुप देख सुमन समझ गई। उसने कहा—"वह वीमार थी, भगवान जाने उससे क्या वीती होगी।"

करण ने वहुत ही कठिनाई से समझाया—"वह अव किसी की भी चिन्ता का विषय नही रही। तुम अपने विषय में स्वय विचार करो। अच्छा, तुम क्या करोगी ?"

"मैं क्या कह सकती हूँ। नही जानती कि वाहिर क्या हो रहा है। इस पर भी यदि आप जाने को कहेंगे तो जाऊँगी ही।"

"मैंने यह नहीं कहा। तुम यहाँ रहो, जव तक कि तुम कही जाने सुभीता नही पाती। यहाँ तुमसे दुर्व्यवहार नही होगा।"

सुमन के इस सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से आँसू निकल आये। वह पुन भूमि पर बैठ गई और घुटनो में सिर दे विह्वल हो रोने लगी।

करण के लिये भोजन का प्रबन्ध महल से होता था। वह आया और उसने कुछ स्वय खाया और शेष सुमन के खाने के लिए छोड दिया। पश्चात् वह अपना कार्य देखने के लिए चला गया। जाने से पूर्व वह सुमन से कहता गया—"इस घर के बाहिर मत जाना। मैं इन सैनिकों का नायक अवश्य हूँ, परन्तु इस विषय में मेरी कोई नहीं सुनेगा और मैं तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकूँगा। तुम्हारी माँ का दाहसस्कार हो गया है।"

सुमन इस परिवर्तन से अत्यन्त व्याकुल थी। रात को पिता मारा गया था और अब माँ के मारे जाने का समाचार मिला था। स्वय वह इस प्रकार की दासता की अवस्था में पड़ी थी। इस पूर्ण अन्धकार में करण एक उज्ज्वल किरण के समान था। उसने उससे अभी तक ठीक ही व्यवहार किया था। परन्तु यह कब तक चल सकता था। क्या वह अकारण उससे ऐसा ही व्यवहार करता रहेगा? कब तक करेगा? वह जानती थी कि देवलोक मे सेवको की आवश्यकता नहीं थी। सब कार्य सफाई इत्यादि, रसोई बनाना, कपडे धोना और ऐसे सब कार्य राज्य द्वारा होते थे। राज्यभर में ये कार्य यन्त्रादि द्वारा किये जाते थे। इस कारण इस देश में सेवको की आवश्यकता नही थी। सुमन विचार कर रही थी कि वह कैसे इस सेनानायक की सुरक्षा में रह सकेगी? पर्याप्त चिन्तन के पश्चात् भी वह किसी परिणाम पर नहीं पहुँच सकी।

तीन दिवस इस प्रकार व्यतीत हो गए। करण ने अपने व्यवहार से उसके मन में विश्वास और निर्भयता उत्पन्न कर दी थी। अब वह उससे बातचीत में सकोच अनुभव नही करती थी और अपने को घर का ही एक अग समझने लगी थी। करण देवलोक के प्रबन्ध से

सन्तुष्ट हो गया था। सब लोग अपने अपने कामों पर कार्य करने के लिए आ गए थे। प्रायः सैनिको की वासनातृप्ति के उपरान्त सब स्त्रियाँ उनके घर वालो को लौटा दी गई थी। और नगर जैसे भयंकर भूकम्प के पश्चात् सहमा हुआ, भयभीत, विचारहीन और भाग्य को कोसता हुआ-सा स्वाभाविक दिनचर्या में लीन हो रहा था।

सुमन का कोई नही रहा था। इस कारण वह कहाँ जाये। यही पूछने के लिए इस दिन सोने से पूर्व करण ने पूछा—"तुम्हारा कोई सम्बन्धी है, जहाँ तुम जा सकती हो ?"

"नही ! जहाँ तक मैं जानती हूँ कोई नही।"

"तुम अकेली बाहिर नही घूम सकती। यह ठीक है कि पहिले दिन की भाँति उच्छृंखलता नही रही। इस पर भी यह कहना असत्य नही कि सैनिको की स्त्रियो के प्रति भूख मिटी नही। तुमको अकेली देख कोई न कोई सैनिक अपनी पत्नी बना ही लेगा।"

"मै नही जानती कि क्या करूँ।"

"अभी तुम यहाँ रह सकती हो। यहाँ तुमको किसी प्रकार का भय नही है।"

"मै एक बात आज सोच रही थी।......आप लोग कब तक यहाँ रहेंगे ?"

"क्यो ? क्या मतलब है तुम्हारा ? हमने इस देश को जीत लिया है। अब यहाँ सदैव के लिए रहेगे।"

"पर आप रह नही सकेंगे। यह देश अत्यन्त शीतल है। यहाँ जो ऊष्मा आप अनुभव कर रहे हैं, कृत्रिम है। और इस ऊष्मा को एक यन्त्र द्वारा इस तापमान पर रखा जा रहा है। यह यन्त्र दिन-रात अपना कार्य करता जाता है, परन्तु इस प्रकार सदैव नही चल सकेगा। इसमें कार्य करने वाला एक पदार्थ है। वह है जीवित पारद। यह समाप्त हो जावेगा। तब यहाँ ठंड हो जावेगी। बाज़ारो में वर्फ़ जमने

लगेगी। खेती-बाडी समाप्त हो जावेगी । और जीवन दूभर हो जावेगा।"

"यह तुमको किसने बताया है ?"

"मैं अपने ज्ञान से जानती हूँ । जीवित पारद का रहस्य देवलोक में केवल तीन व्यक्ति जानते हैं। इन्द्र स्वय, उनकी पत्नी शची और देव-पितामह ब्रह्मा। ब्रह्मा इतने वृद्ध हो चुके हैं कि उनको कोई बात स्मरण रह गई है, यह कहा नही जा सकता। और इन्द्र तथा शची भगवान् जाने कहाँ हैं। जब यह जीवित पारद समाप्त हो जावेगा तो कोई भी व्यक्ति इसको नही बना सकेगा । और यहाँ सब काल के ग्रास बन जावेंगे ।"

करण को इस समाचार से अत्यन्त चिन्ता उत्पन्न हुई। उसने अब और अधिक परिचय प्राप्त करने के लिए देवलोक में कार्य की प्रणाली पूछी। सुमन ने बताया—

"यहाँ प्राय: सब कार्य यन्त्रादि से होते हैं। प्रात हम अपने वस्त्र घर के बाहिर एक डिब्बे में डाल देते हैं। वहाँ से वे स्वयमेव निकल कर धुलने के स्थान पर पहुँच जाते हैं। वहाँ वे धुलते हैं, सूखते हैं और फिर पहिनने को तैयार घर पहुँच जाते हैं।

"भोजन महल की केन्द्रीय पाटशाला में बनता है। वहाँ से यह घरो में पहुँच जाता है। झाडने-फूंकने के लिए वही से यन्त्र चला दिये जाते हैं और घर की सफाई हो जाती है। यह सब कार्य जीवित पारद के आश्रय होता है।"

करण विस्मय में सुमन का मुख देख रहा था। तीन दिन के अभय-दान से उसके मुख पर पुन यौवन के लक्षण प्रतीत होने लगे थे और उसका स्वाभाविक सौन्दर्य और शील प्रगट होने लगा था। करण ने उसकी ओर विस्मय में देख पूछा—"तो पारद के समाप्त हो जाने पर ये कार्य समाप्त हो जावेंगे ?"

"हाँ। यूं तो मनुष्य अति शीत देशो में भी रह सकता है। परन्तु उनका इतनी संख्या में यहां रहना असम्भव हो जावेगा। साथ ही जीवन सुलभ, सुखद और सुव्यवस्थित नही रहेगा।"

करण अगले दिन यह चिन्ताजनक समाचार लेकर नहुष के पास पहुचा। नहुष को यह समाचार बताने का अभिप्राय स्पष्ट था। वह चाहता था कि पारद समाप्त होने से पूर्व ही इसके निर्माण का और उन यंत्रो का, जिनमें यह कार्य करता है, ज्ञान हो जाना चाहिए। यह कैसे हो सकेगा ? वह नही जानता था कि इसके विना यह देश विनाश को प्राप्त हो जावेगा।

करण ने सुमन की सत्यता को जानने के लिए इन्द्रभवन की छत पर जाकर शक्तिप्रसारक यन्त्रो को देखा। यद्यपि वह उनके विषय में कुछ भी नही समझ सका, इस पर भी वह यह देख चकित रह गया कि यंत्र विना किसी व्यक्ति की देखभाल के वैसे ही चल रहा है जैसे सूर्यादि नक्षत्र स्वयं चलते हैं।

उसने नहुष से भेंट कर सुमन द्वारा वताई गई पूर्ण वात वर्णन कर दी। नहुष इन सव दिनो मनोरजन में लगा था। सुरा, सुन्दरी के प्रभाव में ही उसके दिन और रातें कट रही थीं। आज पहिली वार राज्य के गम्भीर विषयो पर वात करने के लिए पहिला व्यक्ति करण उसके पास आया। इससे करण की वातें उसे रुचिकर प्रतीत नही हुईं। नहुष को करण की वातो की गम्भीरता का ज्ञान नही था। इससे कह दिया—"मुझको तुम्हारे कथन का विश्वास नही होगा।"

इस पर करण ने सुमन का परिचय दिया और कहा—"वह पढ़ी-लिखी और इन्द्रभवन के निरीक्षक की लडकी है। उसके कहने की सत्यता की परीक्षा कर चुका हूँ। भवन की छत पर वे यन्त्र लगे हैं, जो नगर का ही नही, प्रत्युत देशभर के जीवन का सचालन करते है। वे अपना कार्य कर रहे है, परन्तु इतना तो मैं भी समझ सका हूं कि

कोई भी यन्त्र सदा के लिए अपने आप चल नही सकता।"

"तो फिर क्या किया जावे ?"

"ब्रह्मा, इन्द्र अथवा शची से मैत्री कर इस शक्ति का रहस्य जानना चाहिए।"

"कब तक ये उनकी सहायता के बिना चल सकते है ?"

"सुमन का अनुमान है कि एक वर्ष तक कार्य चलेगा।"

"एक वर्ष तो बहुत लम्बा काल है। इस विषय पर कभी विचार कर लेंगे।"

"जीवित पारद तो एक वर्ष तक चलेगा, परन्तु यदि उससे पूर्व ही कोई खराबी यन्त्रादि में उत्पन्न हो गई, तो क्या होगा ?"

"ऐसा क्यो होगा ? पर मैं समझता हूँ कि उस लडकी ने तुमको डरा दिया है। मेरी राय मानो तो उसको अपनी पत्नी बना डालो। तुम्हारी रुचि की तो वह होगी ही। इतने दिन तुम्हारे घर रही भी है।"

"पत्नी ! उसकी इच्छा के विरुद्ध कैसे बना सकूंगा ?"

"जैसे उसको घर में रख छोडा है।"

"वह अपनी इच्छा से वहाँ रह रही है।"

"वैसे ही अपनी इच्छा से वह तुम्हारी पत्नी बनेगी। जब वह तुम्हारी पत्नी बन जावेगी, तब वह बतावेगी कि कौन व्यक्ति क्या कर सकता है ? फिर हम उससे बातचीत कर उससे वह काम करा सकेंगे।"

"यह तो उसने अब भी बता रखा है।"

"इस समय की बात पर विश्वास नही किया जा सकता। विवाह हो जाने पर लडकी अपने पति को अपना एक अग समझने लगती है। इससे उसके हित को अपना हित मानने लगती है। जाओ मैं तुमको आज्ञा देता हूँ कि उससे विवाह कर लो।"

करण यह नही समझ सका कि विवाह का इससे क्या सम्बन्ध है ?

साथ ही वह स्वयं उससे विवाह की बात करे। उसको अपमानजनक प्रतीत हुआ। वह बिना किसी प्रकार का उत्तर दिये चला आया। जब वह अपने घर की ओर जा रहा था तो भवन के तीन सरक्षक उससे कुछ कहने के लिए मार्ग रोककर खड़े हो गये। करण ने उनके नमस्कार को स्वीकार कर पूछा—"क्या बात है ?"

"एक प्रार्थना है।"

"कहो।"

"वह लडकी जो आपके पास पिछले पाँच दिन से है, अब हमको मिल जानी चाहिये।"

"क्यो ?"

"आपके पास वह पर्याप्त काल तक रह चुकी है। अब हमको दे दीजिये।"

"नही, क्या और स्त्रियें समाप्त हो गई है ?"

"हम उसको चाहते है।"

"वह नही मिलेगी।"

"क्यो ? हम स्त्रियें को परस्पर बदल रहे हैं।"

करण ने अनायास बिना विचार किये कह दिया—"वह मेरी पत्नी है।"

"पत्नी !" इस पर उन्होने मार्ग छोड दिया और करण को चले जाने दिया। करण को इससे बहुत चिन्ता लग गई कि वह उससे विवाह करने का प्रस्ताव करे। क्यो और कैसे करे ? इस अनिश्चितमन में वह अपने घर पहुँचा तो सुमन को चिन्तित सामने खड़े देख पूछने लगा—"क्यो क्या आ है ?"

सुमन सिर से पाँव तक काँप रही थी और उसका पसीना छूट रहा था। उसने आँखें नीचे किये हुये कहा—"आपके कुछ सैनिक अभी आये थे और मुझको अपने साथ चलने को कह रहे थे। मैंने उनसे कहा कि

आप उनको इसके लिये दण्ड देंगे। मैं आपकी·········।" वह कहती-कहती रुक गयी।

करण समझ गया कि उसने क्या कहा होगा। उसने कह दिया—"तुमने कहा होगा कि तुम मेरी विवाहिता हो ?"

"और क्या कहती ? अपने को बचाने का और कोई उपाय ही नही था। मेरी बात सुनकर न्होंने मेरा हाथ छोड दिया और कहा कि वे आपसे पूछेंगे। यदि यह झूठ हुआ तो मुझको बलपूर्वक उठा कर ले जावेंगे। मुझको भय है कि जब आप उनको सत्य बतायेंगे तो मेरा पता नही क्या हाल होगा।"

करण मुस्कराया और कहने लगा—"यदि मैं तुम्हारी बात को सत्य ही कह दूं तो फिर क्या होगा ?"

"आप मेरे लिये झूठ कह देंगे ? और फिर क्या हो······।" वह अभी भी दीवार का आश्रय लिये खडी थी। करण ने कहा—"मुझसे उनकी बात हो गई है। मैने कह दिया है कि तुम मेरी पत्नी हो।"

"आपने कह दिया है ? बहुत धन्यवाद। आप बहुत अच्छे हैं। परन्तु अब क्या होगा ?"

"मैं तुमको तुम्हारी इच्छा के बिना पत्नी नही बनाऊँगा। तुम चाहो तो सदैव का भय छूट सकता है। हमारी प्रथानुसार विवाहिता पत्नी की रक्षा का अधिकार पति को हो जाता है। तुम मेरी विवाहिता होगी, तो मैं तलवार लेकर उनसे, जो तुम्हारा इस प्रकार अपमान करेंगे, लड जाऊँगा और तब मैं अपराधी नही बनूंगा।"

"पर आपकी भी तो कुछ इच्छा है ? मैं·· ·।"

बात हो गयी और सुमन का विवाह करण से तय हो गया। जो बात नहुष की आज्ञा से भी नही हो रही थी वह परिस्थितियों के वश स्वय हो गयी। एक दिन करण ने सुमन से कहा—"मैंने जब पहली बार तुमको देखा था, तब ही तुमसे विवाह कर लेने का निश्चय

कर लिया था, परन्तु विना तुम्हारी इच्छा के यह नहीं कर सकता था और जिस परिस्थिति में तुम मेरे घर आयी थी उसमें तुमसे इस प्रकार का प्रस्ताव करना मानवता की हत्या करनी थी।"

"आप वहुत अच्छे है। आपसे विवाह कर तो मैं अपना अहोभाग्य मानती हूँ। परन्तु यह कैसे हुआ कि गान्धारो में आप इतने श्रेष्ठ हो गये? आपके दूसरे साथी तो सर्वथा पशु हैं।"

करण ने कहा—"आज से पचास वर्ष पूर्व गान्धार और कामभोज में भी आर्य लोग रहते थे। उनका ही वहाँ राज्य था। तुखार से कामभोज पर और पश्चात् गान्धार देश पर म्लेच्छो का आक्रमण हुआ और वहाँ उनका राज्य हो गया। तुखार देश के लोग वास्तव में असभ्य है। इनके यहाँ स्त्रियो के सतीत्व की महिमा नहीं। विवाह भी करते हैं, परन्तु विवाह से पूर्व ही प्रायः कन्यायें औरतें हो जाती हैं। कभी तो माँ वन जाती हैं। इसको यह लोग कोई निन्दनीय कार्य नही मानते। इन लोगों का राज्य होने से हमारे लोग भी वैसा ही करने तथा मानने लग गए हैं। मेरे पिता एक गान्धार थे जो इनकी वातो को अच्छा नहीं समझते थे। इस कारण उन्होंने अपने देश में विवाह नही किया। उनको अपने देश में कोई अछूती कुंवारी कन्या नही मिली। वे ब्रह्मावर्त से एक आर्यकन्या व्याह कर ले आये। वह मेरी माँ हैं। पिता जी का देहान्त हो चुका है। परन्तु माँ जीवित है। सती-साध्वी हैं। मेरे विचार उनकी ही देन हैं। मैं भी जव वड़ा हुआ तो मेरी माँ ने मुझको भी यह शिक्षा दी थी कि किसी वाहर देश की कन्या से विवाह करूं। गान्धार में कोई कन्या कुंवारी मिल सकेगी उसका सदेह था। सौभाग्य से तुम मिल गई और मैं प्रसन्न हूँ कि तुम मेरी पत्नी वन सकी हो।"

(६)

करण नहुष का मित्र और फिर सेवक वन गया था। परन्तु आरम्भ से ही वह उसके कामो तथा विचारो को पसन्द नही करता था। अमरा-

वती में आकर तो उसको पता लगने लगा था कि नहुष की नीति कितनी मूर्खतापूर्ण है। पचास सहस्र सैनिक अपनी तलवार के बल पर राज्य जमाये हुये थे। इस राज्य-स्थापना में देवताओ की भीरुता और मूर्खता भारी कारण थे। इस पर भी वह नहुष के व्यवहार को क्षम्य नही मानता था। वह नित्य हो रहे अन्याय और अत्याचार को देख रहा था और समय-समय पर नहुष को सचेत करता रहता था, परन्तु वह देख रहा था कि वह अपनी जाति के सस्कारो और परम्पराओं में बहा जाता है। कभी वह अपनी भूल समझ भी जाता था, परन्तु स्वभाव से वह भूल फिर कर बैठता था।

इस सबका एक परिणाम यह हो रहा था कि नहुष नें करण को अपना आन्तरिक सम्मतिदाता मानना छोड दिया था। और अपनें राज्य-कार्य में उससे सम्मति लिये विना ही काम करता रहता था। परन्तु जब देवयानी के स्वयवर से अपने प्रयास में असफल होकर आया, तो वह विचार करने लगा कि उसके मत्रीगण प्रबन्ध करने में अयोग्य हैं। इस समय उसको पुनः करण की याद आयी।

अपने को बन्दी वना देवनाम के सामने खड़ा किया जाना और फिर अपने पर विजय प्राप्त करने वाले विक्रम के कहने पर दया कर छोड दिया जाना, उसके लिये भारी लज्जा और निन्दा की वात थी। काश्मीर में देवनाम की आज्ञा से सैनिक उसको एक रथ में हाथ-पाँव बाँधकर सीमा तक ले आये थे और इसी अवस्था में उसको सीमा के पार धकेल दिया गया था। वह क्रोध और ईर्ष्या से पागल हो घर लौटा था। उसने उन मन्त्रणा देने वालो को, जिन्होने देवयानी के अपहरण की योजना वनायी थी, वुला भेजा और उनकी त्रुटिपूर्ण सम्मति देने के लिये भर्त्सना की। उनको अयोग्य-मूर्ख-गँवार कहकर डाँटा और पश्चात् करण को बुलाकर अपनी अवस्था वर्णन की।

करण ने जब नहुष के काश्मीर की राजकुमारी के अपहरण की बात सुनी तो बहुत दुःख अनुभव किया। उसने कहा—"महाराज ! इस समय आपके सम्मुख सबसे प्रथम कार्य राज्य को सुदृढ करना है। मान लीजिये, आप राजकुमारी देवयानी को उठाकर ले भी आते तो क्या होता ? मै यह देख रहा हूँ कि आपका राज्य यहाँ दो-तीन वर्ष से अधिक नही रह सकता। शक्तिप्रसारक यन्त्र दुर्बल पड गया है, जिससे दूर-दूर के शक्तिप्रसार के यन्त्र वेकार हो गये हैं और वहाँ पर वर्ष में छः मास वर्फ पडी रहने लगी है। वहाँ के लोग अपना-अपना घर और भूमि छोड अमरावती में आ रहे है और कुछ देवलोक ही छोड रहे हैं।

"यहाँ अमरावती में लोगों की भीड बढ रही है और खाने को कम हो रहा है। यहाँ भी तापमान गिर रहा है और ऐसा अनुमान है कि देवलोक दो वर्ष में शीत-प्रधान हो जावेगा। तब यहाँ न खाने को मिलेगा न पहिनने को। लोग जाडे में ठिठुर-ठिठुर कर मर जायेंगे और आपका राज्य भी समाप्त हो जावेगा। तब राजकुमारी से विवाह हुआ है अथवा भिखारिन् से, इसमें कोई अन्तर नही रह जावेगा।"

नहुष इस समस्या से घबडा उठा और पूछने लगा—"मुझको क्या करना चाहिये ? मैंने तो यह समझा था कि काश्मीर की राजकुमारी से विवाह हो गया तो फिर वहाँ का राज्य भी मिलेगा। तब देवलोक रहे अथवा न रहे मैं अपनी राजधानी चक्रधरपुर बना लेता।"

करण मुस्कुराया और बोला—"राजकुमारी से धोखा कर अथवा उसका अपहरण कर विवाह करते तो काश्मीर का राज्य प्राप्त नही होता। सभव है कि राजकुमारी भी आत्महत्या कर लेती। तब न भगवान् ही मिलता न ससार। मेरी सम्मति तो सीधी है कि इन सब व्यर्थ की बातो को छोड़कर यहाँ राज्य सुदृढ करने का यत्न करना चाहिए। इसके दो उपाय है। एक तो प्रजा को सन्तुष्ट करिए। उनको ऐसा अनुभव हो कि आप उनके अपने है। और दूसरा किसी

योग्य व्यक्ति से मिल भवन की छत पर लगे यन्त्रादि को ठीक करवाइए। मैंने बहुतो से मालूम किया है और यही पता चला है कि इन्द्र और शची के अतिरिक्त ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो उनको ठीक कर सके। ब्रह्मा भी इस विषय में जानता तो है परन्तु वृद्ध होने के कारण वह स्वय कुछ नही कर सकता। उसको भी किसी अन्य की सहायता की आवश्यकता होगी।"

इस सब वार्त्तालाप का प्रभाव यह हुआ कि नहुष ने करण को अपना प्रधान-मन्त्री मान लिया और उसकी सम्मति से राजकार्य चलाने लगा। करण ने नहुष से कहकर यह घोषणा राज्यभर में करवा दी कि आज से देवता और गान्धार में कोई अन्तर नही माना जायेगा। उनको भी राज्य-कार्य में भाग मिलेगा।

इस घोषणा का प्रभाव देवताओ पर कुछ विशेष नही हुआ। कारण यह था कि कार्यरूप में घटनायें इसके विपरीत हो रही थी। पचास सहस्र गान्धार-सैनिक कुछ कार्य नहीं करते थे और खाते-पीते देवताओं से अधिक थे। वे गान्धार से अपनी पत्नियाँ लेकर नहीं आये थे। इस कारण देवताओं की युवा स्त्रियाँ उनकी वासना की भेंट होती रहती थी। भोजन-सामग्री उनसे बचकर ही देवताओं को मिल पाती थी। करण समझता था कि गान्धार-सैनिकों को शिक्षा देने की आवश्यकता है। राजा क्या कर सकता है, यदि उसके सैनिक ही उच्छृङ्खल हो? सैनिको के कार्य उनके सस्कारो पर निर्भर हैं और सस्कार एकाएक बदल नही सकते। इस कारण एक घोषणा से वह कुछ चमत्कारी प्रभाव की आशा नहीं करता था। इस पर भी वह निरन्तर यह घोषणा करवा रहा था। वह समझता था कि समय पाकर इसका प्रभाव अवश्य होगा।

इसका एक प्रभाव यह हुआ कि एक दिन भास्कर नहुष के न्यायालय में आ उपस्थित हुआ। नहुष उसकी लम्बी-चौडी देह को देख विस्मय

में पड़ गया। भास्कर ने झुककर नमस्कार की और खड़ा हो गया। नहुष ने पूछा—"कौन हो तुम ?"

"श्रीमान् ! देवताओ का पहलवान हूं। देवताओ के राज्यकाल में राज्य की ओर से मुझको खाने-पीने को मिलता था और मैं व्यायाम और कुश्ती करता था। जब कोई पराक्रम का कार्य करना होता था, मुझको बुला लिया जाता था। आपकी घोषणा सुनी है कि अब दोनो जातियो में भेद नही किया जावेगा। सो पहिले की भांति राज्य की सेवा के लिए आया हूँ।"

"तुम क्या कर सकते हो ?"

"मैं पहलवान हूं। कुश्ती करता हूं। बीस, तीस, पचास तक लोगों से एक-साथ लड सकता हूँ।"

"और यदि इस लड़ाई में तुम मारे गए तो ?"

"यह नही हो सकता महाराज ! यद्यपि आजकल खाने-पीने को विशेष कुछ प्राप्त नही होता, तो भी पचास तक को अनायास पछाड़ सकता हूं।"

"तुम लाठी इत्यादि से लड़ोगे अथवा खाली हाथो से ?"

"मैं बिना शस्त्र के लडूंगा।"

'तो पहिले अपना कर्तव दिखाओ। पीछे हम विचार करेंगे कि तुमको राज्य-सेवा में स्थान मिले अथवा नही।"

"तो श्रीमान् ! आप अपने आदमियो को मेरे साथ लडने के लिए बुलाइये।"

नहुष ने पचास योधाओ को बुलाया और भास्कर से लडकर उसकी बोटी-बोटी कर देने की आज्ञा दे दी। भास्कर इससे भयभीत नही हुआ। वह लगोटा कस मैदान में आ गया। पचास गान्धार-योधा उस पर चीलो की भांति पिल पड़े। भास्कर कितने ही दिनो से पेटभर खाना नही खा सका था, इस कारण कुछ दौर्बल्य उसके अन्दर आ

गया था। इस पर भी वह समझता था कि उन पचासो का वह पछाड सकेगा।

प्रारम्भ में तो पचास गान्धारो ने उसे गिरा लिया और उस पर चढकर उसको मुक्को से पीटने लगे और नाखूनों और दांतो से उसे नोचने लगे। पर एकाएक भास्कर उठा और उसके साथ आठ-दस योधा, जो उसके ऊपर चढ़े हुए थे, ऊपर उठ गए। उसने दो को टाँग से पकड ऐसा घुमाया जैसे कोई चूहो को पूंछ पकडकर घुमा रहा हो। दो-तीन चक्कर देकर वह उनको आकाश की ओर फेंकने लगा। वे पन्द्रह-बीस गज ऊपर जाकर ठप से नीचे गिरने लगे। इस तरह उसने कइयो के साथ किया। सबकी हड्डी-पसली टूटने लगी। इस प्रकार पन्द्रह-बीस को घायल और निष्क्रिय कर चुका तो गान्धार-योधा घबडा उठे और उसके समीप आने से डरने लगे। जो बच गए थे वे दूर-दूर रहने लगे। पहले तो नहुष भास्कर पर हुए आक्रमण को देख 'वाह! वाह!' करता रहा, परन्तु जब उसने अपने योधाओ को भय से दूर खडे देखा, तो क्रोध से उतावला हो उठा। उसने समझा कि यह मनुष्य कोई दानव है। उसके मन में आया कि ऐसे मनुष्य को मरवा डालना अधिक अच्छा है। इससे उसने कहा —"पहलवान! तुम बहुत बली हो, मैं तुम्हारे बल की प्रशसा करता हूँ, परन्तु तुमने मेरे बीस-बाईस योधाओं को घायल कर दिया है। तुमको इस बात का दड मिलना चाहिए।"

"पर श्रीमान्! यदि मैं मर जाता, तो क्या होता?"

"मैंने उनको तुम्हारी बोटी-बोटी काट देने के लिए कहा था।"

"श्रीमान्! मुझको भी तो लडने की आज्ञा दी थी। मैंने वही किया है जो आप चाहते थे। इस कारण मैंने कोई अपराध नही किया। और मैं दड का भागी नहीं।"

"परन्तु मैं यहाँ का राजा हूँ। यदि मेरे मन में आ जाय कि मैं किसी को मरवा डालूं, तो मैं ऐसा कर सकता हूँ।"

भास्कर इस युक्ति से कांप उठा और अपनी स्त्री मलिन्द को कोसने लगा। वह उसे कई दिनों से कह रही थी कि अब देवता और गान्धार एक समान हो गए हैं और उसे महाराज के यहाँ सेवा कर लेनी चाहिए। भास्कर समझता था कि उसको सब प्रकार की बातें समझाकर भेजा गया था, परन्तु उसकी स्त्री को यह पता नही था कि समता की घोषणा वास्तविक नही थी।

इस समय जब भास्कर से नहुष का सवाद हो रहा था, करण वहाँ आ पहुँचा। नहुष ने उसको बुलाकर सब वृत्तान्त बताया और कहा—"इतना बली व्यक्ति देवताओ में नही होना चाहिए। इस कारण में इसको प्राणदड देना चाहता हूँ।"

करण को नहुष की मूर्खता पर अत्यन्त निराशा हुई। उसने कहा—"महाराज, यह आदमी जब आपकी सेवा करेगा तो आपके लाभ में ही कार्य करेगा।"

"पर यह देवता है।"

"ठीक है! परन्तु आपने घोषणा करवा दी है कि आप दोनो जातियो के साथ समान व्यवहार करेंगे।"

नहुष का मन मानता नही था, परन्तु करण के समझाने पर उसने भास्कर को पेटभर खाने और वस्त्रादि के लिए दो रजत प्रतिदिन पर अपना सेवक बना लिया।

भास्कर ने महाराज नहुष की जयजय कार की और घर चला आया। भास्कर देवलोक की विजय पर अपनी स्त्री और लड़कियों को ले देहात चला गया था और वहाँ छुपकर अपना जीवन व्यतीत कर रहा था। कालान्तर में जब देहातो में शीत बढने लगी और भोजनसामग्री कम होने लगी, तो उसकी स्त्री ने उसे देश छोड़ अन्य देश में चलने के लिए कहा। भास्कर आलस्यवश जाने का नाम नही लेता था। एक

दिन मलिन्द घर आई और नहुष की घोषणा का उल्लेख कर बोली—"जाओ, उसके यहाँ सेवा-कार्य कर लो।" भास्कर इसे भी मानता नहीं था, परन्तु मलिन्द से युक्ति में वह कभी भी जीत नही सका था। इस प्रकार विवश होकर वह अमरावती आया। मलिन्द उसके साथ थी और आशा तथा कृपा पीछे देहात में रही।

जब भास्कर नौकरी पाकर घर पहुँचा तो मलिन्द से बोला—"तुम मुझसे तग आ गई मालूम पडती हो। आज तो मुझे मौत के मुख में भेज दिया था। नहुष ऐसा पाजी है कि जब मैंने उसके पचास योधाओं को पछाड दिया तो कहने लगा कि मैंने उसके योधाओ को बेकार कर दिया है, इस कारण मुझको फाँसी देगा। तुम तो राँड हो चली थी। पर भगवान् का धन्यवाद है कि उसका मन्त्री करण वहाँ आ पहुँचा, और मेरी जान छूटी।"

मलिन्द ने पूछा—"और नौकरी ?"

"हाँ! वह भी मिल गई है।"

मलिन्द ने कहा—"जब तक मेरे भाग्य में सौभाग्य बना है, तब तक आपको मुझसे कौन छीन सकता है ?"

"भाग्य-वाग्य सब निकल जाता यदि कुछ देर करण वहाँ न पहुँचता।"

परन्तु असली परीक्षा तो भास्कर की उस दिन हुई जब नहुष ने एकान्त मे उसे अपने प्रासाद में बुलाकर कहा—"पहलवान!"

"जी महाराज!"

"जो हम कहेगे करोगे ?"

"इसीलिए तो श्रीमान् की सेवा स्वीकार की है।"

"यदि कहना नही माना तो!"

"तो दड का भागी बनूंगा।"

"ठीक है। तुमको कमलसर-दुर्ग जाना होगा। वहाँ तुम्हारा सम्राट् इन्द्र रहता है। तुम्हें उसके पास जाकर उसका गला घोटकर उसको जान से मारना है।"

भास्कर अवाक्मुख खड़ा रह गया। वह जानता था कि उससे यह नहीं हो सकेगा। परन्तु उसे न करने पर अभी मौत के मुख में धकेल दिये जाने का भय था। इसलिए न तो 'न' कर सका और न ही 'हाँ'। उसे चुप देख नहुष ने कहा—"इतने दिन खाना खा-खाकर व्यर्थ में बर्बाद किया है न ? इसीलिए कहते थे कि सेवक हूँ ?"

भास्कर को चेतना हुई। वह अपनी जान भय में देख कांप उठा। इससे उसने कहा—"श्रीमान् ने गलत समझा है। मैं यह नहीं सोच रहा कि आपका कार्य करूँ अथवा नहीं। आपकी सेवा की है तो आज्ञा का भी पालन करूँगा। मैं तो यह विचार कर रहा था कि इतना छोटा-सा काम और उसके लिए मुझको भेजना, मच्छर मारने के लिए अग्नेय अस्त्र चलाना है।"

"तुमको ही जाना होगा। तुमको बंदी बना कर वहाँ रखा जायेगा। अवसर पाकर एक दिन उसका गला घोट देना।"

"मैं तैयार हूँ। कब जाना होगा ?"

"तुमको कल यहाँ से रवाना होना पड़ेगा। यहाँ से एक पत्र दिया जायेगा जो तुम वहाँ दुर्ग के जमादार को दे देना। आगे वह स्वयं देख लेगा।"

भास्कर जाने के लिए तैयार हो गया। वह एक बात मन में विचार कर रहा था कि जब इन्द्र बन्दी है तो बन्दी को मारने के लिए बाहर से किसी को भेजना तो बुद्धिमत्ता नहीं। दुर्ग का जमादार बहुत सुगमता से उसका काम तमाम कर सकता है। उसके लिए एक पहलवान को पाँच सौ कोस का रास्ता तय कर भेजना, सर्वथा अयुक्तिसंगत है। वह

इसमें कोई विशेष रहस्य समझता था। इस कारण वह चुप-चाप जाने को तैयार हो गया। उसका विचार था कि अमरावती से बाहिर जाकर विचार करना है कि क्या करना चाहिए।

इस प्रकार वह आज्ञा पा अपनी स्त्री से इस नई समस्या पर विचार करने के लिए घर पहुँचा तो वहाँ अपनी स्त्री के स्थान पर देवर्षि नारद को बैठा देख चकित रह गया। देवलोक के पतन के पश्चात् उसने नारद को नहीं देखा था। आज देख विस्मय करने लगा। उसने उत्सुकता से पूछा—"देव-ऋषि, आज यहाँ कैसे आना हुआ है ?"

"भाई भास्कर ! तुमसे ही मिलने आया हूँ।"

"सेवा बताइये महाराज !" भास्कर ने दत्तचित्त हो पूछा।

"यह बताओ कि इन्द्र कहाँ बंदी है ?"

"आपको कैसे पता चला कि मुझको वह स्थान विदित है ?"

"यह बात भी भला छुपी रह सकती है। तुम जा रहे हो न उसे जान से मारने के लिए ?"

"यह आपको किसने कहा है ?"

"जिसने तुमको कहा है। मैंने यह नहुष के मुख से सुना है। अब तुम यह बताओ कि कहाँ जा रहे हो ?"

भास्कर ने स्थान बताया तो नारद ने कहा—"देखो भास्कर ! अब तुम्हारा इस नगर में ठहरना उचित नहीं। तुम यहाँ से सीमा पार कर काश्मीर चले जाओ। वहाँ तुम्हारे निवास-स्थान आदि का प्रबन्ध हो जायगा।"

"मैं भी यही सोच रहा हूँ। आया था चौबे बनने, रहा दूबे भी नहीं। मैंने समझा था कि खाने-पीने को खूब मिलेगा, परन्तु यहाँ तो यह पापकर्म करने को मिला। मुझसे यह नहीं हो सकेगा, परन्तु भागूं कैसे ?"

"इसका प्रबन्ध मैंने कर दिया है। तुम्हारी स्त्री और लड़कियाँ पहले ही यहाँ से विदा हो चुकी हैं। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। चलो।"

भास्कर इसका अर्थ नही समझा। उसने कहा—"देवर्षि महाराज ! यह क्या रहस्य है ? मेरी बीवी और लड़कियो पर श्रीमान् की कृपादृष्टि क्यो है ?"

नारद हँस पड़ा। उसने कहा—"वे तुमसे अधिक बुद्धिमान हैं। इस कारण कृपादृष्टि है। कल तुमको यहाँ से सीमा की ओर चल देना चाहिए। कल राज्य की ओर से दुर्ग के अध्यक्ष के नाम पत्र मिलेगा। मिलते ही यहाँ से चले जाना और फिर लौटकर नही आना।"

भास्कर अब भी नही समझा था। इस पर नारद ने उसको कहा—"अब मान जाओ देवता ! शेष अपनी पत्नी मलिन्ददेवी से पूछ लेना।"

(७)

आज एका-एक केन्द्रीय शक्ति-प्रसारक यन्त्र बन्द हो गया। नगर में ठंडक हो गई और अन्धेरा छा गया। लोगो ने सरसो के तेल से दीपक जला लिये और जहाँ कही से भी लकड़ी मिली जलाकर उष्णता पैदा करने का यत्न करने लगे। करण ने अपनी पत्नी सुमन से इसका कारण पूछा। और जैसा वह अनुमान करता था, जीवित पारद समाप्त हो जाना ही इसका कारण प्रतीत हुआ।

सुमन का यह विचार था कि जीवित पारद कुछ मात्रा में यन्त्र के बाहिर कही रखा होगा। यदि मिल जाये तो प्रयोग में लाया जा सकता है। उसने बताया कि इतना मात्र तो वह कर सकेगी। उसने पारद यन्त्र में डालते हुए इन्द्राणी को देखा है।

यह समाचार नहुष को मिला तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। सुमन को यन्त्रालय में जाकर पारद ढूंढने की स्वीकृति मिल गई और करण तथा

सुमन की उपयोगिता और भी बढ़ गई। जब सुमन ने पारद की एक मात्रा ढूंढ निकाली और उसको शक्तिप्रसारक यन्त्र में डाल उसको चालू कर दिया, तब नहुष को विश्वास हो गया कि जो भय सुमन ने बताया है, वह सत्य है। सुमन का कहना था कि पारद जो अभी मिला है वह अधिक से अधिक एक वर्ष तक चल सकेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि एक वर्ष के भीतर इस पारद को उपलब्ध करने का यत्न करना चाहिये।

नहुष ने करण से पूछा—"जब तुम और तुम्हारी स्त्री इतना कुछ जानते हो तो इस पारद को कहीं से प्राप्त करने का ढंग जानने का यत्न क्यों नहीं करते ?"

"सब लोग कहते हैं कि इन्द्र, इन्द्राणी और ब्रह्मा ही इस रहस्य को जानते हैं। यदि आप इनके साथ मैत्री कर सकें तो यह सम्भव हो सकता है।"

"इन्द्र के साथ मैत्री तो असम्भव है। वह मेरे साथ मिलकर राज्य का भोग पसन्द नहीं करेगा। इसी कारण मैंने उसको समाप्त करने का उपाय कर लिया है।"

"समाप्त ! क्या अभिप्राय है आपका ?"

"मैंने उस पहलवान को, जिसने पचास योद्धाओं को एकदम पछाड़ा था, कमलसर-दुर्ग में भेजा है। वह वहाँ बन्दी बनाकर रखा जायेगा। समय पाकर वह इन्द्र का काम तमाम कर देगा। पश्चात् उसको इन्द्र की हत्या का अपराधी सिद्ध कर प्राणदण्ड दे दिया जायेगा।"

करण ने मुस्कुराकर कहा—"यह योजना किसकी बनाई है ?"

"क्यों ?"

"यह सफल नहीं हो सकेगी। वह पहलवान देवलोक से भाग जायेगा और किसी अन्य देश में चला जायेगा।"

"उसके साथ मेरे दस सैनिक गये हैं।"

"वे भी मार डाले जायेंगे।"

नहुष को इस भविष्यवाणी से संतोष नही हुआ। उसको अपनी बात पर विश्वास न करते हुए देख करण ने कहा—"यह आपने अच्छा नही किया। इन्द्र मारा नही जायेगा; परन्तु उसको पता चल जायेगा कि आप उसको मरवाने का षड़यन्त्र रच चुके है। इससे पारद के विषय में बातचीत करने में बाधा खड़ी हा जायेगी। कही ब्रह्मा को पता चल गया तो वह भी इस प्रकार हत्यारे से बातचीत करना पसन्द नही करेगा।"

"तब तो इस बात के निकलने से पूर्व ही इसका कोई प्रबन्ध करना चाहिए।"

"ब्रह्मा देवलोक में ही रहता है। पहिले उसी के पास यत्न करना चाहिए। यदि वह यहाँ की प्रजा की सुख-शान्ति के लिये यंत्रादि को चालू रखने का उपाय कर दे तो आपकी भारी जीत होगी।"

"तो तुम इस विषय में यत्न क्यो नही करते ?"

"आपको चलना पडेगा और जिस ढंग से मै कहता हूँ, बात करनी पडेगी।"

नहुष तीन दिन रात की शीत को अनुभव कर चुका था। इससे उसने उस दुःख से बचने के लिये करण की युक्ति पर काम करना स्वीकार कर लिया।

करण ने ब्रह्मा के पास जाने के पूर्व देवलोक में यह विख्यात कर दिया कि देवलोक-अधिपति देवलोक की उन्नति के लिए देव-पितामह ब्रह्मा से सहायता की प्रार्थना करने वाले है। इस घोषणा का प्रयोजन यह था कि इससे देवताओं का गान्धारो पर अधिक विश्वास हो और उनके लिये सहानुभूति उत्पन्न हो।

नारद, जो इन दिनो देवलोक में ही था, इस नीति का विरोध करना चाहता था। उसको ब्रह्मा में दया की वृत्ति का भय था।

कहीं ब्रह्मा जनता के सामयिक हित विचार कर, नहुष की सहायता के लिए तैयार हो गया तो भारी अनर्थ हो जावेगा। वह उन तीन दिनो की अमरावती की अवस्था देख चुका था, जब यन्त्र बेकार हो गए थे। नारद का विचार था कि एक न एक दिन पारद समाप्त हो ही जावेगा। अब वह इन्द्र के वदीगृह का पता भी जान गया था। और वह उसको छुडाने का यत्न करना चाहता था। इस कारण वह सोचता था कि यदि देव-पितामह का हृदय लोगो का कष्ट देख पसीज गया तो पारद-रहस्य नहुष को दे बैठेगा और पश्चात् नहुष को जीतना कठिन हो जावेगा। परिणामस्वरूप पावन वैदिक सस्कृति का देवलोक से लोप हो जावेगा।

उसने नहुष के ब्रह्मा के पास जाने से पूर्व स्वय ब्रह्मा के पास जाने को उचित समझा।

सुरलोक की सीमा के समीप एक साफ-सुथरे छोटे-से स्थान पर, जिसमें जीवन की प्रत्येक सुविधा के लिए प्रवन्ध था, इस महापुरुष का निवास था। उसने अपनी युवा-अवस्था में सहस्रो शिष्यो को शिक्षा दी थी और वीसियो तपस्वियों को वरदान दे तारा था। कइयों को उसने ऐसे अस्त्र-शस्त्र भी दिये थे, जिनसे उन्होने पृथ्वीभर को विजय किया था। कई वार तो इन वर-प्राप्त तपस्वियों ने ब्रह्मा की सतान देवताओ को कष्ट देना आरम्भ कर दिया था। अव आयु और अनुभव के बढ़ जाने से एकान्तवास उचित मान वह वहाँ उस स्थान पर आकर निवास करने लगा था। यह उसका स्थान ब्रह्म-लोक कहाता था।

जव नारद ब्रह्मा से मिलने गया तो ब्रह्मा को अचम्भा हुआ। उसनें उत्सुकता से पूछा—"सगीताचार्य। कैसे आगमन हुआ ?"

"आपसे कुछ निवेदन करने आया हूँ।"

"कहो।"

"नहुष आपसे वर माँगने आ रहा है।"

"तो !"

"मैं समझता हूँ कि उसको वर नहीं देना चाहिए। अन्यथा सब बना बनाया काम बिगड़ जायेगा।"

"क्या बना है जो बिगड़ जायेगा, आज तीन वर्ष हो गए म्लेच्छों ने देवताओं की पत्नियों और पुत्रियों को पतित किया। उनको मार-मार कर अपमानित किया और अब उनको भूखों मार-मार देवलोक खाली किया जा रहा है। क्या किया है तुम लोगों ने इस अवस्था को सुधारने के लिए ? अब नहुष ने राज्य-कार्यभार में देवताओं को लेने के लिए घोषणा की है, सब देवता उसकी दासता के लिए तैयार हो रहे हैं। तुम्हारा पहलवान भास्कर भी उसके पास आजीविका के लोभ में उसकी सेवा के लिए गया है।"

नारद इस वृद्ध देवता को रुष्ट नहीं करना चाहता था। इस कारण उसने अपनी पूर्ण योजना ब्रह्मा के सामने रख दी। उसने कहा—"पितामह ! आपका कहना ठीक है कि अभी तक नहुष का राज्य देवलोक में है। इसमें सबसे बड़ा कारण तो यह है कि देवता कई सहस्त्र वर्षों तक बिना युद्ध, सुख और शान्ति से जीवन व्यतीत करते रहे हैं। वे इतने दुर्बल, सुख-स्वाद के इच्छुक और भीरु हो गए हैं कि उनसे कुछ भी आशा नहीं की जा सकती। इस कारण मैंने सुरलोक के उद्धार के लिये मानवों को तैयार किया है। काश्मीर के महाराज देवनाम की कन्या देवयानी का विवाह एक वीर पुरुष विक्रम से हो गया है और काश्मीर का वह सेनापति नियुक्त हो गया है। विक्रम ने काश्मीर-सेना का सगठन और परिवर्तन आरम्भ कर लिया है। काश्मीर-देश के बहुत से सैनिक देवलोक में आकर देवताओं में उत्साह भर रहे हैं।

"भास्कर को मैंने ही उसकी स्त्री द्वारा उकसाकर नहुष की सेवा में भेजा था। उसको वहाँ भेजने का प्रयोजन सिद्ध हो गया है। हमें

यह पता नहीं चल रहा था कि इन्द्र कहाँ वदी है। अब पता चल गया है। मैं उससे सम्पर्क स्थापित करूँगा और फिर सुरलोक के विजय की योजना बन जायगी। मैं आपके पास इस कारण आया हूँ कि नहुष आपसे पारद-रहस्य जानने का यत्न करेगा। यदि आपने उसको वह रहस्य दे दिया तो भगवन्! हम कभी भी देवलोक का उद्धार नही कर सकेंगे।"

ब्रह्मा अपनी भर्राई हुई आवाज में हँस पडा। उसनें कहा—"अब तुम मेरी सहायता माँगने के लिये आये हो ? परन्तु जब तुम लोग शक्तिसम्पन्न थे तब तो मुझसे कभी राय लेने की आवश्यकता नही समझी थी ? जब गणराज्य का रूप इन्द्र-राज्य में बदला, तब भी तुमनें मुझसे सम्मति नही ली। पूर्ण मनुष्यसमाज के आविष्कारो का निचोड देवताओ के भाग्य में बदा था, परन्तु प्रकृति के अन्तरतम रहस्य का ज्ञान भी इन्द्र के पापो को छुपा नही सका। यह पूर्ण रहस्य अपने पास रख उसने यह समझा था कि उसका राज्य अनन्त काल तक स्थिर रहेगा। विधि को कोई नही टाल सकता। वही वात जो उसने अपनी सत्ता स्थायी रखने के लिये की थी, अब उसके विपरीत जा रही है। कोई नही जानता कि उस अपार शक्ति को देवताओ के उद्धार के लिये अथवा इन्द्र को बन्दीगृह से छुडानें के लिये कैसे प्रयोग किया जावे ?

"देखो!"—ब्रह्मा ने नारद की आँखों में देखते हुये कहा—"ज्ञान किसी की वपौती नही। यदि तुम इसको दूसरो से छुपाकर रखना चाहोगे तो यह तुमको भी छोड जायेगा।"

नारद को इन्द्र की अनुचित नीति का दोष मानना पडा, परन्तु उसने कहा—"पितामह! यदि इस समय यह रहस्य और लागो को भी विदित होता तो नहुप पूर्ण देश को जलाकर भस्म कर दिये होता।

यहाँ तक कि वह काश्मीर, ब्रह्मावर्त इत्यादि सब पृथ्वी पर ऊधम मचा देता।"

"ऊधम मचानें वाले तो विना इस शक्ति का रहस्य जाने भी मचा रहे हैं। देखो, चन्द्रवशीय लोग क्षीरसागर के तट से चलकर तुखार पहुँचे। वहाँ से कामभोज और कामभोज से गान्धार और वहाँ से देव-लोक पहुँच गये हैं। अब वे गान्धार, ब्रह्मावर्त और आर्यवर्त में छा जाने वाले हैं। क्या वह प्रकृति की इस रहस्यमयी शक्ति के आश्रय बढ रहे हैं ? इस शक्ति के ज्ञाता इन्द्र को तो अपनी नर्तकियो से ही अव-काश नही था। उसने महाराज कामभोज की तथा गान्धार के आर्यनरेश की सहायता तक नही की। जो ईश्वर की इस अनुपम देन को शुभ कार्यों में भी प्रयोग नही कर सका वह उसके भी काम नही आई।"

"आपका कथन सर्वथा सत्य है; परन्तु भगवन् ! इन्द्र की भूल का परिणाम निर्दोष प्रजा को भोगना पड रहा है। इस समय परिस्थिति यह है कि सब बुद्धिमान् और विद्वान् लोग देवलोक छोडकर भाग रहे हैं। म्लेच्छो ने हमारे स्त्रीवर्ग को अपवित्र कर वर्णसकर उत्पन्न करने आरम्भ कर दिये है। ऐसी अवस्था में, यह परिस्थिति कही स्थायी न हो जाये, इस कारण प्रकृति के इस रहस्य को नहुप को कदापि नही बताना चाहिए। आपके आशीर्वाद से और भगवान् की कृपा से मै शीघ्र ही उनको देवलोक से बाहिर खदेड दूंगा।"

"तुम जो कर सकते हो करो, परन्तु तुम मुझको ज्ञान छुपाकर रखने को क्यो कहते हो ? मेरी चिरन्तन नीति यही है कि अधिकारी को ज्ञान का पुरस्कार देता हूँ। यदि वह ज्ञान का दुरुपयोग करता है तो उसका उसके कार्य का फल मिलता है। कर्म के अच्छे अथवा बुरे होने पर न्याय करने वाला मै कौन हूँ ? कर्म का फल देने वाला भी मै नही हूँ। जो अधि-कारी है वह पावेगा ही।"

यह पता नही चल रहा था कि इन्द्र कहाँ बदी है। अब पता चल गया है। मैं उससे सम्पर्क स्थापित करूँगा और फिर सुरलोक के विजय की योजना बन जायगी। मै आपके पास इस कारण आया हूँ कि नहुष आपसे पारद-रहस्य जानने का यत्न करेगा। यदि आपने उसको वह रहस्य दे दिया तो भगवन्! हम कभी भी देवलोक का उद्धार नही कर सकेंगे।"

ब्रह्मा अपनी भर्राई हुई आवाज में हँस पडा। उसनें कहा—"अब तुम मेरी सहायता माँगने के लिये आये हो? परन्तु जब तुम लोग शक्तिसम्पन्न थे तब तो मुझसे कभी राय लेने की आवश्यकता नहीं समझी थी? जब गणराज्य का रूप इन्द्र-राज्य में बदला, तब भी तुमने मुझसे सम्मति नही ली। पूर्ण मनुष्यसमाज के आविष्कारो का निचोड देवताओं के भाग्य में बदा था, परन्तु प्रकृति के अन्तरतम रहस्य का ज्ञान भी इन्द्र के पापो को छुपा नही सका। यह पूर्ण रहस्य अपने पास रख उसने यह समझा था कि उसका राज्य अनन्त काल तक स्थिर रहेगा। विधि को कोई नही टाल सकता। वही बात जो उसने अपनी सत्ता स्थायी रखने के लिये की थी, अब उसके विपरीत जा रही है। कोई नही जानता कि उस अपार शक्ति को देवताओं के उद्धार के लिये अथवा इन्द्र को वन्दीगृह से छुडानें के लिये कैसे प्रयोग किया जावे?

"देखो!"—ब्रह्मा ने नारद की आँखो में देखते हुये कहा—"ज्ञान किसी की बपौती नहीं। यदि तुम इसको दूसरो से छुपाकर रखना चाहोगे तो यह तुमको भी छोड जायेगा।"

नारद को इन्द्र की अनुचित नीति का दोष मानना पडा, परन्तु उसने कहा—"पितामह! यदि इस समय यह रहस्य और लागो को भी विदित होता तो नहुष पूर्ण देश को जलाकर भस्म कर दिये होता।

यहाँ तक कि वह काश्मीर, ब्रह्मावर्त इत्यादि सब पृथ्वी पर ऊधम मचा देता।"

"ऊधम मचानें वाले तो विना इस शक्ति का रहस्य जाने भी मचा रहे हैं। देखो, चन्द्रवशीय लोग क्षीरसागर के तट से चलकर तुखार पहुँचे। वहाँ से कामभोज और कामभोज से गान्धार और वहाँ से देवलोक पहुँच गये हैं। अब वे गान्धार, ब्रह्मावर्त और आर्यवर्त में छा जाने वाले हैं। क्या वह प्रकृति की इस रहस्यमयी शक्ति के आश्रय वढ रहे हैं ? इस शक्ति के ज्ञाता इन्द्र को तो अपनी नर्तकियो से ही अवकाश नही था। उसने महाराज कामभोज की तथा गान्धार के आर्यनरेश की सहायता तक नही की। जो ईश्वर की इस अनुपम देन को शुभ कार्यों में भी प्रयोग नही कर सका वह उसके भी काम नही आई।"

"आपका कथन सर्वथा सत्य है; परन्तु भगवन् ! इन्द्र की भूल का परिणाम निर्दोष प्रजा को भोगना पड रहा है। इस समय परिस्थिति यह है कि सब वुद्धिमान् और विद्वान् लोग देवलोक छोडकर भाग रहे हैं। म्लेच्छो ने हमारे स्त्रीवर्ग को अपवित्र कर वर्णसकर उत्पन्न करने आरम्भ कर दिये है। ऐसी अवस्था में, यह परिस्थिति कही स्थायी न हो जाये, इस कारण प्रकृति के इस रहस्य को नहुप को कदापि नही वताना चाहिए। आपके आशीर्वाद से और भगवान् की कृपा से मैं शीघ्र ही उनको देवलोक से वाहिर खदेड दूंगा।"

"तुम जो कर सकते हो करो, परन्तु तुम मुझको ज्ञान छुपाकर रखने को क्यो कहते हो ? मेरी चिरन्तन नीति यही है कि अधिकारी को ज्ञान का पुरस्कार देता हूँ। यदि वह ज्ञान का दुरुपयोग करता है तो उसका उसके कार्य का फल मिलता है। कर्म के अच्छे अथवा वुरे होने पर न्याय करने वाला मैं कौन हूँ ? कर्म का फल देने वाला भी मैं नही हूँ। जो अधिकारी है वह पावेगा ही।"

यह पता नहीं चल रहा था कि इन्द्र कहाँ बदी है। अब पता चल गया है। मैं उससे सम्पर्क स्थापित करूँगा और फिर सुरलोक के विजय की योजना बन जायगी। मैं आपके पास इस कारण आया हूँ कि नहुष आपसे पारद-रहस्य जानने का यत्न करेगा। यदि आपने उसको वह रहस्य दे दिया तो भगवन्! हम कभी भी देवलोक का उद्धार नही कर सकेंगे।"

ब्रह्मा अपनी भर्राई हुई आवाज़ में हँस पडा। उसनें कहा—"अब तुम मेरी सहायता माँगने के लिये आये हो? परन्तु जब तुम लोग शक्तिसम्पन्न थे तब तो मुझसे कभी राय लेने की आवश्यकता नही समझी थी? जब गणराज्य का रूप इन्द्र-राज्य में बदला, तब भी तुमने मुझसे सम्मति नही ली। पूर्ण मनुष्यसमाज के आविष्कारो का निचोड देवताओ के भाग्य में बदा था, परन्तु प्रकृति के अन्तरतम रहस्य का ज्ञान भी इन्द्र के पापों को छुपा नहीं सका। यह पूर्ण रहस्य अपने पास रख उसने यह समझा था कि उसका राज्य अनन्त काल तक स्थिर रहेगा। विधि को कोई नही टाल सकता। वही बात जो उसने अपनी सत्ता स्थायी रखने के लिये की थी, अब उसके विपरीत जा रही है। कोई नही जानता कि उस अपार शक्ति को देवताओ के उद्धार के लिये अथवा इन्द्र को बन्दीगृह से छुडानें के लिये कैसे प्रयोग किया जावे?

"देखो!"—ब्रह्मा ने नारद की आँखों में देखते हुये कहा—"ज्ञान किसी की बपौती नही। यदि तुम इसको दूसरो से छुपाकर रखना चाहोगे तो यह तुमको भी छोड जायेगा।"

नारद को इन्द्र की अनुचित नीति का दोष मानना पडा, परन्तु उसने कहा—"पितामह! यदि इस समय यह रहस्य और लागो को भी विदित होता तो नहुप पूर्ण देश को जलाकर भस्म कर दिये होता।

यहाँ तक कि वह कास्मीर, ब्रह्मावर्त इत्यादि सब पृथ्वी पर ऊधम मचा देता।"

"ऊधम मचानें वाले तो विना इस शक्ति का रहस्य जाने भी मचा रहे हैं। देखो, चन्द्रवशीय लोग क्षीरसागर के तट से चलकर तुखार पहुँचे। वहाँ से कामभोज और कामभोज से गान्धार और वहाँ से देव-लोक पहुँच गये हैं। अव वे गान्धार, ब्रह्मावर्त और आर्यवर्त में छा जाने वाले हैं। क्या वह प्रकृति की इस रहस्यमयी शक्ति के आश्रय वढ रहे हैं ? इस शक्ति के ज्ञाता इन्द्र को तो अपनी नर्तकियो से ही अव-काश नही था। उसने महाराज कामभोज की तथा गान्धार के आर्यनरेश की सहायता तक नही की। जो ईश्वर की इस अनुपम देन को शुभ कार्यों में भी प्रयोग नही कर सका वह उसके भी काम नही आई।"

"आपका कथन सर्वथा सत्य है; परन्तु भगवन् ! इन्द्र की भूल का परिणाम निर्दोष प्रजा को भोगना पड़ रहा है। इस समय परिस्थिति यह है कि सव वुद्धिमान् और विद्वान् लोग देवलोक छोड़कर भाग रहे हैं। म्लेच्छो ने हमारे स्त्रीवर्ग को अपवित्र कर वर्णसकर उत्पन्न करने आरम्भ कर दिये हैं। ऐसी अवस्था में, यह परिस्थिति कही स्थायी न हो जाये, इस कारण प्रकृति के इस रहस्य को नहुष को कदापि नही वताना चाहिए। आपके आशीर्वाद से और भगवान् की कृपा से मैं शीघ्र ही उनको देवलोक से वाहिर खदेड दूंगा।"

"तुम जो कर सकते हो करो, परन्तु तुम मुझको ज्ञान छुपाकर रखने को क्यो कहते हो ? मेरी चिरन्तन नीति यही है कि अधिकारी को ज्ञान का पुरस्कार देता हूँ। यदि वह ज्ञान का दुरुपयोग करता है तो उसका उसके कार्य का फल मिलता है। कर्म के अच्छे अथवा वुरे होने पर न्याय करने वाला मैं कौन हूँ ? कर्म का फल देने वाला भी मैं नही हूँ। जो अधि-कारी है वह पावेगा ही।"

"यही तो भगवन् ! मैं कह रहा हूँ कि नहुष अधिकारी नहीं। उसके पूर्व के कर्म उसको और अधिक शक्ति प्राप्त करने के योग्य नही बताते।"

"ठीक है। पर वह मुझसे दिए ज्ञान का दुरुपयोग करेगा इसको मैं कैसे जान सकता हूँ ? यूँ तो मैं समझता हूँ कि इन्द्र ने भी ज्ञान का सदुपयोग नही किया। यदि किया होता तो जो भय आर्यावर्त को हो रहा है, वह नही हो सकता था।"

नारद का आयोजन सफल नही हुआ। वह ब्रह्मा से वचन नहीं ले सका कि पारद-रहस्य नहुष को न बताया जाये।

(८)

परन्तु ब्रह्मा के अनुभव के सम्मुख नारद अभी बालक था। ब्रह्मा ने जैसे नारद को डाँटा उससे कही अधिक नहुष को फटकारा।

नहुष आया। वह ब्रह्मा से भेंट की स्वीकृति ले करण को साथ लेकर उससे मिलने गया।

ब्रह्मा एक आसन पर बैठा था। ये दोनो गए तो अनेकानेक वस्तुएँ भेंट के लिए ले गए। उन सबको ब्रह्मा के सम्मुख रखा और चरण-स्पर्श कर वन्दना की। ब्रह्मा ने सम्मुख आसन पर बैठने का आदेश देकर पूछा—"कौन हो तुम ?"

नहुष ने हाथ जोडकर नम्रतापूर्वक निवेदन किया—"सेवक का नाम नहुप है। गान्धारदेश में कमलसर-दुर्ग का रहने वाला हूँ। इस समय इस देश का राज्य करने का काम भगवान ने मेरे कन्धो पर रख दिया है। यह जान कि आप इस देश के प्राचीनतम विद्वान हैं, आपकी सेवा के निमित्त आया हूँ।"

"बहुत अच्छी बात है। यह साथ कौन है ?"

"यह मेरे प्रधान मन्त्री करण हैं।"

ब्रह्मा ने करण की ओर ध्यान से देखकर कहा—"तुम ! तुम इसकी सेवा में कैसे रह सके हो ? तुम दोनो की प्रकृति नही मिलती ।"

करण इस अन्तरात्मा की बात का रहस्य खुल जाने से भारी असमजस में पड़ गया । जहाँ उसको इस बात के प्रकट हो जाने से संकोच हुआ, वहाँ ब्रह्मा की इस दिव्य दृष्टि पर अचम्भा भी हुआ । नहुष ब्रह्मा के इस कटाक्ष को समझ नही सका । इससे वह चुपचाप मुख देखता रहा । करण ने कहा—"भगवन् ! कर्मों की गति अति गहन है । मूर्ख राज्य करते है । विद्वान भिक्षा मांगते हैं । सुन्दर स्त्रियाँ वेश्या वृत्ति करती हैं । साधारण स्त्रियाँ सती-साध्वी होती है । वृद्ध अनुभवी जनो को सठिया गया समझा जाता है और युवा विषय-लोलुप पुरुष अपनी बुद्धि को ठीक मार्ग पर कार्य करती हुई मानते हैं ।"

ह्मा समझ गया कि करण पढा-लिखा समझदार व्यक्ति है । इससे कहने लगा—"यह तो मूर्खो की बातें है । बुद्धिशील, कर्मनिष्ठ मनुष्य तो ऐसी धारणा नही रख सकते । उनको तो अपनी बुद्धि से वेश्यावृत्ति नही करनी चाहिए । खैर, छोडो इस बात को । ये श्रीमान् तीन वर्ष तक देवलोक का सत्यानाश कर आज यहाँ किस लिए आए है ? जो कुछ देवलोक में हुआ है, वह सब मैं जानता हूँ । उससे इन्कार करने की आवश्यकता नही ।"

"तो पिताओ के पितामह ! यह भी तो आप जानते होगे कि हम किस निमित्त सेवा में उपस्थित हुए हैं ?"

"जानता तो हूँ परन्तु जब कोई वस्तु मांगी जाती है तो अपने मुख से कही जाती है । बताओ मुझसे क्या चाहते हो ?"

"हम यह चाहते हैं कि आप राज्यकार्य के चलाने में, अपने ज्ञान से, हमारी सहायता करें । शक्तिकेन्द्रो में जीवित पारद समाप्त हो रहा है । इसके समाप्त होने से पूर्ण देवलोक शीतमय, अन्धकारमय, बंजर

और दु:खमय हो जावेगा। इस विपत्ति से आप अपने ज्ञान द्वारा हमारी रक्षा कर सकते हैं।"

"तुमको यह सूचना किसी ने ठीक दी है, परन्तु तुम एक बात नहीं समझे। ज्ञान हरजाई नही है। सरस्वती भगवान् विष्णु की पत्नी है। वह हिरण्यकश्यप की पत्नी नही बन सकती।"

"ठीक है। हिरण्यकश्यप की पत्नी नही, तो समाज की माता तो सरस्वती है। हम समाज की रक्षा के लिए ही उसका आह्वान करना चाहते हैं।"

"माँ को अपनी सन्तान की चिन्ता नृशस शासको से अधिक रहती है। वह देख रही है कि उनकी दुर्दशा हो रही है, परन्तु कपूतो को शिक्षा देने के लिए कभी कष्ट देना भी उचित ही होता है।"

"तो क्या यह कष्ट अभी पर्याप्त नहीं हुआ ?"

"नही ! साथ ही कष्ट जिस दिशा से है, उस दिशा का सुधार करना है। अभी तक पारद की दिशा से कोई कष्ट नहीं। तीन दिन तक यत्र बन्द रहे थे, तो माँ भगवती नें जनता के कष्टनिवारणार्थ पारद ढूंढ निकाला और कार्य फिर चालू हो गया।"

"माँ भगवती ने ?" करण ने अचम्भे से पूछा—"भगवन् ! उसको ढूंढने वाली ·" ब्रह्मा ने बात बीच में ही काटकर कहा—"ठीक है ! ठीक है ! तुम्हारी पत्नी सुमन ने ढूंढा है न ? पर कौन कह सकता है कि वह माँ का अवतार नही है ?"

करण निरुत्तर हो गया। जो कुछ वह माँगने आया था, वह मिला नहीं। इस कारण उसने अत्यन्त नम्रतापूर्वक पुन. कहा—"आप महाराज नहुष के लिए क्या आज्ञा करते हैं ?"

"अभी समय है कि देवलोक छोड अपने घर चला जाये। इन्द्र को लाकर उसके सिंहासन पर बिठाये और उससे क्षमायाचना करे।"

"और कोई मार्ग नही ?"

"था, परन्तु अब नही।"

"कब था ? और अब क्यो नही ?"

"जब राज्य स्थापित किया था, उस समय प्रजा को प्रजा के भाव से देखता तो यहाँ से कोई न कोई विद्वान् सहायतार्थ भेज दिया जाता। परन्तु उसने प्रजा को दास-दासियो का रूप दिया। अपने को स्वामी बनाया और उनका मूर्खतापूर्ण ढंग से भोग किया। अब इस सब कुछ हो जाने के उपरान्त यदि यह अपने घर लौट जाये, तो उसका यहाँ आना भगवान् के दंड का रूप ही माना जायेगा। ऐसा माना जावेगा कि डडा मूर्ख देवताओ की पीठ पर लगा है और वापिस चला गया है।

"दड जिसकी पीठ पर पडता है उसकी पीठ के साथ जुड़ नही जाता, लौट जाता है। यदि यह वही जुडा रहा, तो जोक का रूप हो जायेगा और फिर जो व्यवहार जोक के साथ होना चाहिए वह उसके साथ भी होगा।"

करण ने नहुप के पिछले कर्मों के लिए क्षमायाचना करते ए कहा—"हमारे देश में राजा स्वामी होता है। इस कारण नहुप ने यहाँ भी स्वामित्व ही दिखाया। इतने समय तक इस देश में रहने से, इस देश के व्यवहार का ज्ञान इनको हो रहा है और यदि आप आशीर्वाद दें तो राजा के भाव से प्रजा की रक्षा का कार्य किया जायेगा। कुछ मास से श्रीमान् जी ऐसा ही व्यवहार रखने का यत्न कर रहे हैं।"

"सो तो मै जानता हूँ। भास्कर को इन्द्र का गला घोटने के लिए भेजना इसी भावना का चिह्न है न ? देखो करण ! तुम मुझको धोखा नही दे सकते। मै अपनी योगसाधना के कारण त्रिकालज्ञ हूँ। इसी कारण मै कहता हूँ कि अभी समय है। नहुप को इन्द्र को देवलोक

और दुःखमय हो जावेगा। इस विपत्ति से आप अपने ज्ञान द्वारा हमारी रक्षा कर सकते हैं।"

"तुमको यह सूचना किसी ने ठीक दी है, परन्तु तुम एक बात नहीं समझे। ज्ञान हरजाई नही है। सरस्वती भगवान् विष्णु की पत्नी है। वह हिरण्यकश्यप की पत्नी नही बन सकती।"

"ठीक है। हिरण्यकश्यप की पत्नी नही, तो समाज की माता तो सरस्वती है। हम समाज की रक्षा के लिए ही उसका आह्वान करना चाहते हैं।"

"माँ को अपनी सन्तान की चिन्ता नृशस शासको से अधिक रहती है। वह देख रही है कि उनकी दुर्दशा हो रही है, परन्तु कपूतों को शिक्षा देने के लिए कभी कष्ट देना भी उचित ही होता है।"

"तो क्या यह कष्ट अभी पर्याप्त नहीं हुआ ?"

"नही! साथ ही कष्ट जिस दिशा से है, उस दिशा का सुधार करना है। अभी तक पारद की दिशा से कोई कष्ट नहीं। तीन दिन तक यत्र वन्द रहे थे, तो माँ भगवती ने जनता के कष्टनिवारणार्थ पारद ढूंढ निकाला और कार्य फिर चालू हो गया।"

"माँ भगवती ने ?" करण ने अचम्भे से पूछा—"भगवन्! उसको ढूंढने वाली ..." ब्रह्मा ने बात वीच में ही काटकर कहा—"ठीक है! ठीक है! तुम्हारी पत्नी सुमन ने ढूंढा है न ? पर कौन कह सकता है कि वह माँ का अवतार नहीं है ?"

करण निरुत्तर हो गया। जो कुछ वह माँगने आया था, वह मिला नहीं। इस कारण उसने अत्यन्त नम्रतापूर्वक पुन कहा—"आप महाराज नहुप के लिए क्या आज्ञा करते हैं ?"

"अभी समय है कि देवलोक छोड अपने घर चला जाये। इन्द्र को लाकर उसके सिंहासन पर विठाये और उससे क्षमायाचना करे।"

"और कोई मार्ग नही ?"

"था, परन्तु अब नही ।"

"कब था ? और अब क्यो नही ?"

"जब राज्य स्थापित किया था, उस समय प्रजा को प्रजा के भाव से देखता तो यहाँ से कोई न कोई विद्वान् सहायतार्थ भेज दिया जाता। परन्तु उसने प्रजा को दास-दासियो का रूप दिया। अपने को स्वामी बनाया और उनका मूर्खतापूर्ण ढंग से भोग किया। अब इस सब कुछ हो जाने के उपरान्त यदि यह अपने घर लौट जाये, तो उसका यहाँ आना भगवान् के दड का रूप ही माना जायेगा। ऐसा माना जावेगा कि डडा मूर्ख देवताओ की पीठ पर लगा है और वापिस चला गया है।

"दड जिसकी पीठ पर पडता है उसकी पीठ के साथ जुड़ नही जाता, लौट जाता है। यदि यह वही जुड़ा रहा, तो जोक का रूप हो जायेगा और फिर जो व्यवहार जोक के साथ होना चाहिए वह उसके साथ भी होगा।"

करण ने नहुष के पिछले कर्मो के लिए क्षमायाचना करते ए कहा—"हमारे देश में राजा स्वामी होता है। इस कारण नहुष ने यहाँ भी स्वामित्व ही दिखाया। इतने समय तक इस देश में रहने से, इस देश के व्यवहार का ज्ञान इनको हो रहा है और यदि आप आशीर्वाद दें तो राजा के भाव से प्रजा की रक्षा का कार्य किया जायेगा। कुछ मास से श्रीमान् जी ऐसा ही व्यवहार रखने का यत्न कर रहे है।"

"सो तो मै जानता हूँ। भास्कर को इन्द्र का गला घोंटने के लिए भेजना इसी भावना का चिह्न है न ? देखो करण ! तुम मुझको धोखा नही दे सकते। मै अपनी योगसाधना के कारण त्रिकालज्ञ हूँ। इसी कारण मै कहता हूँ कि अभी समय है। नहुष को इन्द्र को देवलोक

में वापिस बुला, उसका राज्य उसको सौंप देना चाहिए। अभी तक जो भोग उसने भोगा है, अपने पूर्वजन्मो के पुण्य कर्मो के फल से है। आगे जो कुछ वह करेगा वह उस फल से ऊपर की बात होगी और फिर उसका परिणाम भी होगा। वह परिणाम महाभयकर होगा।"

इतना कह ब्रह्मा ने भेंट की उन सब वस्तुओं की ओर सकेत कर कहा—"इनको ले जाओ। ये मेरे काम की वस्तुएँ नही हैं। मैं इनको लूंगा भी नहीं। ये देवताओ के रक्त से रगी प्रतीत होती हैं।"

ब्रह्मा से भेंट समाप्त हुई और नहुष कुछ पाने के स्थान कुछ खोकर ही गया। इस पर भी करण ने अमरावती में पहुँच यह घोषणा करवा दी कि महाराज नहुष देवताओं के पितामह ब्रह्मा से मिलने गए थे। महाराज ने पितामह के चरणो में अनेको वस्तुएँ भेंट की और उन्होने अपार कृपा कर इन सब वस्तुओं को वहाँ की जनता में वितरण करवा दिया। पितामह ने महाराज की इस नीति को कि गान्धार और देवता दोनों जातियाँ एकसमान प्रजा हैं, सराहा है। दोनो में अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण वर्तालाप हुआ। पितामह ने आशा प्रकट की कि इस नीति का अच्छा प्रभाव एक वर्ष के पश्चात् जानकर वे प्रसन्न होगे।

सुमन इस भेंट का परिणाम जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक थी। इस कारण जब करण अमरावती लौटा और नहुष को महल में छोडकर अपने घर आया तो सुमन ने चरण छूकर बिठाया, पाँव धोये और पूछा—"क्या सफलता मिली ?"

करण की हँसी निकल गयी। उसने हँसकर कहा—"सफलता क्या मिलनी थी, डाँट पडी है। सुमन! तुमने किस प्रकार कहा था कि पितामह भोले-भाले है, वह जनता का हित समझ कुछ उपाय बता देंगे ?"

"मैंने जैसा उनके विषय में सुन रखा था, वैसा ही आपको बता

दिया। मैंने स्वय उनको कभी नही देखा। क्या हुआ है ?"

"पहली वात तो यह है कि उनको यहाँ की प्रत्येक वात का ज्ञान है। तुम्हारे विषय में भी, यहाँ तक कि तुम्हारा नाम भी उनको विदित है। महाराज और उनके सैनिको ने जो कुछ किया वह सव उनको ज्ञात है। ऐसी अवस्था में उनसे महाराज के साथ किसी प्रकार की सहानुभूति की आशा व्यर्थ थी।"

"प्रजा के नाम पर ही उनसे सहायता मागनी थी।"

"मांगी थी। कहने लगे, ज्ञान की देवी, भगवती सरस्वती को अपनी संतान की नृशस राजा से अधिक चिन्ता है। कभी कुसंतान को शिक्षा देने के लिये कुछ कष्ट देना पडता है। माँ भगवती उनके विषय में स्वय विचार कर लेगी। पहिले भी तो उसने पारद ढूंढ निकाला है।"

"आपने कहा नही कि भगवती ने नही प्रत्युत आपकी पत्नी ने······।"

करण खिलखिलाकर हँस पड़ा और वात काटकर, वोला—"वताया था। कहने लगे कि कौन कह सकता है कि तुम भगवता का अवतार नही हो ?"

"तो कुछ नही मिला ?"

"मिला है। शिक्षा मिली है। महाराज को कहा गया है कि अपने देश को लौट जायँ और यह राज्य इन्द्र को लौटा दें।"

सुमन इस उत्तर के अर्थ समझने का यत्न करती रही। वहुत विचार के उपरान्त उसने पूछा—"और महाराज क्या चाहते है ?"

"वे इस वात के लिए तैयार नही हैं। एक वार राज भोगकर पुनः खेतो में हल नही चलाया जा सकता। साथ ही ये पचास सहस्र सैनिको का क्या होगा ? इनमें से सहस्रो ने यहाँ विवाह कर लिये है। उनके

बाल-बच्चे हैं। वे कैसे लौट सकेंगे ? फिर उनकी वहाँ भी पत्नियाँ हैं। सब बातें पग पीछे ले जाने की स्वीकृति नही देती।"

"फिर आगे पग किस ओर जायेगा ?"

"अभी हमने विचार नहीं किया। मेरा तो विचार है कि इस देश में गान्धार और देवताओ का समन्वय होना चाहिए। दोनो को मिलकर उपाय ढूंढने चाहिए कि किस प्रकार इस देश का जीवन चलेगा।"

"यह ठीक है। पर क्या इन्द्र से किसी प्रकार मैत्री नही हो सकती ?"

इससे करण गम्भीर विचार में पड गया।

उद्धार की ओर

(१)

देवयानी के स्वयंवर में नहुष के व्यवहार को सुमति ने भी देखा था। नहुष के मायावी रूप को देख वह उस चित्र का रहस्य जान गयी, जो वह देवयानी के पास लेकर आई थी। वह यह जान अति लज्जित हुई थी कि किसी ने उसके पिता को मूर्ख बना देवयानी के पास नहुष का मायावी रूप का चित्र भिजवाया था। इस पर भी वह यह नहीं समझ सकी थी कि देवयानी के स्वप्नों का रहस्य नहुष को कैसे पता चल गया।

इस विषय में उसको बहुत खोज और विचार करने की आवश्यकता नहीं रही। सुमति का पिता महर्षि पाणिनी स्वयंवर में उपस्थित था। उसने भी नहुष की करतूत को देखा था। वह भी इस विषय में अपने भाग पर लज्जित था और स्वयंवर से लौट उसने सुमति से कहा—"बेटी सुमति! बहुत भूल हुई कि हमने वह चित्र देवयानी को भेजा। भगवान् का धन्यवाद है कि अन्त वैसा नहीं हुआ जैसा करने के लिए यत्न किया गया था।"

देवयानी के स्वप्नों के रहस्य को सुमति ने अपने पिता को बताया तो वह स्तब्ध रह गया। सुमति ने कहा—"पिता जी! यही कारण है कि जब उसने महादेव का रूप देखा तो अपने संस्कारों के अधीन उसके गले में माला डालने पर उद्यत हो गयी।"

"तुमने यह स्वप्न की बात कल्लर से तो नहीं कही थी ?"

"क्यों ? कही तो थी। क्या बात है पिता जी ?"

"बात यह है कि उसके एक परिचित ने वह चित्र मुझको देवयानी तक पहुँचाने के लिए दिया था।"

'सत्य ! तब तो उसने बहुत बुरा किया है। इसका अर्थ यह हुआ कि वह विश्वासयोग्य पुरुष नहीं है।"

"अभी अनुभवहीन है। इसी से भूल कर बैठा है।"

इस सफाई से सुमति को संतोष नहीं हुआ। वह कल्लर से मिलने को चल पड़ी। कल्लर अपने आगार में बैठा स्वाध्याय कर रहा था। सुमति को आया देख बाहर निकल आया। सुमति ने कहा—"आपसे एक आवश्यक बात करनी है।"

"कहाँ ?"

"पिता जी के सम्मुख।"

"तो चलो।" कल्लर ने सोचा कि विवाह के विषय में बात करनी होगी। इस कारण वह तुरन्त उसके साथ चल पड़ा। दोनों वहाँ आ गये, जहाँ सुमति के माता-पिता बैठे थे और स्वयंवर पर हुई दुर्घटना पर विचार कर रहे थे। इनको आया देख माँ ने बैठाया और पूछा—"क्या बात है ?"

"आपने मेरी सगाई इनके साथ कर दी है।"

"हाँ ! हमने तुम्हारी इच्छा के अनुसार अपनी ओर से यही निश्चय किया है।"

"मैं इन महानुभाव से यह पूछना चाहती हूँ कि इन्होंने किसी के सम्मुख कोई ऐसी बात की है जो मैंने इन पर विश्वास कर इनको बताई हो ?"

ऋषि और ऋषि पत्नी दोनों कल्लर का मुख देखने लगे। कल्लर

ने बहुत विचार कर कहा—"सुमतिदेवी के विषय में मैंने कोई बात किसी से नही कही।"

सुमति ने अपनी बात का अभिप्राय समझाने के लिए कहा—"मैंने यह नही पूछा। मैंने तो यह पूछा है कि कोई ऐसी बात, जो मैंने आपको विश्वासपात्र मान आपसे कही हो, वह आपने किसी से कही है क्या?"

कल्लर नें पुनः कहा—"मुझको स्मरण नही कि मैंने आपके विषय म कोई बात किसी से कही हो। किसी अन्य के विषय में कुछ कहा हो तो मैं नही कह सकता।"

"यही तो पूछ रही हूँ। मैंने राजकुमारी देवयानी के स्वप्नो के विषय में एक बार आपसे कुछ कहा था। आपने वह किसी से कही है क्या?"

"वह एक साधारण-सी बात थी। मैंने अवश्य किसी से कही थी।"

"यह आपने अच्छा नही किया। मैं राजकुमारी की प्रिय सखियो में से एक हूँ। मैं उनसे अनेको विषयो पर बातचीत करती हूँ। आप मेरे होने वाले पति है। आपसे कोई बात छुपाकर रखना मेरे लिए उचित नही, परन्तु आपका पेट इतना हलका है कि उसमें कोई बात रहनी कठिन प्रतीत होती है।

"ऐसी अवस्था में दो में से एक बात करनी होगी। या तो मुझको राजकुमारी से मेल-जोल बन्द कर देना होगा या आपसे सम्बन्ध तोड़ देना होगा। इन दोनो में से मैंने यही चुना है कि मैं आपसे विवाह न करूँ। आपको इस प्रकार की दुविधा में पड़ने का अवसर ही नहीं आयेगा।"

इस पर ऋषि-पत्नी ने बातचीत में ही बाधा डालकर कहा—"विवाह तोड़ना सुगम बात नही है।"

"पर माँ ! विवाह अभी नही हुआ । भगवान् का धन्यवाद है कि उससे पूर्व ही मुझको अपनी भूल का ज्ञान हो गया है। मैं इनसे विवाह नही करूँगी ।" इतना कह वह उठ खडी हुई ।

महर्षि ने जाते हुए लडकी को कहा—"ठहरो ! मेरी सम्मति मानो ! अभी इस सगाई को तोडने की घोषणा न करो। एक मास तक प्रतीक्षा करो और देखो शायद तब तक तुम्हारा यह विचार बदल जावे ।"

सुमति पिता की बात सुनकर गम्भीर विचार में पड गयी। कुछ काल तक विचार कर उसने कहा—"बहुत अच्छा पिता जी ! आज से एक मास पश्चात् मैं अपने विचार इनको बता दूंगी ।" यह कह वह वहाँ से चली गयी ।

कल्लर कुछ समय तक वहाँ बैठा सोचता रहा । वह इस बात को इतना बडा अपराध नही समझता था । पर कर ही क्या सकता था ! गुरु जी को नमस्कार कर चुपचाप अपने आगार में चला गया ।

राजकुमारी के विदा होने से पूर्व सुमति उससे मिलने गयी। एकान्त में उसने अपन और कल्लर के सम्बन्ध में हुई सब बात बताई। राजकुमारी कल्लर के साधारण से काम का इतना भयकर परिणाम, कि वह भ्रम में फँस एक अनिच्छित के गले में जयमाल डालने वाली थी, का विचार कर काँप उठी थी। इस पर भी जब सुमति ने बताया कि वह अब उससे विवाह की इच्छा नही रखती तो चकित रह गयी। उसने सुमति से कहा—"पर यह तुम क्या कर रही हो सखि !"

"मैं अपने भाग्य का निर्माण स्वय करना चाहती हूँ। और जब भी भूलसुधार का अवसर पाती हूँ तो उसको करने के लिये तैयार हो जाती हूँ ।"

"सुमति ! मेरा विचार है कि इतनी जल्दी नही करनी चाहिए। देखो, मैं दो तीन मास के पश्चात् यहाँ लौटकर वापिस आऊँगी, तब

तुमसे इस विषय में बात करूँगी। तब तक तुम इस सम्बन्ध को तोड़ो नही।"

सुमति चुप रही। दोनो सखियाँ गले मिली और पृथक् हो गयी। देवयानी ने बताया—"मैं यह चाहती हूँ कि तुम्हारे जीजा-जी इस स्थान पर आकर राज्य के कठिन कार्य में पिता जी का हाथ बटायें। मैं भी उस उच्छृङ्खलता का, जो नहुष ने मेरे साथ की है, बदला लेना चाहती हूँ। मैं ऐसा उदाहरण उपस्थित कर देना चाहती हूँ कि भविष्य में काश्मीर की किसी भी कन्या की ओर कोई आँख न उठा सके। एतदर्थ हम शीघ्र ही आवेंगे।"

विवाह के तीन मास पश्चात् देवयानी अपने पति के साथ चक्रधरपुर वापिस लौट आई। लौटने के अगले दिन उसने सुमति को बुला भेजा। सुमति अति प्रसन्न थी। देवयानी ने जब कल्लर के विषय में पूछा तो उसने बताया—"पिता जी के सम्मुख बात होने के अगले दिन वह अपना बोरिया-बिस्तर बाँध, बिना मुझको मिले चला गया। मैं समझती हूँ कि यह अच्छा ही हुआ है।"

"अच्छा क्यो हुआ है?"

"उसके मन का विकास बहुत ही निम्न कोटि का था। मुझको देवर्षि नारद से यह पता चला है कि उसने एक अँगूठी के लोभ में तुम्हारे स्वप्नो के रहस्य को बेच डाला था। मैं ऐसे आदमी को अपने योग्य नही मानती।"

"तो फिर अब क्या समाचार है?"

"कैसा समाचार? मेरे विवाह का?"

"अभी इस विषय में कही विचार हो रहा है या नही?"

"अभी कुछ भी निश्चय नहीं किया।"

"इसका अर्थ यह हुआ कि विचार तो किया है। कोई भी है, जो सुमति को अपने योग्य प्रतीत हुआ है?"

"यह तो नही कह सकती। हाँ, यह कहा जा सकता है कि कोई है जिसको सुमति अपने योग्य प्रतीत ई है।"

"कौन है, जो अपने पर इतना गर्व करता है ?"

"कोई है जिसको मैं तुम्हारे योग्य नहीं समझती थी। परन्तु अब वह अपने को मेरे योग्य समझता है।"

देवयानी इसका अर्थ नही समझी। जब उसने बहुत आग्रह किया तो सुमति ने बताया—"एक दिन देवर्षि नारद मुझसे मिलने आये और उन्होंने बताया कि कैसे कल्लर ने एक साधारण-सी वस्तु के लिये तुम्हारा रहस्य बेच दिया था। इस पर पिता जी ने मेरे और कल्लर के विषय में बात बताई। तब देवर्षि मेरी प्रशसा करने लगे। इसके पश्चात् वे कई बार पिता जी से और तदनन्तर मुझसे मिलने आये। वे जब भी मिलते, मेरी प्रशसा करते थे। इस पर एक दिन मैंने कह ही दिया—"आप तो ऐसे कह रहे हैं जैसे आपको मेरे से प्रेम हो गया है।" इस पर [illegible] र ध्यान से देखकर बोले—"सुमति, तुम सत्य ही प्रेम किये [illegible] ।"

"मैं खि, [illegible] पड़ी। इस [illegible] "तुम ऋषिकन्या हो। तुमको [illegible] अपना अहोभाग्य मानूगा। [illegible] । तुममें कुछ विशेष व [illegible] । यह तुम्हारी विद्या [illegible] हो सकती है अथवा [illegible] तो मैं तुम्हारे फर.. [illegible] को मैं भ. [illegible]

मना [illegible] कि

संगीत

"इसके बाद वे मुझसे खुले रूप में प्रेम प्रकट करने लगे हैं। अब माता पिता जी की दृष्टि में भी वे मेरे प्रेमी है।"

"तो तुम ने उनको कुछ आशा दिलायी है क्या ?"

"मैंने कहा था कि मेरे भाग्य में एक असुरपति लिखा है। वे कहने लगे कि यदि मै उनसे विवाह का वचन दूं तो वे जगत्-भाग्य-विधाता ब्रह्मा से कहकर मेरा भाग्य बदलवा देंगें। मैंने अभी तक कुछ भी उत्तर नही दिया। आजकल वे देवलोक गये हुए हैं और पुनः यहाँ आने वाले हैं। उनकी एक प्रेमपूर्ण पत्रिका मेरे पास आई है।

"मैंने उनको तुमसे उद्यान में बात करते एक दिन देखा था। तब वे मुझको प्रौढावस्था के प्रतीत हुए थे और यह समझ कि वे तुम से विवाह का प्रस्ताव कर रहे हैं मैंने सखियो में तुम्हारी हँसी उड़ाना चाही थी, परन्तु अब......।"

इतना कह सुमति चुप कर गम्भीर हो गई। इस पर देवयानी नें मुस्करा कर पूछा—"परन्तु क्या ? अब तुमको वे युवा प्रतीत होते हैं ?"

"कह नही सकती।"

"देवताओं में यही गुण है, वे प्राय. युवा रहते है।"

(२)

देवयानी के स्वयंवर के पश्चात् नारद काश्मीर की देवलोक के उद्धार में सहायता का विश्वास लेकर देवलोक में चला आया था। वह छुपकर देवताओं के मन में उत्साह उत्पन्न करने का यत्न कर रहा था। उसके यहाँ अनेको ही परिचित थे, परन्तु जो बात उसने देखी वह अत्यन्त निराशाजनक थी। बहुत से देवता अपनी स्त्रियाँ गान्धारो के हाथ खो चुके थे। बहुत से ऐसे थे जो गान्धार-सैनिको के आश्रय जीवित थे। और शेष इतने भयभीत हो चुके थे कि नारद से बात करते भी डरते थे।

अमरावती में तो नारद को किंचित् मात्र भी सफलता नही मिली। नगर छोड देहातो में जा-जा कर जनता को तैयार करने का यत्न करने लगा। इससे उसका आशय था कि जनता का एक सगठन तैयार कर नहुष के विरुद्ध विद्रोह कर दिया जाये।

देवलोक के देहातो में उसको कुछ लोग सहायक मिल गए। उनमें भास्कर की स्त्री मलिद एक थी। भास्कर की बडी लडकी आशा दूसरी थी। नारद को इन्द्र से मिलकर इस कार्य को आगे चलाने की इच्छा हुई तो इन्द्र के बन्दी-स्थान का जानना आवश्यक हो गया। अमरावती में कोई नहीं जानता था कि इन्द्र किस स्थान में वन्दी है। इतना तो इन्द्राणी से पता चला था कि इन्द्र को गान्धार की सीमा की ओर ले जाया जा रहा था, जब वह भाग खडी हुई थी और काश्मीर की सीमा में आ गई थी। इन्द्र का बदी-स्थान जानने के लिए मलिद की प्रेरणा से भास्कर को नहुष की सेवा करने के लिये तैयार किया गया और फिर नहुष के मस्तिष्क में यह बात डाल दी गयी कि इन्द्र को भास्कर मार डालेगा। इस प्रकार जब भास्कर को इस कार्य पर नियुक्त किया गया तो उसको इन्द्र का पता मिल गया। पश्चात् भास्कर को अमरावती से काश्मीर पहुँचा दिया गया।

नारद ब्रह्मा से मिलकर इन्द्र को मिलने चला गया। इन्द्र से मिलना इतना सुगम नही था। इसमें सफलता मिली तो नारद के सगीत और वीणा के बल पर। यह कहा गया कि एक साधु बदी को सगीत सुनाना चाहता है। नहुष का बडा भाई इन्द्र की देख-भाल करता था और जब उसको नारद का सगीत पसद आया तो बदी के सम्मुख नारद को उपस्थित होने का अवसर मिल गया।

नारद ने ब्रह्मा से भेंट का विवरण इन्द्र को बताया। इन्द्र अब भी

प्रकृति की शक्ति का गूढ रहस्य सबको बताने

से ससार में अनर्थ हो जावेगा। उसने वह सब ज्ञान केवल अपने पास रखने से कोई पाप नही किया। ब्रह्मा के इस लांछन को उसने ठीक नही माना कि इस शक्ति द्वारा कामभोज और गान्धार की म्लेच्छो से रक्षा नही की गयी। उसका कहना था कि वहाँ के राजाओ ने देवताओ से सहायता नही माँगी। नारद को कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि इन्द्र वूढा हो गया है। इस पर भी उसने कहा—"श्रीमान्, अब आप क्या करना चाहते हैं ? यहाँ वेकार वैठे रहने से कुछ लाभ नही। प्रजा भूख से मर रही है। शक्ति-प्रसारक यन्त्र विगडते जाते हैं। तीन दिन तक वह काम नही कर सके और पूर्ण देश में त्राहि त्राहि मच गई थी। जनता में चरित्रहीनता वढ रही है। वर्णसकर सतान उत्पन्न की जा रही है। यज्ञ, दान, धर्म से श्रद्धा उठ रही हैं। नास्तिकता का वोल-वाला हैं।"

"जव लोग इतने दुःखी है तो विद्रोह क्यो नही करते ?"

"आपने उनमे इतना साहस रहने दिया हो तव तो ? उनको सुख, आराम, विषय-भोग के जीवन में इतना डाला है कि उनमें विद्रोह करने को शक्ति ही नही रही।"

"तो यह भी मेरा दोष है कि मैंने उनको सुखी रखा है ?"

"सहस्रो वर्षो से देवलोक किसी युद्ध में सम्मिलित नही हुआ। परिणाम यह हुआ है कि वास्तविक क्षत्रिय जाति हमारे यहाँ नही रही। सव भीरु हो गये हैं। यह राजा का कर्त्तव्य है कि अपने राज्य को वृद्धि में यत्नशील रहे।"

"मैंने तो जो कुछ किया था प्रजा के सुख, शान्ति और जीवन के लिये किया था। मैंने अपने जीवन में एक ही ढंग से युद्ध किया है। प्रकृति के विघटन से प्राप्त शक्ति द्वारा विध्वस करके। यह मैं अव

मिला और औपचारिक बातचीत के पश्चात् राजनीति पर वार्त्तालाप चल पडी। नारद ने बताया—"मेरा आने का तात्पर्य केवल यह है कि देवलोक के उद्धार का प्रवन्ध करूँ।"

"हमें उसकी पहिले ही चिन्ता है। हमें नित्य ये समाचार मिल रहे हैं कि गान्धार का शासक काकूष ब्रह्मावर्त पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा है। मैंने लवपुर में ब्रह्मावर्त के महाराज चन्द्रसेन को सदेश भेजा था कि पूर्व इसके कि वह आक्रमण करे, हमको पुरुषपुर पर अधिकार कर लेना चाहिये। मेरा इसमें प्रयोजन यह था कि यदि हम उस नगर पर अधिकार कर लें तो देवलोक में नहुष की स्थिति दुर्बल हो जावेगी, परन्तु चन्द्रसेन का उत्तर आया कि उसकी काकूष से मैत्री है। उसको उस ओर से कोई भय नही। इसके विपरीत हमारी सेना में वृद्धि देख उसको काश्मीर से भय है।"

"महामूर्ख है वह।"

"चन्द्रवशियों का भाग्य प्रवल प्रतीत होता है। मैंने अपने गुप्तचर भेजे हुए हैं और वे नित्य का समाचार भेज रहे है। उन समाचारो के आधार पर मैं यह समझता हूँ कि किसी भी दिन काकूष की सेना लवपुर पर अधिकार कर लेगी। उस समय काश्मीर की परिस्थिति अति भयकर हो जावेगी।"

"मैं यह निश्चय नही कर सका कि किस ओर पहिले ध्यान दूं। गान्धार और ेवलोक दोनो को एकदम विजय करना सुगम नही, परन्तु किस ओर से शुरू करूँ इसी का निर्णय नही कर सका।"

"जहाँ देवलोक का सम्बन्ध है, मेरा तो यह विचार है कि एक सहस्र के लगभग मनचले युवक वहाँ चले जाने चाहियें, जो गान्धारो से स्थान-स्थान पर झगडा करें। इससे देवताओ के मन में बैठा हुआ आतक लुप्त हो जावेगा। जब देवताओ को पता चलेगा कि गान्धार

भी पीटे जा सकते हैं। तब वे लोग भी विद्रोह करने पर तैयार हो जावेंगे। अभी तो देवलोक में इतना ही कुछ करना चाहिये।"

इस पर विक्रम ने कश्मीर में सैनिक तैयारी का वर्णन कर दिया। उसने बताया—"हमारी सेना पिछले वर्ष बीस सहस्र थी। यह काश्मीर की रक्षा के लिये पर्याप्त थी, परन्तु किसी विदेश पर आक्रमण करने के लिये पर्याप्त न थी। मैंने एक वर्ष में सेना एक लक्ष कर दी है। धनुर्धारी, खड्गधारी, अश्वारोही और हाथियो पर चढ लड़ने वाले दल तैयार किये हैं। बीस नये दुर्ग बनाये हैं और यह सेना नित्य युद्ध का अभ्यास करती रहती है। एक क्षण की सूचना पा अब वह धावा बोल सकती है। इस पर भी मैं समझता हूँ कि अभी तैयारी और होनी चाहिये।"

"देवलोक में तो विद्रोह का समय अभी दो वर्ष पश्चात् आवेगा। अभी वहाँ की जनता, जब विद्रोह की बात कहता हूँ तो, बितर्-बितर् मुँह देखने लगती है। छ मास के अनन्तर प्रयत्न करने पर एक आपके अंगरक्षक भास्कर की पत्नी ही केवल तैयार हो सकी थी। वह वीरांगना है। अपने पति को जोखम के काम पर भेजने को तैयार हो गयी थी।"

"भास्कर बहुत ही सीधा-सादा और काम का व्यक्ति है। एक बैल की भाँति जिससे कहो भिड जाने को तैयार रहता है। एक सहस्र की भीड को अकेला लाठी से हाँक सकता है।"

"मैं प्रसन्न हूँ कि वह आपके यहाँ काम पर लग गया है। मैं इनकी स्त्री को पुनः देवलोक में भेज देना चाहता हूँ।"

(२)

विक्रम से बात कर नारद मलिंद से मिलने उनके घर जा पहुँचा। भास्कर वहाँ बैठा था। मलिंद नारद को देख उठे और प्रणाम कर हँस

गान्धारों से झगडा करेंगे। इससे देवताओ के मन में उत्साह उत्पन्न होगा और सब मिलकर गान्धारो को देवलोक से भगा देंगे।"

"मुझको देवताओ से कुछ भी आशा नहीं। इन निर्लज्जो के सम्मुख इनकी लडकियां और स्त्रियां छिन रही थी और वे बितर्-बितर् मुख देख रहे थे। इस अनाचार का वे मौखिक विरोध भी नहीं कर सके।"

"वह समय व्यतीत हो गया देवता! अब तो ऐसे देवता उत्पन्न हो गये हैं, जो अपनी सती-साध्वी स्त्री पर झूठा सदेह कर झगडा करने पर तैयार हो जाते हैं। ये अच्छे लक्षण प्रतीत होते हैं।"

मलिन्द नारद का कटाक्ष सुनकर हँस पडी। भास्कर की बुद्धि में बात धीरे-धीरे समाती थी। जब उसको समझ आई तो कहने लगा—"तो देवमुनि! यह मेरे विषय में कहते हो?"

"नही, मैं तो उस देवता के विषय में कह रहा हूं जो एक नवयुवती से विवाह करने की इच्छा करता हुआ भी अपनी स्त्री पर सदेह करता रहता है।"

"तो वह मैं ही हूँ . .. ..।"

नारद ने उसको बात नही करने दी। उसने मलिन्द से पूछ लिया—"आशा और कृपा कहां हैं?"

"उनका विवाह हो गया है। वे दोनो अपने-अपने पति के घर पर हैं। यदि आपने कल आना हो तो उनको बुला छोडूंगी।"

"अभी मैं इस नगर में कुछ दिन रहूँगा। मैंने अभी तुमसे भी कई बातें करनी है।"

इस पर भास्कर ने कहा—"ठीक है। आप आ सकते हैं। पर मैं भी उपस्थित रहूँगा।"

मलिन्द और नारद दोनो हँसने लगे। जब नारद चला गया तो

भास्कर ने मलिन्द से कहा—"तुम मेरी हँसी उड़ाती हो, तुमको लज्जा नही आती ?"

"देवता ? इस वृद्धावस्था में आपके मन में ईर्ष्या शोभा नही देती। इससे मेरा अपमान होता है।"

भास्कर ने कहा—"इस घुमक्कड देवता पर मुझको कभी भी विश्वास नहीं हुआ।"

"पर इस समय यही एक है जो जान हथेली पर रख देवलोक का उद्धार करने के यत्न में लगा हुआ है। शेष सब भाग गये हैं।

"मैं इतना जानती हूँ कि आपको नहुष की सेवा करने की प्रेरणा इन्ही के कहने से मैंने दी थी। और जो कार्य आपने किया था वह सबसे प्रशंसा पा रहा है।"

नारद अभी चक्रधरपुर में ही था, जब समाचार आया कि काकूप की सेना ने सिंध नदी पार कर ब्रह्मावर्त पर आक्रमण कर दिया है। चन्द्रसेन ने काकूप पर विश्वास कर अपनी सेना इधर-उधर बिखेर रखी थी। बहुत सी सेना काश्मीर की सीमा पर थी। इस कारण काकूप को लवपुर के मार्ग में कोई बाधा नहीं हुई।

समाचार के आने पर महाराज देवनाम के राजभवन में एक गोष्ठी हुई। उस गोष्ठी में सेनापति, नारद, देवनाम और सब सेनानायक, जो वहाँ उपस्थित थे, बुलाये गये। इस नयी परिस्थिति में काश्मीर के लिये भय पर विचार हुआ। साथ ही इस बात पर भी विचार हुआ कि इस भय का कैसे निवारण किया जाय।

नारद और विक्रम दोनो इस बात पर सहमत थे कि चन्द्रसेन को काकूप से लड़ने दिया जावे। वह निस्सन्देह पराजित होगा। उसकी पराजय के तुरन्त पीछे काकूप पर, जब वह अभी लवपुर में ही हो, आक्रमण कर दिया जावे। उस समय काकूप का राज्य अभी सुदृढ़

नहीं हो सकेगा और उसको पराजय देनी सुगम होगी।

दूसरी ओर देवलोक में नारद की योजना-अनुसार एक सहस्र सैनिक साधारण नागरिकों और व्यापारियों के रूप में वहाँ भेजने का निश्चय हुआ। यह निश्चय किया गया कि वे वहाँ एक सुदृढ़ संगठन तैयार करें, जिससे वहाँ विद्रोह किया जा सके।

विक्रम ने काश्मीरसेना को ब्रह्मावर्त की सीमा की ओर प्रस्थित कर दिया। सेना के एक सहस्र सुभटों को देवलोक जाने की आज्ञा कर दी। देवयानी ने, जबसे नहुष ने उसके अपहरण का प्रयत्न किया था, अपने मन में यह धारणा बना रखी थी कि उसके सर्वनाश में वह अपना हाथ बटायेगी। जब देवलोक में विद्रोह की योजना बन गई तो उसने अपने पति से स्वयं देवलोक में जाकर विद्रोह के संचालन करने की अनुमति माँगी।

विक्रम देवयानी की माँग से विस्मय में उसका मुख देखने लगा। अन्त में उसने कहा—"देवी! मैं स्वीकृति देना वाला कौन हूँ? मैं तुम को स्वीकृति दूं और तुम मुझको स्वीकृत दो, यह भला कहाँ का नियम है। हमारे सम्मुख म्लेच्छों से काश्मीर की रक्षा का प्रश्न है। इसके लिये जो कुछ भी हमसे हो सके हमको करना चाहिये। तुम्हारे विषय में एक बात विचारणीय अवश्य है और वह है तुम्हारे पकड़े जाने का भय। उस समय अनर्थ हो जावेगा।"

"यदि उस पापी ने सती पर हाथ उठाया तो विश्वास जानिये श्रीमान्! वह भस्म हो जावेगा। आपको इस बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिये।"

बात निश्चय हो गयी। अगले ही दिन देवयानी ने अपना निश्चय नारद से बता दिया। वह भी इस पर आश्चर्य करने लगा। उसने समझाया—"देवयानी बेटी! यह कार्य अति भयावह है।"

"देवर्षि ! मुझको भय नही लगता। वे ब्रह्मावर्त जा रहे हैं। मै समझती हूँ कि वे मुझसे अधिक भय मोल ले रहे हैं ।"

जब देवयानी नही मानी तो नारद ने अपनी योजना बनाई और एक दल सैनिको का और उनके साथ एक दल स्त्रियो का तुरन्त भेजने, का निश्चय कर लिया । जब सैनिको को और उनके साथ जाने वाली स्त्रियो को यह पता चला कि राजकुमारी देवयानी उनके साथ जा रही हैं तो सबके हृदय साहस से भर गये। सब राजकुमारी की जयजयकार करने लगे।

(४)

जबसे नारद चक्रधरपुर में आया था वह नित्य सुमति से मिलने जाया करता था। यद्यपि निश्चय-सा ही था कि सुमति नारद से विवाह करने पर तैयार हो जावेगी, इस पर भी उसने अभी तक अन्तिम निर्णय नही सुनाया था। जब देवयानी ने देवलोक जाने का विचार प्रकट किया, तब सुमति उससे मिलने आयी। सुमति को प्रसन्नवदन देख देवयानी ने पूछा - "सखि ! क्या मै अब बधाई दूँ तुमको ?"

"बधाई में कारण तो है, परन्तु सखि ! जिस बात के लिये तुम कहती हो उसके लिये तो जब भी होगा बधाई का पात्र तुम्हारे पिता तुल्य देवर्षि नारद होगे। इस समय तो मै तुम्हारे साथ देवलोक चलने के लिये तैयार होकर आई हूँ ।"

"देवलोक को ? तुम ?" देवयानी मुख देखती रह गई।

"देवर्षि ने मुझको जब तुम्हारे वहाँ जाने के विषय में बताया तो मैंने भी तुम्हारे साथ जाने की इच्छा प्रकट की। उन्होने सहर्ष स्वीकार कर लिया है। पिता जी से भी स्वीकृति ले ली है ।"

"जानती हो वहाँ क्या करना पडेगा ?"

"देवर्षि ने बताया है। मै समझ गई हूँ और फिर तुम भी तो साथ हो ?"

देवयानी को एक साथिन और मिल गयी। इससे उसको बहुत प्रसन्नता हुई। देवलोक चलने की तैयारी होने लगी। सबसे पूर्व कुछ लोग भेजे गये जो अमरावती में गये और दुकानें करने लगे। उन्होंने वहाँ काश्मीर के अन्न-अनाज, फल-वस्त्र इत्यादि की दुकानें खोल दी। देवलोक में तो यह एक नई बात थी। अभी तक वहाँ दुकानों का अर्थ वितरण-केन्द्र होता था। अन्न, वस्त्र, फल-फूल के गोदाम होते थे, जहाँ से लोग उनको आवश्यकतानुसार ले जाते थे। दाम देना नहीं पड़ता था।

वास्तव में ये दुकानें देवलोक के रहने वालो की आवश्यकतायें पूर्ण करनें के लिए नही खोली गयी थीं। ये विद्रोह करने के लिए काश्मीर से आने वालों में खाने-पीने का सामान बाँटने के लिये थीं। जनता को भ्रम में रखने के लिये कुछ माल बेचा भी जाता था। जब ये दुकानें अमरावती के भिन्न-भिन्न स्थानों पर खुल गयीं, तो दो-दो चार-चार कर सैनिक देवलोक में पहुँचने लगे। इस सब प्रबन्ध में कई मास लग गये।

नारद की माँग आई कि अब देवयानी और मलिन्द को आना चाहिए। देवयानी ने मलिन्द को बुला भेजा। जब वह आई तो उसने कहा—"देवर्षि जी ने कहा था कि आप देवलोक में जाकर स्त्रियों में कार्य करेंगी। उसका अब समय आ गया है।"

"रानी जी!" मलिन्द ने कहा—"जब तक मेरे देवता यहाँ हैं, मैं जा नहीं सकती। उनको सदेह हो गया है कि देवर्षि नारद मुझसे प्रेम करते हैं। इस कारण वे मुझको अकेले देवलोक में जाने नहीं देंगे और वे स्वय वहाँ जा नहीं सकते। उनका शरीर उनको छुपकर रहने नहीं देगा। मेरा विचार है कि राजा जी जब उनको अपने पास ब्रह्मावर्त बुला लेंगे तब ही मैं देवलोक जा सकूँगी।"

देवयानी ने कुछ विचार कर कहा—"यह प्रबन्ध तो हो जावेगा। आप घर जाकर पहिले भास्कर जी के ब्रह्मावर्त जाने की तैयारी करिये, पीछे अपने देवलोक जाने की।"

देवयानी ने भास्कर को बुला भेजा। जब वह झुककर नमस्कार कर सीधा हुआ तो देवयानी ने कहा—"भास्कर देवता! एकब हुत आवश्यक कार्य आ पडा है। वह केवल आपके करने योग्य ही है।"

"आज्ञा करिये महारानी! सेवक उपस्थित है।"

"एक पत्र लेकर श्रीमान् जी के पास जाना है। मेरा निजी पत्र है। इस कारण साधारण सैनिको के हाथ भेज नही सकती। बताइये! आप कब जा सकते हैं?"

"इस बात के पूछने की आपको आवश्यकता क्यो पड़ी है? मैं तो सदैव आपकी सेवा के लिये तत्पर रहता हूँ।"

"तो ठीक है। मैंने समझा था कि युद्ध में जाने से आप संकोच करते है।"

"महारानी! मेरा अपमान न करिये। मुझको तो यह रोष था कि महाराज मुझको साथ लेकर क्यो नही गये?"

"वे समझते रहे थे कि देवी मलिन्द अपने देवता के युद्धक्षेत्र में जाने को पसन्द नही करेगी।"

"मलिन्द? महारानी! वे तो मेरे चलने में मिन्नतें मनाती रहती हैं। आप उससे पूछकर तो देखिए।"

"मैंने पूछा है! वे कहती थी कि देवता अब बूढ़े हो गए हैं। अब उतना परिश्रम नही कर सकते, जितना वे देवलोक में युवा-अवस्था में कर सकते थे।"

"वह मूर्ख है। मै अब भी पचास-साठ से अकेला लड़ सकता हूँ।"

"अच्छी बात है। मै आपके ले जाने के लिए पत्र लिखकर तैयार करती हूँ। आप प्रात काल यहाँ से चल देने के लिए तैयार हो जाइये।"

भास्कर घर पहुँचा तो मलिन्द को देख बोला—"लो, आशा की माँ ! प्रसन्न हो जाओ। मैं तो युद्धक्षेत्र में विक्रम जी के पास जा रहा हूँ।"

"सत्य ! तब तो ठीक नहीं हुआ। महाराज ने बुला भेजा है आपको क्या ?"

"नही, रानी देवयानी एक पत्र भेज रही हैं। प्रेम-भरा पत्र होगा। तभी मुझको स्वय जाने का आदेश दिया है।"

"अवश्य उनके स्वास्थ्य के विषय में होगा। यह तो भारी चिन्ता की बात है। कुछ कष्ट होगा तभी तो शीघ्र पत्र भेजने की बात हो रही है।"

"तुम जाकर पता करो न। दो बच्चो की माँ हो। तुमको उनकी सेवा करनी चाहिये।"

मलिन्द चुप रही। भास्कर अपने कपडे इत्यादि ठीक करने लगा। मलिन्द ने अपने पति का सामान तैयार करते हुए पूछा—"कहाँ जाना होगा आपको ?"

"सुना है, पहाडों से उतरकर मैदान में एक लक्ष सेना एकत्रित हो गई है और वहाँ से किसी भी समय आक्रमण बोल देने की आज्ञा होने वाली है। पैदल जाने में दस दिन लगेंगे। मैं दिनभर में बीस कोस सुगमता से चल सकता हूँ।"

"तब तो आप बीस दिन में उत्तर लेकर लौट आवेंगे। मैं यहाँ बैठी आपकी प्रतीक्षा करती रहूँगी।"

"हाँ, जब तक तुम्हारा घुमक्कड देवता नहीं आता।"

"जाने के समय तो हँसी न करो। शीघ्र लौटकर आइयेगा।"

देवयानी ने पत्र लिखा—"प्रीतम ! दासी देवयानी की चरणवंदना स्वीकार हो।

इस पत्र के लिखने में दो कारण है। एक तो मै चौथे मास में जा रही हूँ। आपकी देन की रक्षा में मैं देवलोक नही जा सकी और एक वर्ष तक नहीं जा सकूगी। इस पर भी वहां कार्य आरम्भ हो गया है। हमारी दूकानो पर देवताओं की भीड लगनें लगी है। वे चर्चा के अड्डे बन गये हैं। देवर्षि जी आजकल वहाँ पर हैं। मैं अवकाश पाते ही वहाँ जाना चाहूँगी।

"आप अपने कार्य का विवरण लिखते रहा करें। आपके पत्र पढकर मन को ढाढस बँधता रहता है।

"इस पत्र को भास्कर के हाथ भेजना, इस पत्र का दूसरा प्रयोजन है। देवर्षि का पत्र आया है कि मलिन्द की देवलोक में भारी आवश्यकता है और भास्कर देवता उसको जाने नही देते। इन कारण इस पत्र को उसके हाथ भेज रही हूँ। आप कृपया भास्कर को सेना में अथवा अपने साथ कुछ ऐसा कार्य दें कि वे दो वर्ष तक चक्रवरपुर लौट न सके। तब तक हम इधर का कार्य समाप्त कर सकेंगे। प्रणाम।"

अगले दिन भास्कर पत्र को अपनी जेब में सुरक्षित रखकर ब्रह्मावर्त की सीमा की ओर चल पडा। उसके मार्ग मे खाने के लिए एक बैल-गाडीभर अन्न साथ था।

दस दिन में वह सेना के शिविर में जा पहुँचा। पहलवान को आया देख वहाँ सेना में हलचल मच गई। उसको विक्रम के शिविर में पहुँचाया गया। विक्रम ने उसको देख चिन्ता में प्रश्न पूछा—"भास्कर देवता! कैसे आना हुआ है? सब कोई वहाँ स्वस्थ तो हैं? महाराज और महारानी जी ठीक हैं क्या? रानी देवयानी कैसी है?"

भास्कर ने विक्रम को चिन्तित देख आनन्द अनुभव करते हुए कहा—"महाराज! मै नही जानता। मुझको तो सोये हुए जगाकर पत्र दे विदा कर दिया गया है। आगे भगवान् जाने क्या बात है!"

भास्कर घर पहुँचा तो मलिन्द को देख बोला—"लो, आशा की माँ ! प्रसन्न हो जाओ। मैं तो युद्धक्षेत्र में विक्रम जी के पास जा रहा हूँ।"

"सत्य ! तब तो ठीक नही हुआ। महाराज ने बुला भेजा है आपको क्या ?"

"नही, रानी देवयानी एक पत्र भेज रही हैं। प्रेम-भरा पत्र होगा। तभी मुझको स्वय जाने का आदेश दिया है।"

"अवश्य उनके स्वास्थ्य के विषय में होगा। यह तो भारी चिन्ता की बात है। कुछ कष्ट होगा तभी तो शीघ्र पत्र भेजने की बात हो रही है।"

"तुम जाकर पता करो न। दो बच्चो की माँ हो। तुमको उनकी सेवा करनी चाहिये।"

मलिन्द चुप रही। भास्कर अपने कपड़े इत्यादि ठीक करने लगा। मलिन्द ने अपने पति का सामान तैयार करते हुए पूछा—"कहाँ जाना होगा आपको ?"

"सुना है, पहाड़ों से उतरकर मैदान में एक लक्ष सेना एकत्रित हो गई है और वहाँ से किसी भी समय आक्रमण बोल देने की आज्ञा होने वाली है। पैदल जाने में दस दिन लगेंगे। मैं दिनभर में बीस कोस सुगमता से चल सकता हूँ।"

"तब तो आप बीस दिन में उत्तर लेकर लौट आवेंगे। मैं यहाँ बैठी आपकी प्रतीक्षा करती रहूँगी।"

"हाँ, जब तक तुम्हारा घुमक्कड़ देवता नहीं आता।"

"जाने के समय तो हँसी न करो। शीघ्र लौटकर आइयेगा।"

देवयानी ने पत्र लिखा—"प्रीतम ! दासी देवयानी की चरणवंदना स्वीकार हो।

वेतन मिलना ही चाहिये। चाहे तो जीवन-सामग्री के रूप में दिया जाय और चाहे स्वर्णमुद्राओं के रूप में। जीवन-सामग्री की उपज देश में कम हो रही है। यह विदेश से मँगवानी पड़ेगी और उसके लिये धन की आवश्यकता पडेगी। देश के उत्तरी भाग में स्वर्ण मिलता है। उसकी निकासी पर प्रतिवन्ध लगाना पडेगा, परन्तु इससे काम नही चलेगा। वह स्वर्ण देशभर को खिलाने के लिये पर्याप्त नही होगा। पैदावार वढाने के लिये शक्तिप्रसारक यन्त्रों को सुचारु रूप से चलाने का प्रवन्ध करना होगा।

करण की स्त्री सुमन इस विषय में अपना पृथक् विचार रखती थी। अपने पति को चिन्ता में देख उसने अपना सुझाव उपस्थित कर दिया—"श्रीमान्, यहाँ रह सकने का केवल एक ही उपाय है। वह है, इन्द्र से मैत्री करना। पितामह ब्रह्मा ने ठीक ही कहा था कि इन्द्र को वापिस वुलाना चाहिये।"

"परन्तु तुम यह जानती हो कि इन्द्र नहुप के रहते यहाँ नही आयेगा और नहुष यहाँ से जावेगा नहीं। इस कारण तुम्हारा सुझाव कुछ अर्थ नही रखता।"

"यही तो मै निवेदन कर रही हूँ कि महाराज नहुप यहाँ रह नही सकेंगे। वे इस देश में राज्य करने के अयोग्य ही हैं। कभी-कभी अयोग्य लोग धोखा-धडी से अथवा पशुवल से अपना राज्य जमा लेते हैं, परन्तु यह वात चिरकाल तक नही चल सकती। अयोग्य को योग्य पुरुषों के लिये स्थान छोड़ना ही पडता है।"

सुमन के निरन्तर नहुप की निन्दा करने से करण को खीज आने लगी थी। इस पर भी उनके परस्पर सम्वन्ध में अन्तर नहीं आ रहा था। उनके दो सन्तानें हो चुकी थी और वह एक अटूट कड़ी थी। वड़ा

इतना कह उसने पत्र जेब से निकाल विक्रम के सामने रख दिया। विक्रम ने चिन्ता में पत्र खोला और पढ डाला। एक बार पढ़ा, फिर पढा और अन्त में भास्कर को कहा—"देवता! यह पत्र अत्यावश्यक है। तभी तुम्हें इधर आने का कष्ट दिया गया है। मैं तुम्हारा धन्यवाद करता हूँ। इसका उत्तर तैयार करने में कुछ दिन लगेंगे। अभी आप ठहरो, आप अभी नही जा सकते।"

(५)

एक दिन अमरावती में भारी हलचल मची। गान्धार-सैनिक बहुत बडी सख्या में नहुष के पास आये और कहने लगे—"हमको खाने को पर्याप्त नहीं मिलता और काश्मीर-व्यापारियो की दूकानें अन्न-अनाज से भरी हुई हैं। वे बिना मोल लिये देते कुछ नही और हमारे पास देने को है नही।"

नहुष ने करण को बुला भेजा और उसको इस समस्या का सुझाव ढूंढने को कहा। करण ने सैनिको से पूछा—"तुम इस विषय में क्या चाहते हो?"

"हम इन दूकानों को लूट लेना चाहते हैं।"

"इन दूकानो को लूटकर कितने दिन तक निर्वाह चल सकेगा? एक वार इन दूकानो के लुट जाने पर, वैसी फिर दोबारा नही खुलेंगी?"

"तो हम क्या करें?"

"हम आपको स्वर्णमुद्रा देंगे, जिनसे आप इन दूकानो से सामान क्रय कर सकेंगे।"

सैनिक तो प्रसन्न हो गये, परन्तु पचास सहस्र मुद्रा प्रतिमास देनी एक समस्या हो गयी। नहुष का कहना था कि इस प्रकार तो बीस मास में राज्यकोष रिक्त हो जावेगा। करण का कथन था कि सेना को तो

जितना तो है नही। इस कारण मेरी धारणा आप जैसी सुव्यवस्थित न हो सकनी स्वाभाविक ही है।

"देखिये, यह अब आपको पहिचानने लगी है। कितने ध्यान से आपको देख रही है।"

लडकी अपने पिता को देख रही थी। करण सुमन के उत्तर से जान गया कि वह वात आगे चलाना नहीं चाहती। उसने भी राज्य की वात मस्तिष्क से निकाल दी और लड़की को, जो सर्वथा माँ के साँचे में ढली थी, उठाकर मुख चूम उछालते हुए उससे वातें करने लगा। इस समय लडका पिता के समीप आ खड़ा हुआ और गोदी में चढने के लिये हाथ खड़े कर कूदने लगा। पिता को लडकी में ही लीन देख सुमन की हँसी निकल गयी।

लडका विस्मय में माँ का मुख देखन लगा। माँ ने कहा—"आओ माणिक्य, तुम मेरी गोदी में आओ।"

"नहीं, मैं वावा की गोदी में जाऊँगा।"

"नही, हम तुमको नही उठायेंगे।" करण ने लडकी का मुख चूमते हुए कहा—"यह परा है, तुम माणिक्य हो। यह विद्या है, तुम जड़ हो।"

वालक इन वातों को समझ नही सका। वालक को माँ समझती थी। उसने वालक को उठा छाती से लगा चूमते हुए कहा—"माणिक्य माँ के गले का हार है। परा पिता के मस्तिष्क की विभूति है।"

माणिक्य प्रसन्न हो वोला—"माँ ! परा को नहीं लोगी।"

"क्यो ?" सुमन ने मुस्कराते हुए पूछा।

"वावा मुझसे नहीं खेलते।"

"तुम खिलौने हो क्या, जो तुमसे खेलें ?"

"परा खिलौना है क्या ?"

लडका था और गोदी में लडकी थी। इनके अतिरिक्त घर की बातों में करण को हर प्रकार का आराम था।

जब-जब उनके भीतर राजनीति की बात होती थी सुमन देवलोक में गान्धारी की निन्दा करती थी। यह निन्दा जातिभेद के कारण नहीं होती थी। इसका आधार सदा आचरण की श्रेष्ठता अथवा निकृष्टता ही होता था। इस पर भी कभी करण इतना खीज जाता था कि वह उसको डाँट देता था। प्राय ऐसे अवसरो पर सुमन चुप कर जाती थी। डाँट-डपट कर करण पूछता, "कुछ समझ आई तुमको ?"

वह कह देती—"शायद स्त्री होने से मेरा अनुभव कम है। मैं घर के भीतर ही रहती हूँ। बाहर के ससार का ज्ञान नहीं रखती। इससे मेरी समझ आपसे कम प्रतीत होती है। आप अपनी समझ के अनुसार काम करिये।"

इसके पश्चात् सुमन अपने मन से उस बात को निकाल देती थी जैसे वह कभी हुई ही नही थी। इस दिन भी करण ने खीजकर कहा—"अच्छाई और बुराई समय और परिस्थिति के अनुकूल होती है। इस कारण, जो तुम अच्छा समझती हो वह भिन्न परिस्थिति में बुरा भी हो सकता है। महाराज ने जो कुछ किया था वह अपने विचार और परिस्थिति अनुसार किया था। इस कारण उन्होंने धोखा दिया था, हम कहने का अधिकार नही रखते।"

सुमन चुप कर गयी। उसने उत्तर न देकर बच्चे को, जो उसका दूध पी रहा था, उठा उससे खेलना आरम्भ कर दिया। करण इससे और भी चिढ गया और बोला, "मेरी बात का उत्तर दो सुमन !

"आपने कोई प्रश्न तो किया नहीं। आपने तो केवल यह कहा है कि महाराज को धोखा देने वाला कहना ठीक नहीं। इसमें उत्तर देने को कुछ नहीं। आपने अपनी सम्मति सुनाई है। मेरा अनुभव आप

"तो ऐसा करो कि तुम इन्द्र से मिलो और मैं इन्द्राणी से मिलता हूँ। बताओ तुम पहिले जावोगे या मैं पहिले जाऊँ ?"

"आपको यदि इन्द्र से आशा नहीं तो पहिले उसी को मिला जावे। मैं जाने के लिये तैयार हूँ, परन्तु आप मुझको कहाँ तक मान जाने की स्वीकृति देते है ?"

"सुना है इन्द्र के पास आग्नेय अस्त्र है। वह यहाँ महल में बना तैयार रखा है। मुझको वह अस्त्र काश्मीर-विजय के लिये मिल जावे तो मैं देवलोक छोड दूँ।"

"इस बात का उससे माना जाना अति कठिन है, इस पर यदि श्रीमान् मुझको आज्ञा देंगे तो मैं जाऊँगा और यत्न करूँगा।"

"जो बात वह कहे उसे सुनकर आना, पश्चात् उस पर विचार कर लेंगे।"

करण की कमल-सर दुर्ग जाने की तैयारी होने लगी। सुमन इसके लिए आवश्यक सामान बांध रही थी। इस बीच में करण ने उससे पूछा—"क्या समझती हो तुम, किसी बात की आशा करती हो तुम क्या ?"

"देवता अति शान्तिप्रिय लोग हैं। इन्द्र ने जीवनभर किसी पर आक्रमण नहीं किया। यदि ऐसे शातिप्रिय राजा से मैत्री की संधि नहीं हो सकी तो निश्चय कुछ बात है जो अनुचित की जा रही है।"

करण ने नहुष की शर्त सुनाई और पूछा—"इसको तुम क्या समझती हो ?"

"शर्त तो महापाप है। इन्द्र क्या, कोई साधारण बुद्धि वाला आदमी भी इसको नही मानेगा। काश्मीर के विजय करने में इन्द्र आपकी क्यो सहायता करे ?"

"देवलोक का राज्य पाने के लिए।"

"हाँ ! जैसे तुम्हारा लकडी का घोडा ! तुम वीर पुरुष हो। तुम सेना के नायक हो। तुम लोगो से खेलोगे, भला वे तुमसे क्या खेलेंगे ?"

"माँ ! मुझको तीर कमान ले दो ! मैं सेना का नायक बनूंगा।"

करण जब बाहर निकला तो विचार करने लगा। उसकी समझ में आ गया कि सुमन ठीक कहती है कि योग्य लोगो के साथ मैत्री से पार उतरा जा सकता है। फूल के साथ बैठा कीडा भी देवता के सिर चढ़ बैठता है। इस कारण पुष्प से मैत्री करने में लाभ ही होने की सभावना है। इस सबका परिणाम यह हुआ कि करण और नहुष में इस बात पर वार्त्तालाप चल पडा। उसने कहा—"महाराज ! इन्द्रादि से मैत्री किये बिना काम चलेगा नहीं।"

"पर मैं राज्य नही छोडूंगा।"

"राज्य आप किस लिये करना चाहते हैं ?"

"अपने को और अपने सजातियों को सुख-सुविधा पहुँचाने के लिये।"

"यदि राज्य छोडने पर ये दोनो बातें प्राप्त हो सकें तो ?"

"क्या मतलब तुम्हारा ?"

"मेरा मतलब महाराज ! स्पष्ट है। यहाँ रहना कठिन हो रहा है। यदि सम्मान-पूर्वक इन्द्र से मैत्री हो सके तो क्या हानि है ?"

"ये देवता नही मानेंगे।"

"इसलिये ही न कि गान्धारो ने देवताओ से बहुत बुरा व्यवहार किया है। हमको उसका प्रायश्चित करना चाहिये।"

"मैं तो एक बात जानता हूं कि इन्द्र से मेरी पटेगी नही। एक खोल में दो तलवारें नहीं समा सकती। हाँ ! इन्द्र की स्त्री शायद मान जावे।"

"यत्न क्यो न किया जावे ? हो सके तो दोनों से मिला जावे।"

"तो ऐसा करो कि तुम इन्द्र से मिलो और मैं इन्द्राणी से मिलता हूँ। बताओ तुम पहिले जावोगे या मैं पहिले जाऊँ ?"

"आपको यदि इन्द्र से आशा नहीं तो पहिले उसी को मिला जावे। मैं जाने के लिये तैयार हूँ, परन्तु आप मुझको कहाँ तक मान जाने की स्वीकृति देते हैं ?"

"सुना है इन्द्र के पास आग्नेय अस्त्र है। वह यहाँ महल में बना तैयार रखा है। मुझको वह अस्त्र काश्मीर-विजय के लिये मिल जावे तो मैं देवलोक छोड दूँ।"

"इस बात का उससे माना जाना अति कठिन है, इस पर यदि श्रीमान् मुझको आज्ञा देंगे तो मैं जाऊँगा और यत्न करूँगा।"

"जो बात वह कहे उसे सुनकर आना, पश्चात् उस पर विचार कर लेंगे।"

करण की कमल-सर दुर्ग जाने की तैयारी होने लगी। सुमन इसके लिए आवश्यक सामान बांध रही थी। इस बीच में करण नें उससे पूछा—"क्या समझती हो तुम, किसी बात की आशा करती हो तुम क्या ?"

"देवता अति शान्तिप्रिय लोग हैं। इन्द्र ने जीवनभर किसी पर आक्रमण नहीं किया। यदि ऐसे शांतिप्रिय राजा से मैत्री की संधि नहीं हो सकी तो निश्चय कुछ बात है जो अनुचित की जा रही है।"

करण ने नहुष की शर्त सुनाई और पूछा—"इसको तुम क्या समझती हो ?"

"शर्त तो महापाप है। इन्द्र क्या, कोई साधारण बुद्धि वाला आदमी भी इसको नही मानेगा। काश्मीर के बिजय करने में इन्द्र आपकी क्यों सहायता करे ?"

"देवलोक का राज्य पाने के लिए।"

"वह तो उनको मिलेगा ही। महाराज नहुष राज्य चलाने में अयोग्य हैं। ब्रह्मा जी का कहना भूलिए नहीं, उन्होंने कहा था कि अभी समय है। कुछ काल पीछे वह नहीं रहेगा।"

"जो होना है सो हो जायेगा, परन्तु अपने मुख से अपमानजनक शर्त क्यों मानें ?"

"सत्य, न्याय और शान्ति के पथ को आप अपमानजनक मानते हैं ? काश्मीर जैसे निर्दोष राज्य पर आक्रमण करना और वहाँ की स्त्रियों की वह दशा कराना, जो यहाँ हुई है, आप मानयुक्त मानते हैं ? मैं तो आपको बुद्धिमान् और न्यायप्रिय व्यक्ति समझती थी।"

करण सुमन की युक्ति और सूझ का बहुत आदर करता था। इस कारण उसके उक्त कथन को सुन अपने आपको लज्जित अनुभव करने लगा। इस पर भी उसने कहा—"मैं अपने मन की बात नहीं कह रहा, सुमन ! मैं नहुष महाराज का दूत बनकर जा रहा हूँ। इस कारण उसकी युक्तियों को दुहरा रहा हूँ।"

"तो आप भी उसके साथ पाप के भागी बनने जा रहे हैं। मैं समझी थी कि मैं इन्द्र नहीं हूँ। आपकी पत्नी सुमन हूँ।"

"भला यह तो बताओ सुमन ! कि तुम इस मैत्री के लिए क्यों इतनी चिन्तित हो ?"

"इसलिए कि मैं आपके लिए चिन्तित हूँ। परमात्मा ने मेरी छोटी सी नौका को आपके बजरे के साथ बाँध दिया है। और मुझको भय है आपका बजरा उस आँधी में, जो वेग से चली आ रही है, कहीं उलट न जाये।"

सुमन ने माणिक्य और परा को, जो समीप ही खेल रहे थे, अपने पास खींचकर छाती से लगाते हुए कहा—"मेरी इस निधि के उस आँधी में उड़ जाने का भय है।" जब सुमन कह रही थी तो उसकी आँखें सजल हो उठी थीं। करण ने देखा और उसका आशय समझ गया।

(६)

कामभोज में कापिश से पचास कोस पश्चिम की ओर एक भील के मध्य में एक दुर्ग था। भील में कमल के फूल खिले रहते थे और यही कारण था कि दुर्ग कमल-सर दुर्ग कहाता था। यह दुर्ग नहुपके परिवार की सम्पत्ति था। इस कारण जब इन्द्र को बन्दी बनाकर रखने का विचार हुआ तो इस काम के लिए यही दुर्ग उचित समझा गया।

देवलोक की सीमा जहाँ काश्मीर के साथ लगती थी वहाँ कामभोज और गान्धार के साथ भी लगती थी। करण तीव्रगामी अश्व पर सवार हो कामभोज की सीमा में प्रवेश कर कमल-सर दुर्ग जा पहुँचा। नहुप की आज्ञा से उसको इन्द्र से मिलने की स्वीकृति मिल गयी।

इन्द्र एक सभ्य नवयुवक को अपने सम्मुख देख विस्मय में उसका मुख निहारने लगा। करण ने अपना परिचय दिया और बताया—"मैं आपकी मुक्ति के विषय में आपसे बातचीत करने आया हूँ।"

"मेरी मुक्ति की चिन्ता आज चार वर्ष पीछे क्यों हुई है? मैं चार वर्ष से यहाँ हूँ। क्या मुझको उस परिस्थिति का पहिले ज्ञान प्राप्त कर लेना ठीक नहीं? इससे बातचीत में क्या सुभीता न होगा?"

करण ने इन्द्र के सम्मुख बैठते हुए कहा—"आपका कहना ठीक है। प्रत्येक बात का कारण होता है और इसमें भी कारण है। मैं आपको सत्य बात बताता हूँ कि आपके भवन के ऊपर लगे यन्त्र बेकार हो रहे है। उनमें जीवित पारद समाप्त हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि समय पाकर वहाँ इतनी शीत बढ़ जावेगी कि रहना कठिन हो जावेगा। उन यन्त्रों को चालू रखने का ढग आप जानते हैं। इस कारण नहुप ने यह प्रस्ताव किया है कि आप यदि कुछ शर्तें मान जावें तो आपको ले जाकर देवलोक में सिंहासनासीन कर दूँ।"

"क्या शर्तें हैं वे?"

नहुष राज्यप्रवन्ध करेंगे। आप वहाँ की रक्षा का और जीवन सुलभ करने का प्रवन्ध करेंगे। सेना की शक्ति और आपकी विज्ञान-विद्या साथ मिल जावेंगी। परिणाम यह होगा कि दो वर्ष में कामभोज से लकापर्यन्त देवताओं का राज्य स्थापित हो जावेगा।"

"योजना तो बहुत अच्छी है" इन्द्र ने कहा—"परन्तु मैं पूछता हूँ कि इससे लाभ क्या होगा ?"

"हमारा एक विशाल राज्य स्थापित हो जावेगा।"

"ठीक। परन्तु इससे क्या आपके महाराज कुछ अधिक खाने-पहिरने अथवा अधिक भोग-विलास करने में सबल हो जावेंगे ? उनको अपने आपको क्या लाभ पहुँचेगा ?"

करण इस प्रश्न से इन्द्र का मुख देखता रह गया। इन्द्र ने समझा कि उसके कहने का अर्थ नहीं समझा गया। अतएव अपने कहने का अर्थ स्पष्ट करने के लिए उसने फिर कहा—"देखो करणदेव। मैं जब देवलोक में शासन करता था तब भी वही कुछ और उतना ही खाता-पहिनता था जितना अब खाता-पहिनता हूँ। इस समय मेरी स्वतन्त्रता छिन गई है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्तर नहीं पड़ा। इस प्रकार देवलोक के राज्य से बढ़कर पूर्ण आर्यावर्त का सम्राट् हो सकना नहुष के अपने लाभ की बात नहो है। निजी आवश्य-कताएँ तो साधारण से प्रयत्न से भी पूर्ण हो सकती है।"

"तो क्या निर्धन रहना ठीक है ?" करण ने मुस्कराकर पूछा।

"नहीं। परन्तु एक सीमा से अधिक सचय करना भी किसी प्रकार ठीक नही। आपके नहुष महाराज को देवलोक का राज्य प्राप्त हुआ है। अब और अधिक प्राप्त करने से कुछ भी लाभ नही।"

"लाभ तो है श्रीमान्। देवलोक दासता से छूट जायेंगे। आप स्वतन्त्र होगे और देवता सुखी होगे।"

"आपका कहना एक अंश में तो ठीक है, परन्तु जहाँ वीस लाख देवता सुखी होगें वहाँ तीस कोटि आर्य दुःखसागर में ढकेल दिये जावेंगे। मुझको तो यह युक्ति पसन्द नहीं आयी। मेरा देवताओ से प्रेम है, परन्तु दूसरो से द्वेष नही।"

"तो फिर आप ही कोई योजना बतावें।"

"मेरी योजना तो सरल है। यह दुर्ग और आस-पास का देश अति सुन्दर है। यहाँ का जल-वायु स्वास्थ्य-प्रद है। इस कारण यदि नहुष राज्य छोड़कर यहाँ आ जावे तो मैं उसको एक लक्ष रजत प्रतिवर्ष खाने-पहिरने के लिये देता रहूँगा। इसके अतिरिक्त और कुछ नही।"

"यह बात शायद नहुष नही मानेंगे। आपको यह स्मरण कर लेना चाहिए कि अब तक दोनों जातियो का अर्थात् देवताओ का और गान्धारो का समन्वय हो चुका है। परस्पर विवाह हो चुके है। बच्चे भी उत्पन्न हो गये हैं। इस परिस्थिति में क्या यह अच्छा नही होगा कि दोनो जातियाँ मिलकर राज्य का संचालन करें।"

इन्द्र ने भृकुटि चढाकर कहा—"यह सम्भव नही है। नहुष ने जो विश्वासघात किया है, उसके कारण वह मेरे रहते हुए जीवित नही रह सकता।"

"और गान्धारो की देवता-स्त्रियो का क्या होगा?"

"इस समस्या को मैं वहाँ पहुच सुलझा लूँगा। नहुष का इससे कोई सम्बन्ध नही है।"

"इससे तो यह सिद्ध हुआ कि आप इस समस्या को शान्तिमय ढंग से सुलझाने के पक्ष में प्रतीत नही होते।"

"देखिये महानुभाव! यह प्रश्न मेरा उत्पन्न किया हुआ नही। मैं आक्रमण करने वाला नहीं। मैं विश्वासघात करने वाला नहीं। मेरी सम्मति में जिसने यह प्रश्न उत्पन्न किया है, उसको ही तो इसको सुलझाना चाहिये। जिससे अनियमित अनधिकार चेष्टा हो गई है

उसकी क्षतिपूर्ति भी वही कर सकता है। यह नहुष के अपने देश में लौट जाने से ही सम्भव हो सकेगा। जब ऐसा वह कर ले तो मैं अपनी थोड़ी-सी भूल, जिसका सम्बन्ध मेरे प्रमाद से है, का दंड भोगने के लिए एक लक्ष रजत देने के लिए तैयार हूँ।"

करण मन में विचार करने लगा कि उस समय की परिस्थिति में इन्द्र ने ठीक ही किया है कि जो उच्छृंखल व्यवहार गान्धारों ने देवताओं के साथ किया है उसका प्रतिकार उसने नहीं माँगा। इस पर भी उसने कहा—"श्रीमान्! आपके कथन में मैं तथ्य मानता हूँ। युक्ति की दृष्टि से आपकी बात ठीक है परन्तु राजनीति में तो परिस्थितियाँ ही किसी बात के औचित्य अथवा अनौचित्य का निर्णय करती हैं। परिस्थिति यह है कि देवलोक में राज्य नहुष का है। आप उसके बंदी हैं। इस अस्वाभाविक अवस्था में आपको भी कुछ अस्वाभाविक कार्य करने पड़ेंगे। इससे कोई अनर्थ नहीं हो जावेगा। इस कारण मैंने जो मार्ग आपको सुझाया है वह ठीक न होते हुए भी वर्तमान परिस्थिति में स्वीकार करने के योग्य है।"

इन्द्र करण द्वारा ऐसी वस्तुस्थिति उपस्थित करने के ढंग पर हँस पड़ा। उसने कहा—"आपके बात करने के ढंग पर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। इन गान्धारों में आप जैसी योग्यता के व्यक्ति का होना एक चमत्कार ही है। इस पर भी योग्यता मिथ्या पक्ष लेकर सफल नहीं हो सकती।

"वास्तविक बात इसके विपरीत है। नहुष ने धोखा देकर देवलोक का राज्य प्राप्त किया है। धोखा देने की योग्यता से कोई राज्य करने की सामर्थ्य पा जाता है यह मानने की बात नहीं। शायद वह अपने में यह योग्यता मानता है, परन्तु उसका यह भ्रम दूर हो रहा प्रतीत होता है। यदि मिथ्या मानापमान की भावना छोड़ वह राज्य को, जिसके कि वह सर्वथा अयोग्य है, उचित अधिकारी को दे दे तो बात सुलझ गई समझनी चाहिए और यदि वह इस मान के मद में अन-

धिकार रूप से इस स्थान पर अधिकार किए रहा तो प्रकृति उसको उस स्थान से स्वय च्युत कर देगी। उस समय वह मनुष्य की भाँति दया-भाव नही दिखा सकेगी। तब क्या होगा, कहना कठिन है।"

"इस पर भी आप कुछ निश्चयात्मक बात, जो उस ओर से स्वीकार करने योग्य हो, बतायें तो मैं और यत्न करना चाहूँगा।"

"यदि नहुष देवलोक में सब कुछ भली भाँति छोड चला जावे तो मैं एक लक्ष रजत तिवर्ष मैत्री का मूल्य देने को तैयार हूँ।"

करण यद्यपि अपनी बात में सफल नही आ था तो भी एक युक्तियुक्त प्रस्ताव लेकर अमरावती लौट आया।

(७)

दूसरी ओर नहुष ने इन्द्राणी से मिलने का यत्न किया। नहुष का विचार था कि इन्द्र राजा है। वह उसके साथ मिलकर राज्य करना पसन्द नही करेगा, परन्तु शची एक स्त्री होने के नाते एक पुरुष के साथ राज्य भोगने की लालसा में उसे मान जावेगी। स्त्रियाँ प्राय: पुरुषो के साथ मिलकर ससारसुख भोगती है। इस कारण उसने इन्द्राणी से स्वय मिलकर बातचीत करने का निश्चय कर लिया।

इन्द्राणी काश्मीर में रहती थी। इस कारण वह वहाँ राजसी ठाटबाठ मे नही जा सकता था। अतएव उसने एक रत्न बेचने वाले का रूप धारण किया और इस मायावी रूप में सीमा पार कर उस गांव में जा पहुँचा, जहाँ शची का निवास था।

शची की रक्षा के निए काश्मीर राज्य की ओर से रक्षक नियुक्त थे। वे दिन-रात उनकी देख-भाल करते थे। शची के साथ दो सेवि-काएँ रहती थी। धीरे-धीरे शची का वहाँ रहना विख्यात होता जाता था और कपडा, आभूषण इत्यादि बेचने वाले वहाँ आने लगे थे। जब कोई व्यापारी आता तो शची भवन के आँगन में आकर उससे

बात करती थी और उसका सामान देखती थी ।

नहुष गाँव में जौहरी के रूप में पहुँचा । सबसे पहिले सैनिकों ने उससे पूछ-ताछ की । वहाँ से प्रवेश पा वह गाँव में पहुँचा । गाँव के एक मन्दिर में रहने का प्रबन्ध कर उसने इन्द्राणी के पास सूचना भेजी । प्रतिहार ने सेविका से कहा और सेविका ने महारानी से स्वीकृति लेकर जौहरी को आँगन में ले जाकर बैठा दिया ।

शची ने जौहरी को देखा तो उसको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे उसको पहिले कही देखा है । वह उसको देखती हुई स्मरण करने लगी । नहुष उसको आया देख उसके सम्मान में उठ खड़ा हुआ और उसने झुककर प्रणाम किया । इन्द्राणी अभी तक स्मरण नहीं कर सकी कि कहाँ उसने उसको देखा था.। यही सोचती हुई वह बैठ गई । नहुष उसके सौन्दर्य को देख स्तमित रह गया । उसने शची को पहिले भी देखा था परन्तु बहुत दूर से, इस कारण वह जो कुछ अब देख सका था वह पहिले अनुभव नही कर सका था । इन्द्राणी बैठ गई । इस पर भी नहुष एक टक उसके मुख की शोभा निहारता रहा । इन्द्राणी ने उसको खोया-खोया पा उससे पूछा—"जौहरी महोदय ! बैठिएगा नही ?"

इससे जौहरी की सज्ञा लौटी और उसने अपने मन की अवस्था को छुपाने के लिये पुनः नमस्कार कर कहा—"मैं आपका धन्यवाद करता हूँ कि आपनें मुझको सेवा करने का अवसर दिया है ।"

"हाँ ! तो आप क्या लाये हैं दिखानें के लिये ?"

नहुष नें अनेको सुन्दर स्त्रियों को देखा था । उसने देवयानी को भी देखा था । इन्द्राणी को इतने समीप से देखकर उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि प्रकृति ने कदाचित् सौन्दर्य के विषय में यह अन्तिम वस्तु निर्माण की है । इसके पश्चात् और अधिक सुन्दर स्त्री का निर्माण सभव नहीं रहा । बहुत यत्न से नहुष ने अपनें को वश में कर कहा—

"मैं लकाद्वीप का रहने वाला हूँ। इस पर भी संसारभर में घूमा हूँ। मेरा कार्य ही है कि आप जैसी श्रीमतियो को आभूषणो से अलकृत करता रहूँ। । सुना था कि नहुप ने देवलोक में अपना राज्य स्थापित किया है और वह सुन्दर रत्नो का खरीदार है। सो उधर जाते हुए मार्ग में श्रीमती के निवासस्थान का पता चला। इससे इच्छा हुई कि आपको भी कुछ सुन्दर वस्तुएँ, जो मेरे डिब्बे में है, दिखाऊँ। शायद कुछ सेवा आपकी भी कर सकूँ।"

इन्द्राणी ने मुस्कराकर कहा—"मुझे ऐसा आभास होता है जैसे मैंने कभी आपको देखा हो, याद नही पडता कि कब देखा है और और कहाँ देखा है।"

"आपने अवश्य देखा है"—नहुप ने भयभीत हो बात बनाते हुए कहा—"मैं एक वार पहिले भी देवलोक में आया था और श्रीमान् इन्द्र जी की सेवा में उपस्थित हुआ था।"

इन्द्राणी ने बात का अन्त करने के लिये कहा—"तो दिखाइये आप क्या लाये हैं।"

नहुप ने अपना डिब्बा खोला और उसमें से पहिले ही दो पत्थर दिखाये। वास्तव में वे बहुत बडे और बढिया थे। दो समान हीरे एक ही प्रकार गुलाबी आभा लिये नहुप ने शची के सामने चौकी पर रख दिये। शची इनको देख मुग्ध हो गई। उसने इतने बड़े-बडे हीरे पहिले कभी नहीं देखे थे। उसने उनको उठाकर प्रकाश की ओर कर देखा और पसन्द किया। नहुप उसके मुख पर प्रसन्नता के चिह्न देख समझ गया कि वे पत्थर के टुकडे पसन्द में आ गये हैं। इस पर उसने कहा—"ये दोनो कर्णफूलो के लिये बहुत उपयुक्त होगें। इन से प्रति-बिम्बित प्रकाश अपनी गुलाबी आभा लिये जब कपोलो पर पड़ेगा, तो मुख की ऐसी छटा होगी कि यह संसार में बड़े-बडे राजा-महाराजाओ के मन डुला देगी।"

इन्द्राणी ने मुस्कराते हुए उन हीरो को सामने चौकी पर रख दिया और कहा—"तब तो इनको खरीदना नही चाहिये क्योकि ये भले-चगे मनुष्यो के मनो को डुला देने की शक्ति रखते हैं।"

"परन्तु महारानी जी ! इसमें बुराई क्या है ? आभूषणो का यही तो उद्देश्य होता है।"

"नही, यह नही ! वास्तव में सौन्दर्य का प्रयोजन तो मन को स्थिर कर भगवान में लीन करना है ! यदि कोई वस्तु ऐसी छटा उत्पन्न करने की योग्यता रखती है जो मन को डाँवाडोल कर दे, तब तो वह छटा सौन्दर्य का विकृत रूप होगी। मुझे ऐसी छटा नही चाहिये और ऐसी छटा उत्पन्न करने वाले आभूषण भी नही चाहिये।"

नहुष इस मीमासा को नहीं समझ सका। उसके विचार में सौन्दर्य विलास की वस्तु थी। स्त्री में सौन्दर्य वासना की तथा भोग की वस्तु है, इत्यादि। वह स्वप्न में भी यह विचार नहीं कर सकता था कि सौन्दर्य मन को स्थिर कर भगवान की ओर प्रेरित कर सकता है। वह, जब इन्द्राणी कुछ सोच रही थी, उसके मुख की शोभा को देख रहा था। वह मन में विचार कर रहा था कि अभी तक तो वह देवलोक की छटकन का ही भोग करता रहा है। वहाँ का प्रसाद तो उसके सम्मुख आया ही नही। जिस माता-पिता ने इन्द्राणी को जन्म दिया है वे क्या ऐसी और विभूति उत्पन्न नहीं कर सके ? क्या अद्भुत मस्तक है ! चर्म की आभा कितनी आकर्षक है ! ओज कितना मनमोहक है ! आँखो में क्या चमत्कार है ?

नहुष अभी यह सोच ही रहा था कि शची ने कहा—"तो आपके पास और कोई अच्छी वस्तु नहीं ?"

'बहुत हैं। आपको ये हीरे पसन्द हैं। इनका पसन्द करने वाला वास्तव में एक श्रेष्ठ और उत्तम विचार रखने वाला व्यक्ति हो सकता

है। अपनी पसन्द से मनुष्य की उच्च शिक्षा तथा दीक्षा का ज्ञान होता है। इस करण मेरी प्रार्थना है कि आपके द्वारा ये ही प्राप्त करने योग्य हैं।"

"क्या दाम है इनका ?"

वे दोनो पत्थर अब भी सामने चौकी पर रखे थे। उनमें से निकल रहा प्रकाश शची के मुख पर पडकर उसके ओज को द्विगुणित कर रहा था। नहुष उसको देख-देख कर मोहित होता जाता था। अतएव दाम पूछे जाने पर उसने विचारकर कहा—"दाम तो इनका बहुत है, परन्तु यदि आप इनको लेना चाहें तो मैं आपको ये भेंट कर सकता हूं।"

"मै भेंट स्वीकार नही कर सकती। आप दाम बताइये।"

"वास्तव में इनको देवलोक के अधिपति नहुष की पटरानी के लिये ले जा रहा था। परन्तु जब आपने इनको पसन्द कर लिया है, तो ये आपको ही देना चाहता हूँ। आपसे वह दाम तो मांग नही सकता, जो वहाँ से पाने की आशा करता था। इससे इनको चरणों में भेंटस्वरूप स्वीकार करिये।"

'मै दाम दिये बिना इनको लेना नही चाहती।"

"तो दाम दे दीजियेगा जब आप पुनः दे सकने की स्थिति में होगी। भगवान् करे कि आप शीघ्र ही अपना उचित आसन ग्रहण करें। वह आसन ग्रहण करने पर आपसे इसका दाम प्राप्त कर लूंगा।"

"जौहरी महाशय ? एक मिथ्या आशा में इन मूल्यवान हीरों को यहाँ मत छोड जाना। यदि आप समझते है कि इनका खरीदना मेरे वश की बात नही है तो कोई हलके दाम की वस्तु दिखाओ।"

"आप रुष्ट हो गयी हैं क्या ? मैंने अपनी समझ से कोई ऐसी बात नहीं कही जिस पर आपको क्रोध करने की आवश्यकता हो। मैंने तो

बात भी कह दी । उसने बताया—"इन्द्र कहता है कि आपने धोखा देकर राज्य हथियाया है । धोखा देने की योग्यता से राज्य करने की योग्यता नहीं आ जाती । यदि आप झूठे मान के विचार से अनधिकार-युक्त स्थान पर बैठे रहे तो प्रकृति आपको उस स्थान से च्युत कर देगी । प्रकृति दया नहीं दिखाती ।"

करण की बात सुन लेने के उपरान्त नहुष ने अपनी यात्रा का विवरण सुनाया । इसके पश्चात् उसने कहा—"करण ! तुम मेरे परम मित्र हो । तुम्हें बताते मुझे झिझक नहीं कि मैं तो अब इस बात में ही आशा लगाये बैठा हूँ कि ससार की इस सवश्रेष्ठ सुन्दरी शची से विवाह कर लूं । इस विवाह से जहाँ मेरे मन की कामना पूरी होगी वहा राज्य पर आ रही आपत्ति भी दूर हो सकेगी ।"

"इसमें सदेह नही कि भूषण उसे अतीव प्रिय हैं । अपने पति के वियोगकाल में भी वह गले में मुक्ताहार पहिने थी । उसके हाथो में रत्नजडित कंकण थे । पाँवो में झाँझर भी थी । इस प्रकार भूषणो और शृगार से प्यार करने वाली स्त्री शीघ्र ही प्रलोभनो में फँसाई जा सकती है । मै तो इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि उसको प्राप्त करना मेरा जीवनलक्ष्य बन गया है । उसकी प्राप्ति के लिए इस राज्य को हाथ में रखना चाहिए । जब तक राज्य है तभी तक उसकी प्राप्ति की आशा की जा सकती है । इस कारण मैं राज्य नहीं छोडूंगा । तुम कुछ दिन विश्राम कर लो, तब मेरी कामनाओ की पूर्त्यर्थ वहाँ जाना । जो बात अपने मुख से नही कह सका, वह तुम अवश्य कह सकोगे ।"

करण नहुष की इस मानसिक अवस्था का अनुभव कर बहुत दुःखी हुआ । उसको इन्द्र की बातों में तथ्यता प्रतीत हुई । दूसरी ओर सुमन के कथन का भी उसके मन पर भारी प्रभाव पडा था । सुमन की उससे कही बात को—"कि उसकी छोटी-सी नौका, जिसमें उसका माणिक्य और परा भी हैं उसके बजरे से बँधी है, और आने वाली आँधी में न बजरा रहेगा न

वह नौका" स्मरण कर इसका हृदय प्रकंपित हो उठा ।

घर में बैठा-बैठा वह भविष्य का चिन्तन करता था । सुमन उसको इस प्रकार गम्भीर विचार में डूबा देख एक दिन पूछने लगी—"जबसे आप इन्द्र से मिल कर आये है, तब से ही आप चिन्तासागर में डूबे से रहते है । क्या बात है ?"

"बात तो स्पष्ट ही है । शक्तिप्रसारक यंत्र दुर्बल पडते जाते है । जीवित पारद कम हो गया है । अमरावती से दूर खेतो में बर्फ भी जमनी आरम्भ हो गयी है । परिणाम स्वरूप भोजन सामग्री और भी क्षीण हो गयी है । अब तो गान्धार भी निराहार रहने लगे हैं । इस अवस्था में भयकर परिणाम उत्पन्न होना सम्भव है । कोई मार्ग सूझ नहीं रहा । जो मार्ग ब्रह्मा ने बताया था, इन्द्र ने उससे भी सुलभ मार्ग बताया है, परन्तु महाराज ने तो उसको भी नही माना । एक लक्ष रजत प्रतिवर्ष इन्द्र ने देना स्वीकार किया है ।"

"आप एक बात क्यो नहीं करते । धीरे-धीरे गान्धार-सैनिको को अपने-अपने घरो को भेज दीजिए । जब उनकी संख्या कम हो जावेगी तो स्वाभाविक तौर पर खाने की कमी कुछ सीमा तक सुलभ हो जावेगी । दूसरी ओर देवताओ को भी काश्मीर इत्यादि स्थानो पर जाने की प्रेरणा कीजिए । इस प्रकार इस देश में केवल उनकी उतनी संख्या रह जावेगी जिसका यहाँ भरण-पोषण हो सकेगा ।"

सुमन का प्रस्ताव तो ठीक था परन्तु इसको कार्यरूप में परिणत करने के लिए बहुत चतुराई की आवश्यकता थी । उसकी योजना सफल नही हो सकी । जिन देवताओं को देवलोक छोड़कर जाने को कहता था वे उत्तर देते थे—"दूसरे देशो में बिना काम-धंधा किए पालन नही हो सकता । हम किसी भी काम के करने में योग्य नही । इस कारण

बात भी कह दी । उसने बताया—"इन्द्र कहता है कि आपने धोखा देकर राज्य हथियाया है । धोखा देने की योग्यता से राज्य करने की योग्यता नहीं आ जाती । यदि आप झूठे मान के विचार से अनधिकार-युक्त स्थान पर बैठे रहे तो प्रकृति आपको उस स्थान से च्युत कर देगी । प्रकृति क्षमा नही दिखाती ।"

करण की बात सुन लेने के उपरान्त नहुष ने अपनी यात्रा का विवरण सुनाया । इसके पश्चात् उसने कहा—"करण ! तुम मेरे परम मित्र हो । तुम्हें बताते मुझे झिझक नही कि मैं तो अब इस बात में ही आशा लगाये बैठा हूँ कि ससार की इस सवश्रेष्ठ सुन्दरी शची से विवाह कर लूं । इस विवाह से जहाँ मेरे मन की कामना पूरी होगी वहा राज्य पर आ रही आपत्ति भी दूर हो सकेगी ।"

"इसमें सदेह नहीं कि भूषण उसे अतीव प्रिय है । अपने पति के वियोगकाल में भी वह गले में मुक्ताहार पहिने थी । उसके हाथो में रत्नजडित कंकण थे । पाँवों में झाँझर भी थी । इस प्रकार भूषणो और शृंगार से प्यार करने वाली स्त्री शीघ्र ही प्रलोभनो में फँसाई जा सकती है । मैं तो इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि उसको प्राप्त करना मेरा जीवनलक्ष्य बन गया है । उसकी प्राप्ति के लिए इस राज्य को हाथ में रखना चाहिए । जब तक राज्य है तभी तक उसकी प्राप्ति की आशा की जा सकती है । इस कारण मैं राज्य नहीं छोडूंगा । तुम कुछ दिन विश्राम कर लो, तब मेरी कामनाओ की पूर्त्यर्थ वहाँ जाना । जो बात अपने मुख से नहीं कह सका, वह तुम अवश्य कह सकोगे ।"

करण नहुष की इस मानसिक अवस्था का अनुभव कर बहुत दु:खी हुआ । उसको इन्द्र की बातो में तथ्यता प्रतीत हुई । दूसरी ओर सुमन के कथन का भी उसके मन पर भारी प्रभाव पडा था । सुमन की उससे कही बात को—"कि उसकी छोटी-सी नौका, जिसमें उसका माणिक्य और परा भी है उसके बजरे से बँधी है, और आने वाली आँधी में न बजरा रहेगा न

वह नौका" स्मरण कर इसका हृदय प्रकंपित हो उठा।

घर में बैठा-बैठा वह भविष्य का चिन्तन करता था। सुमन उसको इस प्रकार गम्भीर विचार में डूबा देख एक दिन पूछने लगी—"जबसे आप इन्द्र से मिल कर आये हैं, तब से ही आप चिन्तासागर में डूबे से रहते हैं। क्या बात है?"

"बात तो स्पष्ट ही है। शक्तिप्रसारक यंत्र दुर्बल पड़ते जाते हैं। जीवित पारद कम हो गया है। अमरावती से दूर खेतो में बर्फ भी जमनी आरम्भ हो गयी है। परिणाम स्वरूप भोजन सामग्री और भी क्षीण हो गयी है। अब तो गान्धार भी निराहार रहने लगे हैं। इस अवस्था में भयकर परिणाम उत्पन्न होना सम्भव हैं। कोई मार्ग सूझ नहीं रहा। जो मार्ग ब्रह्मा ने बताया था, इन्द्र ने उनसे भी सुलभ मार्ग बताया है, परन्तु महाराज ने तो उसको भी नही माना। एक लक्ष रजत प्रतिवर्ष इन्द्र ने देना स्वीकार किया है।"

"आप एक बात क्यो नही करते। धीरे-धीरे गान्धार-सैनिकों को अपने-अपने घरो को भेज दीजिए। जब उनकी सख्या कम हो जावेगी तो स्वाभाविक तौर पर खाने की कमी कुछ सीमा तक सुलभ हो जावेगी। दूसरी ओर देवताओ को भी काश्मीर इत्यादि स्थानो पर जाने की प्रेरणा कीजिए। इस प्रकार इस देश में केवल उनकी उतनी सख्या रह जावेगी जिसका यहाँ भरण-पोषण हो सकेगा।"

सुमन का प्रस्ताव तो ठीक था परन्तु इसको कार्यरूप में परिणत करने के लिए बहुत चतुराई की आवश्यकता थी। उसकी योजना सफल नही हो सकी। जिन देवताओं को देवलोक छोड़कर जाने को कहता था वे उत्तर देते थे—"दूसरे देशो में बिना काम-धंधा किए पालन नहीं हो सकता। हम किसी भी काम के करने में योग्य नही। इस कारण

कहो कि यदि वह मेरी पत्नी बनना स्वीकार करे तो मैं अपना सर्वस्व उस पर न्यौछावर करने के लिए तैयार हूँ। तुम जाओ और इस दिशा में यत्न करो। इन्द्र का प्रस्ताव तो किसी समय भी माना जा सकता है। इससे पूर्व इस दिशा में यत्न करना ठीक रहेगा।"

सैनिकों के स्वर्ण मुद्राओ को रूप में वेतन मिलते हुए छ: मास से ऊपर हो चुके थे। इससे कोष रिक्त हो रहा था। इस पर भी काश्मीर से आकर माल का यहा वितरण होना कई बार विद्रोह का कारण हो चुका था। प्रति-दिन स्थिति विकट होती जाती थी। इससे करण ने यह विचार किया कि नहुष की योजना पर भी विचार करना उचित है। उसको इसके सफल होने की कुछ विशेष आशा नही थी, परन्तु यह विचार कर कि इसके असफल होने पर वह नहुष को किसी अन्य कुकर्म करने से रोक सकेगा, वह जाने पर तैयार हो गया।

जब सुमन को करण ने बताया कि वह इस कार्य के लिए जा रहा है, तो सुमन को बहुत दु ख हुआ। उसको अति दु खित देख करण ने पूछा—"क्या बात है प्रिये! तुम इस समाचार से अवाक् मुख खडी रह गई हो। क्या तुम भय अनुभव कर रही हो?"

"भय की तो कोई बात नही, परन्तु आपके इसके लिये हाथ-पाव मारने का कार्य दु.खकारक अवश्य है। यह कार्य अत्यन्त घृणित है। थोडी सान्त्वना केवल इस बात से प्राप्त होती है कि आपको इस में सफलता नहीं मिल सकेगी। आपका यह प्रयत्न ऐसा ही है जैसे कि पानी मथकर मक्खन निकालना।"

"यहा पर किसी स्त्री को पकडकर, उसको प्रलोभन देकर अथवा बल से विवश कर अपनी पत्नी बना लेना एक बात है, परन्तु वहाँ स्वतन्त्र स्थान पर इन्द्र की सहवासिन को नहुष जैसे की पत्नी बनने के लिए मनवा लेना सर्वथा असम्भव है।"

करण ने व्यंगभरी दृष्टि से सुमन की ओर देखकर पूछा—"क्या सुमन को अपनी पत्नी बनाने के लिए कोई प्रलोभन दिया गया था अथवा बल का प्रयोग किया था ?"

"सुमन किसी अन्य की पत्नी नही थी और न ही श्री करण म और श्री नहुष में कुछ समता है।"

"क्या अन्तर है दोनो में ?"

"इसका उत्तर मुझसे न पूछकर श्री करण अपने मन से ही पूछ लेते तो अच्छा रहता।"

"महाराज नहुष देवलोक के अधिपति है और करण उनका तुच्छ सेवक। नहुष यहा राज्य करने का दृढ निश्चय किये हुए है और करण अपने देश लौट जाने की बात सोच रहा है। वहा तो मक्की की मोटी रोटी और भेड की ऊन के मोटे कपड़े पहिनने को मिलते है।"

"यह ठीक है। तो भी मैं उन्ही से सन्तुष्ट रहूँगी।"

"पर मै पूछता हूँ क्यो ? जब तक यहाँ हो सुखी रहोगी, परन्तु हमारे देश में तो अपढ गँवार लोगो में रहना पडेगा। गरमियो में इतनी कडी धूप होगी कि चमडी झुलस कर काली पड जावेगी और शीतकाल में तीन मास तक बर्फ पडे रहने के कारण बाहर निकलना असम्भव हो जावेगा।"

"इससे क्या होता है ? जिससे प्रेम हो जाता है उसके साथ तो मनुष्य नरक में जाने को भी तैयार हो जाता है। इसमें वासना का समावेश नही। इसमें शारिरिक सुख साधना का भी हाथ नही। इसमें तो अन्तरात्मा की अन्तरात्मा से संयोग की बात है।"

करण हंस पडा। इस हँसी को अपनी बात पर सदेह का सूचक मान सुमन ने कहा—"कभी अवसर पड़े तो परीक्षा कर देख लीजिएगा।"

"आशा करता हूँ कि शीघ्र ही वह समय आवेगा। पता चल जावेगा कि देवलोक की स्त्रियों के कथन में कितना तथ्य होता है।"

एक-दो दिन में करण काश्मीर की सीमा की ओर चल पड़ा।

(६)

भास्कर के विक्रम के पास पत्र लेकर जाने के पश्चात् देवयानी ने मलिन्द और सुमति को देवलोक की स्त्रियो में विद्रोहात्मक प्रवृत्ति जागृत करने के लिए भेज दिया। सुमति से उसने आते समय कहा—"आज से एक वर्ष में मैं तुम से मिल सकूँगी। अभी तुम दोनों जाओ।

"मलिन्द वहाँ का एक-एक घर जानती है। इस पर भी तुम दोनों देवर्षि नारद के कहने के अनुसार कार्य करना।"

अगले दिन आठ संरक्षको की देख-भाल में दोनो देवलोक को चल पड़ी। देवलोक को जाने का राजमार्ग लम्बा और नहुष के सैनिको द्वारा सुरक्षित था। अपने काम के लिए देवर्षि ने एक छोटा सुगम और गुप्त मार्ग पता कर रखा था। इस मार्ग से बहुत कम लोग जाते थे। यह अति दुस्तर था। इस कारण किसी सरक्षक द्वारा रक्षित भी नही था। एक स्थान पर तो मार्ग इतनी ऊँचाई पर चला गया था कि बर्फ पर से होकर जाना पड़ता था।

सुमति और मलिन्द पन्द्रह दिन में देवभूमि में जा पहुँची। सीमा से पचास कोस के अन्तर पर अमरावती थी। नारद ने मार्ग में आने-जाने वालों के लिए ऐसे स्थान नियत कर रखे थे जहाँ ये लोग ठहर सकते थे। इस कारण पैदल चौदह दिन का मार्ग बिना किसी प्रकार की कठिनाई के तय हो गया। केवल अंतिम दिन, जब ये लोग अमरावती से तीन कोस पर रह गए थे, एक भीषण घटना घट गई।

अमरावती से पाँच कोस के अन्तर पर एक झरना था। वहाँ का

दृश्य अति सुन्दर और लुभावना था। कभी-कभी गान्धार वहाँ मन-बहलाव के लिए जाया करते थे। घटना इस प्रकार हुई कि जब सुमति और मलिन्द पैदल ही कुलियों पर सामान लदवाए अमरावती की ओर जा रही थी, तो एक गान्धार अधिकारी कनकदेव उसी झरने से अपने अश्व पर सवार चला आ रहा था। यात्रियों को जब घोड़े के आने की आहट मिली तो वे मार्ग छोडकर एक ओर हो गए। अश्वारोही जब यात्रियो के समीप से निकलने लगा तो उसकी दृष्टि सुमति पर पड गई। उसने अपने घोड़े की लगाम खैंच उनको खडा कर लिया और सुमति के समीप आने पर उसका मार्ग रोक खडा हो गया। सुमति ने प्रश्नभरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। इस पर अधिकारी ने पूछा—"देवी ! कहाँ से आ रही हो ?"

सुमति ने उस गाँव का नाम बताया जहाँ से वे उस दिन प्रातःकाल चली थी। इस पर उसने कहा—"वह तो बहुत दूर है। देवी के पाँव थक गए होगे, मैं सवारी के लिए अपना घोड़ा दे सकता हूँ।"

सुमति ने उसके मुख पर देखते हुए कहा—"आपका बहुत धन्यवाद है। हमको कुछ कष्ट नहीं। हम सूर्यास्त से पूर्व नगर में पहुँच जावेंगे।"

"पर मैं तो आपको इस प्रकार पैदल जाते देख अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि आपकी सहायता करूँ।"

अश्वारोही इतना कहकर घोडे से उतर पडा और सुमति को घोड़े पर चढने का आग्रह करने लगा। सुमति चलती गयी और बोली—"श्रीमान् ! आपको चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। आप चलिये, मैं घोड़े पर सवारी नहीं करती।"

परन्तु कनकदेव इससे और भी उत्साहित हो सुमति को बाँह से पकडकर घोडे पर चढने के लिये आग्रह करने लगा। कनकदेव ने सुमति

को छुआ ही था कि सुमति ने अपने पूरे बल से एक चपत उसके मुख पर लगायी । इससे वह गान्धार-अधिकारी चकित रह गया और आश्चर्य में सुमति का मुख देखने लगा ।

उस गान्धार को अश्व से उतर सुमति के पास आते देख, साथ जाने वाले संरक्षक समीप आ खड़े हो गए । वह अश्वारोही मुख पर चपत लगने पर खिलखिलाकर हँस पड़ा था । पश्चात् वह सुमति की कमर में हाथ डालकर घोड़े पर उसको बैठाने का यत्न करने लगा । उसने कमर में हाथ डाला ही था कि सुमति कूदकर फुर्ती से पीछे हट गयी । एक संरक्षक ने अपना खड्ग निकाल लिया और पूर्व इसके कि गान्धार अपना खड्ग निकाले, संरक्षक ने उसकी बाँह पर वार कर दिया, जिससे बाँह कलाई के नीचे से कटकर दूर जा गिरी । गान्धार इस स्फूर्ति को देखता रह गया । अन्य संरक्षकों ने भी अपने-अपने खड्ग निकाल लिये और सुमति के आगे खड़े हो गये । गान्धार ने समझ लिया कि वहाँ एक क्षण भी और खड़े रहने से उसका जीवन खतरे में पड़ सकता है, इस कारण वह एक हाथ के आश्रय से लपककर घोड़े पर चढ़ गया और घोड़े को एड़ी लगाकर अमरावती की ओर भाग गया ।

उसके दृष्टि से ओझल हो जाने पर मलिन्द ने कहा—"हमें मार्ग छोड़कर उस गाँव के पीछे से दूसरे मार्ग पर चले जाना चाहिये । वह नगर से अभी सैनिक लेकर आवेगा । अभी तो यही उचित है कि जैसे-तैसे बचकर अमरावती पहुँचा जाये । वहाँ हम प्रबन्ध कर लेंगे ।"

सबको यह सम्मति जँच गई । वे मार्ग छोड़कर सामने के गाँव की ओर चल पड़े । वहाँ गाँव को लाँघकर दूसरी ओर से अमरावती की ओर चल पड़े और सूर्यास्त से पूर्व ही नगर में जा पहुँचे ।

इनके लिये एक मकान का प्रबन्ध किया गया था । उस मकान तक उनको ले जाने के लिये एक देवता नारद के कहने के अनुसार मुख्य द्वार पर

खटा था, परन्तु ये लोग एक दूसरे द्वार से वहाँ पहुँचे। मलिन्द की एक सखी थी। वह सुमति को लेकर उसके घर जा पहुँची। परन्तु उस घर में गान्धार सैनिक रहने लगे थे। इससे उनको बहुत चिन्ता लग गई। वह समझती थी कि दिन की घटना के पश्चात् उनका बहुत देर तक इधर-उधर घूमते रहना उचित नहीं। इस कारण उसने शीघ्र कहीं ठहर जाना ही उचित समझा। अगले मुहल्ले में पहुँच उसने मार्ग पर चलती एक स्त्री से पूछा—"यहाँ कोई मकान भाड़े पर मिल सकेगा क्या ?"

उस स्त्री ने मलिन्द को भलीभाँति देखकर कहा—"भाडा स्वर्ण मुद्रा के रूप में देना होगा।"

मलिन्द ने कहा—"देंगे।"

'तो चलिये। मेरे मकान का एक भाग खाली है।"

"दिखाओ कैसा है ?"

मकान को अनुकूल पा मलिन्द ने एक भाग का भाड़ा एक स्वर्ण मुद्रा देकर मकान ले लिया।

मकान की ऊपर की मंजिल में स्वयं ठहर सरदारों को नीचे की मंजिल में ठहरा दिया। पश्चात् अपने आने की सूचना नारद तक पहुँचाने के लिये मलिन्द घर से निकल किसी काश्मीरी की दूकान ढूँढने लगी। मार्गों पर चलते हुए उसने देख लिया कि सैनिकों में भाग-दौड़ हो रही है। वह समझ गयी कि उनकी खोज हो रही है। निश्चय ही सैनिक उनको पकड़ने के लिये मार्ग पर गए होंगे और उनको वहाँ न पा, वे अब नगर में ऊधम मचाने लगे हैं। इस कारण मलिन्द और भी सतर्क हो गई। एक दूकान पर बहुत भीड़ देख उसने अनुमान कर लिया कि वह एक काश्मीरी की दूकान है। उसने वहाँ एक खड़े व्यक्ति से पूछा और इस प्रकार अपना अनुमान ठीक पा दूकान पर जा पहुँची। दूकानदार से

इसका उत्तर वह नही दे सका। रक्तस्राव अधिक हो गया था और घोडे पर सवार होने के कारण परिश्रम से थककर वह अचेत हो गया था। नहुष ने देवताओं के योग्य चिकित्सक जाबाल को बुला भेजा और सेनापति की चिकित्सा का भार उस पर डाल दिया। जब रक्त बन्द हुआ और उसको शक्तिवर्धक औषधियो से चेतनता प्राप्त हुई तो उसने सब कथा सुनाई। साथ ही अपना अभियोग उपस्थित कर दिया— 'महाराज! मै भ्रमणार्थ जलप्रपात पर गया हुआ था। वहाँ से अपने साथियो को पीछे छोड अकेला घोडे पर चला आ रहा था कि एक अद्वितीय सुन्दरी कुछ सैनिक सेवको तथा सरक्षको के साथ पैदल आती दिखाई दी।

"मैने उसके कोमल चरणों को कष्ट से बचाने के लिए अपना अश्व उसकी सेवा में कर दिया। उसने उसे स्वीकार नही किया। इस पर मैंने उसकी बाँह पकडकर घोडे पर चढने का आग्रह किया। इस पर उस स्त्री ने मेरे मुख पर एक चपत लगाई। मुझको क्रोध चढ आया। मैंने उसकी कमर में हाथ डालकर घोडे पर चढाना चाहा तो वह लपककर पीछे हट गयी और उसके एक सरक्षक ने अपनी खड्ग निकाल मेरी बाँह काट डाली।"

"पर कनकदेव! अपराध तो तुमने किया है।" नहुष ने मुस्कराते हुए कहा।

"नही महाराज! देवलोक की स्त्रियाँ गान्धारो के लिए ही ब... नका भ ेरह र ा ो ... वे गान्धार-सेनापति की बात को न मानें"

"तुम ठीक कहते हो कनकदेव! परन्तु एक बात है। गान्धारों यह अधिकार किसने बनाया है? क्या यह अधिकार इसलिए नही हम उनसे अधिक बलवान और साहसी हैं। तुमने दुर्बलता, भीरुता स्त्रियों के विषय में अनभिज्ञता का परिचय दिया है। इस का तुम्हारा अधिकार नही है कि देवताओ की स्त्रियो का भोग करो।

लज्जा की बात है कि तुमने अपनी तलवार निकाल लड़ने के स्थान पर भाग आना उचित समझा।"

"महाराज! वे आठ थे और मैं अकेला था।"

"तो तुम अपने साथियों के आने की प्रतीक्षा कर लेते। उस स्त्री को विवश करने के स्थान उसको प्रलोभन देने चाहियें थे। एक देहाती गँवार स्त्री ने गान्धार-सेनापति के मुख पर चपत मारी। इनसे पूर्ण गान्धार जाति का अपमान हुआ है और तुमने ऐसा होने का अवसर दिया। इसके तो ये अर्थ हुए कि दुर्बल, भीरु और अनभिज्ञ होने के साथ साथ तुम मूर्ख भी हो।"

"इस पर भी मैं उस लड़की को तो नहीं, परन्तु उसके संरक्षक को जीवित जला देने की आज्ञा देता हूं। इस कारण नहीं कि उसने तुम्हारी बाँह काट डाली है, प्रत्युत इस कारण कि उसने एक गान्धार पर तलवार चलाने का अपराध किया है।"

इतना कहकर नहुप ने भवन के संरक्षकों के सरदार को आज्ञा दी—"जलप्रपात के मार्ग पर आ रही दो स्त्रियों और उनके आठ साथियों को पकड़कर उपस्थित करो।"

सैनिक गये परन्तु किसी स्त्री और पुरुष को उस मार्ग पर आते-जाते न देख खाली हाथ लौट आये। इस पर महाराज नहुप ने यह घोषणा करवा दी—"आज जलप्रपात के मार्ग पर कुछ व्यक्तियों ने सेनापति कनकदेव का अपमान कर दिया है। हम उनको प्राण दण्ड देते हैं। जो कोई उन व्यक्तियों का नाम-धाम बतावेगा उसको एक सहस्र स्वर्ण मुद्रा पारितोषिक दिया जावेगा।"

इतने भारी इनाम के लोभ से बहुत से भूखे-नंगे गान्धार और देवता निर्दोषों को पकड़-पकड़ कर लाने लगे। जब पकड़कर लाया हुआ व्यक्ति कनकदेव के सामने उपस्थित किया जाता तो पता चलता कि ये दोषी नहीं हैं।

नारद ने जब इनाम की बात सुनी तो सुमति और मलिन्द को उस मकान से निकाल वह उन्हें पूर्वनिश्चित मकान पर ले गया। उसको डर लग गया था कि कही उस मकान की मालिक स्त्री इनाम के लालच में इनको पकडवा न दे।

अगले दिन सुमति और मलिन्द ने अपना कार्य आरम्भ कर दिया। काश्मीर से आये सैनिक और देवता, जो उनके दल में सम्मिलित हो गये थे, उन सबकी एक गुप्त सभा जगल में एक मकान में हुई। उसमें राजकुमारी के न आ सकने का समाचार दिया गया और सुमति के उनके स्थान पर आने की बात बताई गई। पीछे प्रपात के मार्गपर घटी घटना का वास्तविक रूप बताया। जब उपस्थित दल के सदस्यो ने सत्य घटना का रूप जाना तो वे सुमति के सहास की बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उनकी धमनियो में रक्त खौलने लगा और एक काश्मीर कन्या के अपमान की बात समझ वे बदला लेने के लिये उतावले होने लगे। सुमति ने केवल इतना कहा—"जिस प्रकार मेरे साथ व्यंवहार हुआ है, ऐसा यहाँ की नारियो से नित्य होता रहता है। हम आर्य लोग अपनी स्त्रियो से किया गया अपमानजनक व्यवहार क्षमा नही कर सकते। इस कारण मैं अपने वीर-धीर भाइयो से अपनी बहिनो की रक्षा की भीख माँगती हूँ।"

इस सभा में भारी उत्साह था। इस कारण अन्त में नारद ने एक बात कही—"जो कार्य भी किया जायेगा वह सगठित रूप में होगा। अतएव कोई भी व्यक्ति बिना नेता से आज्ञा प्राप्त किये किसी भी प्रकार का झगडा न करे। सब एकत्रित हो एक योजना के अनुसार कार्य करेंगे।"

मलिन्द सुमति को घर-घर में ले जाती थी। वह उसकी देवताओं की स्त्रियो से भेंट करवाती और उनको यह कहती कि आततायियो के साथ असहयोग करना उनका परम कर्त्तव्य है। अभी उस सगठन का

उल्लेख नही किया जाता था, जो विद्रोह करने के लिये बनाया गया था।

पडोस में एक देवता रहता था। उसकी तीन लडकियाँ थी। तीनों अब गान्धारसैनिको की पत्नियो के रूप में रहती थी। वे गान्धार-सैनिक भी उस वृद्ध देवता के घर में ही रहते थे। इन गान्धारो के अपनी पत्नियो से बच्चे भी हो गए थे। मलिन्द ऐसी स्त्रियो से मेलजोल रखना नही चाहती थी। वह समझती थी कि जिन स्त्रियो के गान्धारो से सन्तान हो गयी हैं, वे अपने पतियो से द्रोह नही करेंगी। इस कारण इन लड़कियो को और उनके बाल-बच्चो को देख मलिन्द उनसे पृथक् रहने का प्रयत्न करती थी।

इस पर भी एक दिन सबसे छोटी लडकी, जिसकी आयु उन्नीस-बीस वर्ष की होगी, स्वय सुमति से मिलने चली आई। मलिन्द ने उसको पडोस के घर में आते-जाते देखा था। उसको पहिचानकर आदर से बैठाया और कहा—"मैं समझती हूँ कि आप हमारे पडोस में रहती हैं।"

"हाँ।" उसने एक गम्भीर साँस खींचकर कहा, "जबसे आप हमारे पडोस में आयी हैं आपसे मिलने को जी चाहता था, परन्तु सकोचवश आ नही सकी।"

"सकोच की क्या आवश्यकता थी? आप आ सकती थी। हमने अभी आस-पडोस में मिलने का यत्न नही किया। इसका कारण है कि हम देहात की रहने वाली हैं और नगर की स्त्रियो के रहन-सहन और स्वभाव को जानती नही। हम डरती हैं कि कोई ऐसी बात न कर बैठें जो किसी को अरुचिकर प्रतीत हो।"

वह लडकी मुस्कराई और बोली—"आपकी लडकी कहाँ है?"

मलिन्द समझ गई कि वह सुमति के विषय में पूछती है। इससे उसने

कहा—"कल रात को वह कुछ अस्वस्थ रही है। इस कारण अभी सोक नही उठी। आपका नाम क्या है ?"

"कचन।"

"आपकी और बहनें भी तो हैं ?"

"हाँ ! दो और हैं। वे मुझसे बडी हैं। हम तीनो इकट्ठी रहती हैं। पिता जी वृद्ध हैं और कुछ कर-धर नही सकते। देवराज इन्द्र के काल में तो कुछ काम करने की आवश्यकता भी नही थी। परन्तु आज विना स्वर्ण मुद्रा के पेटभर भोजन नही मिल सकता और स्वर्ण की प्राप्ति के लिए प्रयत्न की आवश्यकता है।

"यहाँ से दस कोस के अन्तर पर नीला नदी की बालू में स्वर्ण कण मिलते तो हैं परन्तु हमारे पिता की दृष्टि क्षीण हो चुकी है। वे स्वर्ण बटोरने नही जा सकते।"

"तो उनके स्थान पर आप जाती है क्या ?"

"हमको हमारे घर वाले जाने नहीं देते। उनको स्वर्ण मुद्रा राज्य की ओर से मिलती हैं।"

"तो आप अपने-अपने भाग में से कुछ देकर अपने पिता का पालन करती होगी ?"

"करती तो हैं, परन्तु हमारे घर वाले उनके साथ बहुत बुरा व्यवहार करते है।"

"तुम्हारी माँ नही है क्या ?"

"थी। वह राज्य वदलने के समय मार डाली गयी थी। उसके शोक में ही पिता जी की दृष्टि क्षीण हुई है।"

"आप लोगो की अति भयानक कथा है। आपका विवाह कैसे हुआ था इनसे ?"

"राज्यपरिवर्तन के दिन हम सब वसन्तोत्सव पर गये थे। मार्ग में ही हमको पता चल गया था कि स्त्रियों से पुरुषों को पृथक् किया जा रहा है। इससे लौटकर हम देहात में अपने ननिहाल चले गये। एक मास पश्चात् नगर में शान्ति अनुभव कर यहां आ गये। एक दिन ये तीनों सैनिक हमारे घर में घुस आये और हममें से एक-एक को उन्होंने अपनी पत्नी बना लिया। मां ने आपत्ति की तो उसके पेट में छुरा घोप उसको मार डाला। पश्चात् वे हमारे ही घर में रहते है। कुछ समय पाकर हमारे बच्चे भी हो गये हैं। मेरी बडी बहन के घर में दो लड़के और एक लडकी है। मझली के घर में दो लडकियां हैं। मेरे घर में एक लड़का है।"

"अब तो आप बहुत प्रसन्न होंगी ?"

"प्रसन्नता के अर्थ मैं नही समझती। जहां तक भोजन-वस्त्र का सम्बन्ध है, वह मुझको मिल जाता है। मकान पिता का है। वे अति दु:खी हैं। मैं उनकी सेवा करू तो घर वाला क्रोध करता है। इस कारण चोरी-चोरी उनको खाने पहरने को देती रहती हूँ। कल जब इस बात का पता चल गया तो उसने मुझे बुरी तरह पीटा।

"मैं रात ही को भाग जाना चाहती थी, परन्तु जाती कहां ? जहां भी जाती वहां भी किसी गान्धार की पत्नी बनकर रहना पड़ता। और वह इनसे अच्छा व्यवहार करता, नहीं जानती।"

मलिन्द इस दु:खगाथा को सुन उनका मुख देखती रह गई। जब मलिन्द ने कुछ नही कहा तो उस लड़की ने फिर कहा—"आपकी लड़की कल बिक्री वाली दूकान पर एक वृद्धा को अनाज देने के लिए कह रही थी। दूकानदार ने उस वृद्धा को बहुत सम्मान के साथ बिठाया और चावल, दाल, घी, नमक, मसाला, सब कुछ जो उसने मांगा, दिया। मैं भी उस दूकान पर अपने लिये सामान लेने गई थी। मेरे मन

प्रतिदिन एक देवता-पुरुष और एक देवता-स्त्री पकडकर मृत्युदण्ड के भागी बनते रहेंगे।"

घोषणा करवा दी गई। नगरभर में यह समाचार फैल गया और इसका प्रथम प्रभाव आतंक के रूप में प्रकट हुआ। अगले दिन कोई भी देवी-देवता अपने-अपने घरो से बाहर नही निकला। इस पर भी घोषणा के अनुसार नहुष के सैनिक आये और एक घर में से एक देवता-स्त्री और एक देवता-पुरुष, दोनो रोते-चीखते हुओ को पकडकर ले गये। लोग क्रोध में चीखते तथा लाल-पीले हुए, देखते रह गये।

वे न्यायालय में उपस्थित किये गये। नहुष न्यायकर्त्ता था। उनसे नहुष ने पूछा—"क्या नाम है?"

"अक्षपाद, महाराज! और यह मेरी लडकी केशिका है।"

"तुमने मेरी घोषणा सुनी है?"

"हाँ महाराज!"

"तो उनका पता बताओ।"

"हम नही जानते महाराज! हम निर्दोष है।"

"अच्छी बात है। तुम दोनो को बन्दी किया जाता है। यदि कल सायकाल तक अपराधी न्यायालय में उपस्थित नही हो जाते, तो तुम दोनो को प्राणदण्ड दिया जावेगा और उसके पश्चात् दो देवताओं को और पकड लिया जावेगा, जिनको कि अगले दिन मध्याह्न तक बंदी रखा जावेगा और अपराधियो के प्रकट न होने पर उनको भी प्राणदण्ड दिया जावेगा। इसी प्रकार यह क्रम चलता रहेगा, जब तक अपराधी अपने आपको न्यायालय में उपस्थित नही करते।"

अक्षपाद और केशिका बहुत रोते-धोते रहे, परन्तु उनकी किसी ने नही सुनी और उनको वन्दीगृह में भेज दिया गया। अगले दिन एक और घटना घटी। मध्याह्न होने से पूर्व ही एक गान्धार-सैनिक न्यायालय में उपस्थित होकर एक पत्र दिखाकर बोला—"महाराज! मेरा

भाई और उसकी स्त्री रात से लापता है और यह पत्र उनके घर के द्वार के बाहर लगा मिला है।"

पत्र पढ़ा गया। उसमें लिखा था—'यदि एक देवता के अपराध से कोई दूसरा देवता पकड़ा जाकर दण्ड का भागी हो सकता है, तो एक गान्धार के अपराध के लिए कोई भी गान्धार दण्डित किया जा सकता है। हमने इस घर के रहने वाले गान्धार और उसकी स्त्री को पकड़ लिया है। यदि अक्षपाद और केशिका को दण्ड दिया गया तो इन दो को भी वही दण्ड दिया जावेगा।'

इस पत्र को पढ़ नहुष पागल हो उठा। उसने कहा—"तो अब इन देवताओं का इतना साहस हो गया है कि मेरी आज्ञा का प्रतिकार करने लगे हैं। देखें ये कैसे एक गान्धार की हत्या करते हैं? गान्धार के एक-एक रक्त की बूंद के लिए एक-एक देवता की जान ली जावेगी। मैं आज्ञा देता हूं कि अक्षपाद और केशिका को अभी मेरे सम्मुख लाकर मृत्युदण्ड दिया जावे।"

गान्धार नहुष का मुख देखते रह गए। इस पर भी दोनों वन्दियों को पकड़कर लाया गया और उनका नहुष के सम्मुख ही सिर काट दिया गया। साथ ही नहुष ने आज्ञा दे दी कि और देवताओं को पकड़कर लाया जावे।

जिस पेड़ की डाली से अक्षपाद और केशिका के सिर लटकाए गए थे अगले दिन उसी के साथ ही गान्धारसैनिक और उसकी स्त्री के सिर लटके हुए दिखाई दिए। साथ ही नहुष को यह सूचना मिली कि दो गान्धार और पकड़ लिए गए हैं।

नहुष के क्रोध का वारापार नहीं रहा। उसने आज्ञा दी कि देवताओं का एक बड़ा हत्याकांड किया जावे। आज्ञा पाकर पांच-सौ सैनिक देवताओं के मुहल्ले में घुस गए और घरों में से देवताओं को पकड़-पकड़

"श्रीमान् !" कचनदेवी ने कहा—"दो वर्ष तक मुझ पर एक व्यक्ति ने बलात्कार किया। मैंने उसको कभी पसन्द नहीं किया। मैंने उसको कभी पति स्वीकार नही किया। मैं उसके घर से भाग जाने के लिये सदा विचार रखती रही थी, परन्तु उसे कार्य रूप में परिणत नही कर सकी। अब मैंने साहस कर उसका घर छोड दिया है। न मैं उसकी पत्नी हूँ और न मैं उसके घर जाऊँगी।"

"तुम देश के राजा की आज्ञा भी नही मनोगी।"

"देश के राजा को अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिये। मुझ पर बलात्कार करने वाले को दड देना चाहिये न कि उस अपराधी को अपराध करने में सहायता देनी चाहिये।"

नहुष अनुभव कर रहा था कि उसके हाथ से बालू की भाँति राज्य निकल रहा है। इस पर भी वह मन्त्री के इस नम्र व्यवहार पर प्रसन्न नही था। फिर भी उसने उसी समय सहस्रों लोगो के सम्मुख यह निर्णय दे दिया कि कचनदेवी निरपराध है। वह जहाँ चाहे रह सकती है।

कचन महाराज नहुष की जयजयकार करती हुई महिलामन्दिर को वापिस लौट आयी, परन्तु उसी रात महिलामन्दिर को आग लग गयी। इस आग को बुझाने के लिये देवताओ ने जी-जान की बाजी लगा दी। इन्द्र के काल में तो कही आग लग जाने से वरुणास्त्र चला दिया जाता था, जिससे वर्षा हो जाती थी और अग्नि शान्त हो जाती थी। परन्तु इस समय वरुणास्त्र किसी के पास नही था। और देवता, जिनमें प्रायः काश्मीर से आये हुये गुप्त सैनिक थे, इस आग को शान्त करने में रात-भर लगे रहे। बहुत कठिनाई से उसमें रहने वाली स्त्रियो को बचाया गया। मकान तो जलकर स्वाहा हो गया।

इस अग्निकाड के समाचार पर नहुष बहुत प्रसन्न था, परन्तु अगली रात को गान्धार-सैनिको के शिविर को आग लग गयी। नहुष को पता चला तो वह स्वय वहाँ पहुँच अग्नि को शान्त कराने की व्य-

वस्था करने लगा। रात भर यत्न करने पर वह अग्नि शान्त हुई। दिन चढने के पूर्व एक अन्य सैनिक-स्थान पर आग भडक उठी। नहुप तो थक जाने के कारण अपने भवन में जाकर सो गया, परन्तु गान्धार-सैनिक इस अग्नि को दिनभर बुझाते रहे। रात होने पर एक तीसरे स्थान पर, जहाँ पर गान्धार रहते थे, आग लग गयी। इस पर गान्धार घबरा उठे और अगले दिन जब कि उनके बहुत से घर जल रहे थे, वे नहुप के पास पहुँचे और करबद्ध प्रार्थना करने लगे कि देवताओं से सन्धि कर ली जावे; अन्यथा वे लोग देवलोक छोडकर अपने घरो को लौट जायेंगे।

बहुत यत्न करने पर अग्निकाड समाप्त हुआ। कुछ देवता पकड-कर नहुप के सामने उपस्थित किये गये और उनसे नहुप ने पूछा—"क्या तुम जानते हो कि यह आग कौन लगाता है ?"

"हम नहीं जानते महाराज ! हाँ, यह बात नगर में विख्यात है कि आपके सैनिक स्वय ही आग लगाते है जिससे महाराज को क्रोध आ जाय और हम लोग मरवा डाले जायें।"

"मैंने अब निश्चय कर लिया है कि किसी को भी, जब तक उसके विपरीत दृढ प्रमाण न मिल जाये, दंड न दूंगा। मेरे लिये देवता और गान्धार समान प्रजा है। मैं आज से यह घोषणा करता हूँ कि देवताओं को न केवल राज्यसभा में स्थान दूंगा, प्रत्युत उनकी एक सेना भी तैयार कर अपने पास रखूंगा। मै चाहता हूँ कि दोनो जातियों के लोग सुख और शान्ति से रहें।"

इस पर नहुप ने आचरण भी आरम्भ कर दिया। सबसे प्रथम यत्न इस दिशा में यह किया कि देवताओ के विद्वान् पुरुषो को राज्य-सभा में स्थान दिया और उनको स्वर्ण मुद्राओं में वेतन देना आरम्भ किया। काश्यप, भृगु, जादान इत्यादि अनेक ऋषि बुलाये गये और उनको सम्मान से दर्बार में रखा गया। यहाँ तक कि इन ऋषियों को ही न्याया-

लय का काम सौंप दिया गया । इसके अतिरिक्त देववाणी के अध्यापको को गान्धारो और देवताओ के बालको के पढ़ाने के लिए रख लिया । तीसरी बात यह कि राज्य का व्यय चलाने के लिये देवताओ के कुछ योग्य विद्वानो का एक मडल बना दिया । दूसरी ओर देवताओ को सेना में भरती करने की स्वीकृति दे दी । कई सहस्र देवता भर्ती कर लिये गये । देवताओ की एक सेना बनायी गयी और उसके मन में नहुष के राज्य के गुण अकित करने का यत्न किया गया ।

नारद इस नयी परिस्थिति को अपनी योजना में बाधा समझने लगा था । वह समझता था कि विद्रोहात्मक प्रवृत्ति, जो देवताओं में शून्य के समान थी, बढ़ने लगी थी, परन्तु नहुष के इस नवीन प्रयास से अब देवताओ में ऐसे लोग उत्पन्न होने लगे थे, जो नहुष के राज्य-भक्त बनने लगे थे । इस नयी परिस्थिति में देवताओ में फूट पड गयी । जब देवताओ को ऐसा भास होने लगा कि अब उनमें और गान्धारो में भेदभाव नही रखा जा रहा तो उन्होंने झगडा करना व्यर्थ की बात मान, छोड दिया ।

इस पर भी नारद ने अपना प्रयत्न नही छोडा । उसने लोगो में यह विख्यात कर दिया कि शक्तिप्रसारक यन्त्र बन्द होने वाले हैं और यदि इन्द्र नहीं आया तो सब सर्दी में ठिठुर-ठिठुर कर मर जायेंगे । इस कारण अन्दोलन का रूप यह हो गया कि इन्द्र वापिस आना चाहिये । बिना उसके सब मर जाने वाले है । इस अन्दोलन की सत्यता का ज्ञान गान्धारो को भी होने लगा और नहुष के कानो में यह शब्द पहुँचने लगे कि इन्द्र के साथ सन्धि की जाये ।

ब्रह्मावर्त-विजय

(१)

गान्धार का राजा काकूप था। वह नहुष के ताऊ का लड़का था। नहुष का पिता काकूप के पिता का छोटा भाई होने से केवल पद्मानुर दुर्ग का स्वामी था। जहाँ नहुष ने देवलोक में अपनी चतुराई से राज्य स्थापित किया था, वहाँ काकूप भी अपने राज्य का विस्तार करने के लिये चिन्तित था। इस कारण उसने ब्रह्मावर्त के महाराज को अपना मैत्रीपूर्ण पत्र भेजा। उसमें काकूप ने लिखा—"मुझको यह समाचार मिल रहे हैं कि काश्मीर में सेना बढ़ायी जा रही है। यह सैनिक तैयारी ब्रह्मावर्त पर आक्रमण करने के लिये है अथवा गान्धार पर, कहना कठिन है। दो राज्य ही हैं, जिन पर काश्मीर की दृष्टि हो सकती है। तीसरा देश, जिसके साथ इसकी सीमा मिलती है, देवलोक है। वह देश ऐसा नहीं, जहाँ से कुछ प्राप्ति की आशा हो सके। वहाँ तो स्थानीय वासियों के खाने-पहनने के लिये भी पर्याप्त अन्न-वस्त्र नहीं है। वहाँ कोई आक्रमण क्यों करेगा। इस कारण वहाँ की बढ़ती सैनिक शक्ति से हम दोनों देशों को भय है। इस कारण मैं आपसे मैत्री का वचन देकर आपसे भी ऐसा वचन चाहता हूँ। इसके साथ यह भी चाहता हूँ कि आक्रमण के समय हम एक-दूसरे की सहायता करें।"

इस प्रकार के पत्र का उत्तर भी वैसा ही मिला। चन्द्रसेन के पास

अपनी कोई सैनिक तैयारी नही थी। वह शान्तिप्रिय राजा था और व्यर्थ में किसी से झगडा मोल लेना व्यर्थ मानता था। काकूष को जो उत्तर उसने भेजा उसमें अपने हृदय की सत्य बात लिखी थी।

उसने लिखा—"भाई काकूष! हमारे राज्य की नीति किसी से झगडा करने की नही है। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि हम किसी पर आक्रमण करने वाले नही। मैं यह भी वचन देता हूँ कि यदि किसी ने आपके देश पर आक्रमण किया तो हम अपनी पूरी शक्ति से आपकी सहायता करेंगे। रही काश्मीर की बात। मैं देख रहा हूँ कि वहाँ एक वर्ष में सेना दुगुनी हो गयी है और अभी भी बढाई जा रही है। इस अवस्था में काश्मीर के इस आश्वासन पर कि वह मेरे देश पर आक्रमण करने का विचार नही रखते, विश्वास नही होता। फिर भी हम उनसे अकारण झगडा नही करना चाहते। जब तक वे हमारे देश की सीमा का उल्लघन नही करते, मैं कुछ नही करूँगा।"

विक्रम के एक पत्र के उत्तर में चन्द्रसेन ने यह लिखा था—"हम अपने पडोसियो के साथ शान्ति का व्यवहार रखना चाहते हैं। मुझको विश्वास है कि गान्धार के लोग अकारण हम पर हमला नही करेंगे। इसके विपरीत आपकी बढती हुई सैन्य-शक्ति को देख आपकी ओर से सदेह हो रहा है। हम आशा करते है कि आप दूसरो के विषय में लिखने के स्थान पर अपनी ओर से मैत्री रखने का आश्वासन देंगे।"

इसके उत्तर में विक्रम ने एक दूत और पत्र भेजा। उसने चन्द्रसेन की राज्यसभा में उपस्थित हो पत्र दिया। पत्र में लिखा था—"मैं महाराज-काश्मीर की आज्ञा से लिख रहा हूँ। उनकी आज्ञा है कि आपसे निवेदन करूँ कि काश्मीर की ब्रह्मावर्त से सदा मैत्री रही है। पिछले एक सहस्र वर्ष में काश्मीर और ब्रह्मावर्त में झगडा नही हुआ। इससे आपको विश्वास रखना चाहिए कि आपके राज्य से हमारा किसी प्रकार का झगडा नही है।

"शेष वार्तालाप के लिए पत्रवाहक काश्मीर-राज्य का राजदूत है। वह आपके सम्मुख पूर्ण परिस्थिति वर्णन कर देगा।"

चन्द्रसेन को इस पत्र से सतोष नही हुआ। उसने काश्मीर के राजदूत से पूछ ही लिया—"इस पत्र में सैन्यवृद्धि के बारे में कुछ नही लिखा।"

"वह मुझको मौखिक रूप में निवेदन करने की आज्ञा मिली है। महाराज आर्य हैं, वेदो मे वर्णित आर्य व्यवहार के मानने वाले हैं। उनके मन में एक भावना यह भी है कि वेदो में प्रतिपादित धर्म और जीवनमीमासा अति श्रेष्ठ है। इस कारण इस धर्म और मस्कृति की रक्षा करने के लिए काश्मीर तैयारी कर रहा है। दुर्भाग्यवश तुखारिस्ता मे म्लेच्छ जातियो के लोग कामभोज, गान्धार, देवलोक में अधिकार कर गए हैं। इससे जो अनाचार इन देशो में फैला है वह अति भयकर है। उमड़ती हुई घटायें काश्मीर को चारो तरफ से घेरे हुए हैं। जो दुर्दशा देवलोक की हुई है, उससे भयभीत हो काश्मीर को उसी दुर्दशा से बचाने के लिए यह सैनिक तैयारी है। यह आपके विरुद्ध नही है।"

महाराज चन्द्रसेन के मन का सशय निवृत्त नही हुआ। उसने पूछा—"क्या राज्य के बदल जाने से जनता के आचार-विचार में अन्तर पड सकता है? ब्रह्मावर्त में पिछले पाँच सौ वर्षों में कई बार राज्य-परिवार बदले है। कुछ राजा दुराचारी भी हुए है। परन्तु जनता पर इसका प्रभाव नही हुआ।"

"महाराज! राज्य-परिवार का बदलना और शासक जाति के बदलने में अन्तर है। राजा श्रेष्ठ है अथवा दुराचारी इससे तो केवल कुछ ही लोगो को, जिनका राज्य-परिवार के साथ सम्बन्ध है, अन्तर पड़ता है। परन्तु जब भिन्न आचार-विचार की जाति शासक होती है तो पूर्ण प्रजा दुःखी हो उठती है। कामभोज में और देवलोक में भी यही हुआ है।"

चन्द्रसेन ने विचारकर उत्तर दिया—"हम इन बातो में आपके महाराज की नीति से सहमत नही हैं। प्रजा का आचार-विचार राज्य की ओर से न तो विरोध का और न ही रक्षा का विषय है। प्रजा को इस विषय में स्वय अपनी रक्षा करनी चाहिए। हम इस चिन्ता से अपने मस्तिष्क में विकार उत्पन्न कर इसे खराब नही कर सकते। देव-लोक में स्त्रियाँ विवाही जाती हैं, अथवा पत्नी बनायी जाती हैं। गान्धार में विवाह सम्बन्ध स्थायी है अथवा अस्थायी। कामभोज में लोग अपनी स्त्रियो को धन-दौलत मानते हैं अथवा सहधर्मिणी। इन सब बातो के विचारने का न तो हमको अवसर है और न ही हम इसकी आवश्यकता समझते हैं। इन बातो पर अधिक सोचने से परस्पर वैमनस्य ही बढता है।

"इस पर भी हम काश्मीर से मैत्री के इच्छुक हैं। हम महाराज-काश्मीर से निवेदन करते हैं कि वे अपनी सेना में वृद्धि कर जहाँ अपनी प्रजा पर व्यर्थ का बोझ लाद रहे हैं, वहाँ हमारे साथ द्वेषभावना प्रकट कर रहे हैं।"

चन्द्रसेन के इस उत्तर के पश्चात् और करने को कुछ नही रहा। जब काकूष की सेना ने सिन्धु नदी पार की तो चन्द्रसेन ने इसका कारण पूछा। काकूप का उत्तर था—"काश्मीर राज्य अपनी सेना ब्रह्मावर्त की सीमा पर एकत्रित कर रहा है। उससे अपने मित्र की रक्षा के लिए यह सेना सिन्धु के पार आई है।"

चन्द्रसेन ने इसको सत्य मान क्रोध में काश्मीर-महाराज को लिखा—"आपने अपनी सेना ब्रह्मावर्त की सीमा पर एकत्रित कर युद्ध का श्रीगणेश कर दिया है। इस भय को दूर करने लिए ब्रह्मावर्त और गान्धार सेनाएँ आ रही हैं। युद्ध का उत्तरदायित्व आप पर है।"

इस पत्र को पढ़कर विक्रम खिलखिलाकर हँस पडा। ब्रह्मावर्त के

दूत को मौखिक उत्तर दिया गया कि अपने महाराज से जाकर कह देना कि उस जैसा मूर्ख ससार में मिलना कठिन है। जब गान्धार अपना अधिकार लवपुर में जमा लेंगे, तब ही हम अपनी सेना से काम लेंगे, पहले नही।

दूत को यह मौखिक उत्तर चन्द्रसेन को जाकर देने की आवश्यकता नही पडी। कारण यह कि जब तक वह लौटकर लवपुर पहुँचा, गान्धारसेना लवपुर के द्वार पर पहुँच चुकी थी और गान्धार-अधिपति ने चन्द्रसेन को नगरद्वार से बाहर बुलाकर अपना बदी बना लिया था।

इससे पहले जब काकूप अपनी सेना के साथ घडा-घड चलता हुआ और नदियों को पार करता हुआ लवपुर के द्वार पर पहुँचा तो चन्द्रसेन को भारी विस्मय हुआ। उसने काकूप को कहला भेजा कि उसकी सेना की आवश्यकता यहाँ नही थी। उसको तो काश्मीर-सीमा की ओर जाना चाहिए था। मेरी सेना पहले ही उस ओर को जा चुकी है। काकूप का उत्तर आया कि आपसे अति आवश्यक विषय पर बातचीत करनी है। इस कारण इतना चक्कर काटकर इधर आना पड़ा है। आप नगर के बाहर आ जाइये। आज रात विचारविनिमय होगा। चन्द्रसेन के मंत्रियों को इधर आने का यह बहाना युक्तिसगत प्रतीत नही हुआ और उन्होंने अपने महाराज को नगर से बाहर जाने से मना किया। उनकी इच्छा थी कि नगरद्वार बद कर दिये जावें और बाहर की सेना को गान्धारसेना से लडने की आज्ञा दे दी जावे। चन्द्रसेन को इस योजना से सफलता की आशा प्रतीत नही हुई। इसने यह निश्चित समय पर बातचीत करने के लिए काकूप के शिविर में गया और फिर वहाँ से लौटकर नही आया। उसके बदी हो जाने के पश्चात् काकूप की सेना ने लवपुर पर आक्रमण कर दिया और उस पर अपना अधिकार जमा लिया।

काकूप ने लवपुर पर अधिकार कर लिया और पूर्ण देश पर सत्ता

जमाने के लिये सब उत्तरदायित्व के स्थानो पर अपने देशवासियो को नियुक्त करना आरम्भ कर दिया। जिस किसी ने भी उसकी आज्ञा की अवज्ञा की उसको मौत के घाट उतार दिया गया। चन्द्रसेन का एक पुत्र था। वह अभी अल्पवयस्क था। उसको बदी कर लिया गया। चन्द्रसेन के अन्य सम्बन्धियो तथा उसके मन्त्रियो को मरवा डाला गया। नगर-निवासियो के मन में आतक जमाने के लिये तीन दिवस तक हत्याओं का काड चलने दिया। पीछे भयभीत प्रजा से कार्य लेने के लिए उनको मीठी-मीठी बातो से अपनी ओर करने का यत्न किया जानें लगा। चन्द्रसेन की भयभीत स्त्री को बुलाकर काकूष ने कहा—"पारिणकादेवी ! तुम्हारे पतिदेव राजनीति से अनभिज्ञ मूर्ख थे। यही कारण है कि तुम पर इतनी विपत्ति आई है। अब यदि तुम मेरे सग विवाह कर लो तो मैं लवपुर की गद्दी पर तुम्हारे पुत्र को आसीन कर दूंगा।"

"मेरे पतिदेव कहाँ हैं ?" पारिणकादेवी का प्रश्न था।

"वह इस लोक में नही है।"

"तो मैं विधवा हूँ ?"

"हाँ।"

"मेरा पुत्र कहाँ है ?"

"वह इस समय बंदी है। तुम आज मेरी पत्नी बनना स्वीकार कर लो तो कल मैं उसको यह राज्यगद्दी देकर अपने देश की ओर लौट जाऊँगा।"

पारिणकादेवी ने कहा—"यह नहीं हो सकता। मैं आज रात ही अपने पतिदेव का अनुसरण करूँगी। तुम मुझको रोक नही सकोगे।"

"पतिदेव के पथ का अनुमरण करोगी, कैसे ?"

"जैसे किया जा सकता है।"

ऐसा कह वह विना कुछ और कहे काकूप के सामने से उठ चली आयी। काकूप ने उसको वुलाया—"पाणिकादेवी! सुनो तो।"

वह वहाँ ही ठहर घूमकर बोली—"बताइये।"

"सुनो, इधर आओ।"

"शीघ्र करिये। मुझको तैयारी करनी है।"

"कहाँ जाने की ?"

"उनके पास।"

"पुत्र को भी साथ ले जाना चाहोगी क्या ?"

यह सुन पाणिकादेवी ठिठक गयी, परन्तु शीघ्र ही अपने पर काबू पा बोली—"कौन किसका पुत्र है? सब माया है।"

यह कहकर वह द्रुत गति से चली गयी। उसी रात महारानी ने चिता बनाकर अपने आपको भस्म कर डाला। इस पर काकूप का विचार था कि एक और मूर्ख भूतल से उठ गया है।

(२)

काकूप को अपनी सत्ता स्थिर करने में कई वर्ष लग गये। कामभोज, गान्धार और ब्रह्मावर्त का विस्तृत राज्य, जिसकी सीमा एक ओर तो तोसार से लगती थी और दूसरी ओर आर्यवर्त से छूती थी, सुव्यवस्थित रूप से चलाना सुगम नहीं था। वह अभी लवपुर में ही था और उसने अपने अधीनस्थ अधिकारियों को करसंग्रह के लिये अभी नियुक्त किया ही था कि महाराज-काश्मीर का एक राजदूत उसके पास एक पत्र लेकर आ पहुंचा। पत्र में लिखा था—"हमारे देश की प्रथानुसार देश के किसी भाग पर कोई बाहरी व्यक्ति राज्य नहीं करता। कभी बाहर के राज्यों को आक्रमण करने की आवश्यकता होती है तो विजय प्राप्ति के पश्चात् अपने अनुकूल किसी उन ही देश के रहने वाले के हाथ राज्य सौंपकर बाहरी सेना लौट जाती है। इस प्रकार किसी

जमाने के लिये सब उत्तरदायित्व के स्थानो पर अपने देशवासियों को नियुक्त करना आरम्भ कर दिया। जिस किसी ने भी उसकी आज्ञा की अवज्ञा की उसको मौत के घाट उतार दिया गया। चन्द्रसेन का एक पुत्र था। वह अभी अल्पवयस्क था। उसको बदी कर लिया गया। चन्द्रसेन के अन्य सम्बन्धियो तथा उसके मन्त्रियो को मरवा डाला गया। नगर-निवासियो के मन में आतक जमाने के लिये तीन दिवस तक हत्याओं का काड चलने दिया। पीछे भयभीत प्रजा से कार्य लेने के लिए उनको मीठी-मीठी बातों से अपनी ओर करने का यत्न किया जानें लगा। चन्द्रसेन की भयभीत स्त्री को बुलाकर काकूष ने कहा—"पाणिकादेवी ! तुम्हारे पतिदेव राजनीति से अनभिज्ञ मूर्ख थे। यही कारण है कि तुम पर इतनी विपत्ति आई है। अब यदि तुम मेरे सग विवाह कर लो तो मैं लवपुर की गद्दी पर तुम्हारे पुत्र को आसीन कर दूंगा।"

"मेरे पतिदेव कहाँ हैं ?" पाणिकादेवी का प्रश्न था।

"वह इस लोक में नहीं है।"

"तो मै विधवा हूँ ?"

"हाँ।"

"मेरा पुत्र कहाँ है ?"

"वह इस समय बदी है। तुम आज मेरी पत्नी बनना स्वीकार कर लो तो कल मै उसको यह राज्यगद्दी देकर अपने देश की ओर लौट जाऊंगा।"

पाणिकादेवी ने कहा—"यह नही हो सकता। मैं आज रात ही अपने पतिदेव का अनुसरण करूँगी। तुम मुझको रोक नही सकोगे।"

"पतिदेव के पथ का अनुसरण करोगी, कैसे ?"

"जैसे किया जा सकता है।"

नदी के दक्षिण तट पर कर्मावत नाम के एक गाँव में भास्कर जा पहुँचा। वह अकेला था। दिन निकलने पर जब वह गाँव में पहुँचा तो वर्षा जोरो से हो रही थी और भास्कर के कपड़े इत्यादि सब भीग चुके थे। पाँच हाथ लम्बा पुरुष वर्षा में तरबतर चलने के लिए, हाथ में लम्बा लठ लिए गाँव वालों को घूमता दिखाई दिया। सब उसकी विशाल देह को देख चकित थे।

भास्कर गाँव के एक कोने से दूसरे कोने तक गया। फिर लौट आया। पश्चात् वह गाँव के चौक में आकर खड़ा हो गया। उसकी परेशानी देखकर एक गाँव वाले ने पूछा—"क्या ढूंढ रहे हो महाशय ?"

"कहीं सिर छुपाने को स्थान। देखते नहीं कि वर्षा हो रही है ?"

"स्थान तो मिल जावेगा, परन्तु इस गाँव में भोजन नहीं रहा।"

"कहाँ गया वह ?"

"गान्धार उठाकर ले गए हैं। हमारे घर में तो कुछ नही बचा।"

"तो आपने विरोध नही किया क्या ?"

"किया था, परन्तु कुछ नहीं हुआ। बीस खड्गधारी और धनुष-धारी सैनिक थे। कहने लगे अन्न दो या अपनी बहू-बेटियाँ दो। हमने अन्न देना उचित समझा।"

"यह तो घोर अन्याय है।"

"पर हम क्या कर सकते थे ? कल सैनिक परस्पर बातचीत कर रहे थे कि वर्षा के कारण युद्ध तीन मास तक नही हो सकेगा। तब तक सेना के खाने-पीने के लिए रसद एकत्रित करनी है।"

"भाई !" भास्कर ने उदासीनता प्रकट करते हुये कहा,—"ठहरने का स्थान मिल जाये तो खाने का प्रबन्ध कर लूँगा।"

"कहाँ से कर लोगे ? आस-पड़ोस के सभी गाँवों का यही हाल है

जो तुम यहाँ देख रहे हो। गाँव के गाँव लूट लिये गये हैं। वहाँ वालों को अपने खाने को भी नहीं है।"

"ठीक है। वर्षा ठहरने तक आश्रय दो। पीछे की बात विचार लूंगा।"

उस पुरुष ने, जो अपने घर की खिडकी में खड़ा भास्कर को देख रहा था और बातें कर रहा था, उसको मूसलाधार वर्षा से भीगते देख भीतर बुला लिया—"अच्छी बात है। आ जाओ।"

जब भास्कर भीतर गया तो उस गाँव वाले ने पूछा—"कहाँ के रहने वाले हो?"

"नरसिंहपुर का रहने वाला हूँ। गान्धारों के आक्रमण की सूचना पा लवपुर में महाराज चन्द्रसेन की सेना में भर्ती होने गया था, परन्तु वहाँ पहुँचने से पूर्व ही महाराज बंदी बना लिए गये थे। अब मुझको यह सूचना मिली है कि महाराज-काश्मीर गान्धारों को ब्रह्मावर्त से निकाल देने के लिए सेना ला रहे हैं। अतएव उनकी सेना में सम्मिलित होने के लिये जा रहा हूँ। नदी में बाढ़ के कारण पार करने में कठिनाई अनुभव कर इस गाँव में चला आया हूँ।"

भास्कर घर की डियोढ़ी में खड़ा था। उसके वस्त्रों से जल चू रहा था। उस समय भीतर से एक लड़की आई और घर वाले से बोली—"बाबा! इनके लिये कपड़े लाऊँ?"

"इन महाशय के नाप के कपड़े हैं तुम्हारे घर में?"

"माँ कहती है कि धोती और चादर ओढ़ लें और जब तक कपड़े सूखेंगे ये विश्राम कर लेंगे।"

"माँ से कहो भेज दें।

कपड़े आये और भास्कर ने गीले कपड़े उतारकर सूखे पहन लिये और चारपाई पर बैठ गया। कुछ समय के पश्चात् वही लड़की गरम

के भुने हुए भुट्टे लेकर आई और भास्कर के हाथ में दो भुट्टे देकर बोली—"यह तो हैं, और कुछ नही ।"

"देखो बिटिया," भास्कर ने भुट्टे पकड़ते हुए कहा—"तनिक वर्षा थमने दो, खाने के लिये कही से लाकर रहूँगा । इन दो भुट्टों से इतने बड़े पेट का क्या होगा ?"

भास्कर ने दो में से एक भुट्टा लड़की के पिता को देते हुए कहा—"यह लड़की बहुत प्यारी लगती है । क्या नाम है इसका ?

"सुन्दरी ।"

"बेटी सुन्दरी ! तुम्हारे और तुम्हारी माता के लिए कुछ और हैं या नहीं ?"

"केवल दो ही थे ।"

"तो बिटिया ! यह तुम ले जाओ । आधा तुम ले लेना और आधा अपनी माँ को दे देना । घर में कोई और प्राणी भी है क्या ?"

"एक दूध-पीता बच्चा भी है । इसका भाई है ।" उस आदमी ने तरल नेत्रो से कहा ।

"क्यों भाई क्या बात है ?" उसके तरल नेत्र देख भास्कर ने कहा ।

"घर में एक अतिथि आया है और हमारे पास उसके लिये एक कौर अन्न भी नहीं । भाई, मैं इस गाँव का चौधरी हूँ । सौ बीघा भूमि स्वयं जोतता और बोता हूँ । खलिहान अन्न से भरे रहते थे । गाय-भैंस मनो दूध देती थी । ये गान्धार आये और सब कुछ उठा ले गये हैं ।"

"यह तो अन्याय है । तुम लोगो को अपने खाने-पीने के लिये तो चाहिये ही था ?"

चौधरी अन्यमनस्क भाव से भास्कर का मुख देखता रह गया । भास्कर ने फिर कहा—"तुम यह भुट्टा खाओ, मेरा इतने से कुछ नहीं

बनेगा। तनिक वर्षा रुकने दो फिर मैं अपने लिए और यदि हो सका तो तुम्हारे लिए भी खाने का प्रबन्ध कर दूंगा।"

चौधरी भुट्टे से दाने उखाड़-उखाड़ कर खाने लगा। भास्कर अपने मन में योजना बना रहा था। मध्याह्न के पश्चात् वर्षा रुकी। भास्कर अपने कपडे, जो चौधरायिन ने आग पर सेंककर सुखा दिये थे, पहन हाथ में लाठी ले घर से बाहर निकल आया। भास्कर का अनुमान था कि पिछले दिन गान्धार अवश्य रसद एकत्रित करने को निकले होंगे। इस गांव में नही आये तो किसी दूसरे गांव में गये होंगे। अब वर्षा थम जाने पर वे सामान लिये हुए लौटेंगे। यह अनुमान कर भास्कर गांव में इधर-उधर चक्कर काटने लगा। पहरभर घूमने के पश्चात् उसको अपने अनुमान के सत्य होने का प्रमाण मिला। गांव के पश्चिम द्वार की ओर से दस सैनिक एक ठेले में अनाज लादे हुए आते मिले। ठेला हांकने वाले तो गांव वाले ही प्रतीत होते थे। भास्कर ने समझा कि उसके काम का समय आ गया है। इस कारण वह गांव के चौराहे पर लाठी तानकर खड़ा हो गया।

वर्षा रुक जाने से गांव के अन्य व्यक्ति भी बाहर निकल आये थे। उनमें भास्कर के कुछ साथी भी थे। वे भी भास्कर की भांति भिन्न-भिन्न गांववालों के घरों में ठहरे थे। सब भूख से व्याकुल थे और अपने पड़ोसियों से कुछ खाने के लिये मांगने के लिये एक-दूसरे का मुख देख रहे थे। इस समय सैनिक ठेले में गेहूं लादे हुए, गांव के चौक में पहुंच गये। भास्कर ने उनको ललकारकर पूछा—"यह कहां लिये जा रहे हो?"

"तुम कौन हो पूछने वाले?"

"मुझको भूख लगी है और इन थैलों में गेहूं प्रतीत होता है।"

"ऊंह!" सैनिकों के सरदार ने कहा—"यह राज्य का माल है। सेना के लिये जा रहा है। एक ओर हट जाओ।"

"इस गाँव के लोग भी तो राज्य की प्रजा हैं और इनके पास भी खाने को कुछ नही।"

"तो हम क्या करें ?"

"यह अनाज आज गाँव वालो के लिये छोड जाओ।"

"ओह ! आज्ञा देने का क्या अधिकार है तुम्हारा ?" इस पर सैनिकों ने अपने-अपने खड्ग नगे कर लिये। भास्कर तलवार की मार से पीछे हटकर लाठी घुमाने लगा। खटा-खट लाठी चलने लगी और सैनिको की खोपडियाँ टूटने लगी। दस में से आठ सैनिक घायल हो लेट गये और दो सिर पर पाँव रखकर भाग खडे हुए। वे देहाती भी, जो ठेला खींच रहे थे, ठेला छोड भाग गये।

गाँव के लोग, जो भूख से व्याकुल हो रहे थे, भास्कर को लडते देख चुके थे। अब डरते-डरते गेहूँ के पास आकर खडे हो गये और तृषित नेत्रो से भास्कर की ओर देखने लगे। भास्कर ने गाँव के चौधरी को बुलाया, जिसके घर में वह ठहरा हुआ था, और कहा—"यह सब गाँव वालो को बाँट दो। कल के लिये फिर प्रवन्ध करेंगे।"

चौधरी जहाँ गेहूँ को देखकर प्रसन्न हो रहा था वहाँ सेना की गाँव के व्यवहार की प्रतिक्रिया का विचार कर चिन्तित हो रहा था। उसने भास्कर को कहा—"कल गाँव पर सेना के लोग आक्रमण करेंगे।"

"सत्य ? तब तो मैं यहाँ ठहरूँगा और इन भेडियों को मजा चखाऊँगा।"

"यदि पाँच सौ सैनिक चढ आये तो तुम अकेले क्या कर सकोगे ?

"पाँच सौ आवेंगे क्या ? तुम गाँव में कितने लोग हो ?"

चौधरी गाँव वालो की ओर, जो गेहूँ के चारो ओर खडे थे, देखने लगा। इस समय भास्कर के एक साथी ने कह दिया—"हमने भी माँ का दूध पिया है। भूखे मरने से तो लड-लड कर मरना अच्छा रहेगा।"

इस पर एक गाँव वाला कहने लगा—"यह बात तो ठीक है। हम सब लड़ेंगे।"

"ठीक है। पर कितने हैं जो लड़ते हुए मरने को तैयार हैं ?"

भास्कर के सब साथी लड़ने के लिए तैयार थे। उनको देखकर गाँव के लोगों ने भी साहस एकत्रित किया और लड़ने के लिए अपनी अनुमति देने लगे। इस पर भास्कर ने गाँव वालों को साहस बँधाते हुए कहा—"डरो नहीं। सब तो मरेंगे नहीं।"

सबसे बड़ी युक्ति थी भूख। गाँव वाले अपने बच्चों को भूख से बिलख-बिलख कर रोते देख चुके थे। सब भास्कर का साथ देने के लिए तैयार हो गए।

(३)

गेहूँ के बोरे खोल दिए गये और सबके घरों में चूल्हे गरम हो गये। भास्कर ने भी पेटभर खाया। इस समय लगभग ऐसे ही समाचार दूसरे गाँवों से भी आने लगे। बहुत से गाँवों ने तो अनाज देने से न कर दी और सेना का जमकर विरोध किया। इन समाचारों से गाँव वालों का साहस और भी बढ़ गया।

रात में ही गाँव वालों में से दो सौ का एक दल तैयार किया गया। जिन-जिन के पास मुर्चाये हुए खड्ग थे उनको साफ करने के लिए कह दिया। कइयों ने धनुष-बाण तैयार कर लिए। अन्यों ने लाठियाँ निकाल लीं। अगले दिन सेना के केवल बीस आदमी ही आये। बात यह थी कि बीसियों गाँवों में झगड़ा हुआ था और सेना सब स्थानों पर भेजनी थी। इसके अतिरिक्त शत्रु के सम्मुख से भी सेना हटाई नहीं जा सकती थी।

भास्कर यह तो आशा करता था कि पाँच सौ सैनिक नहीं आवेंगे, परन्तु वह यह बात भी नहीं समझ सका कि जब दस सौ उन गाँवों ने

भगा दिया था तो केवल बीस भेजने से किस प्रयोजन की सिद्धि की आशा की जा सकती है। बीस सैनिक गाँव में आकर गाँव वालो को धमकाने लगे। पहिले तो लोग भयभीत हो घरो को भागने लगे, परन्तु जब भास्कर को डटे हुए देखा तो फिर अन्य गाँव वाले भी बाहर निकल आये।

भास्कर ने सैनिको के सरदार से जाकर पूछा—"क्या बात है ?"

सैनिक इस लम्बे-ऊँचे कद के आदमी को देख विस्मय करने लगे। सरदार इस विचित्र आदमी के कारनामे कल वाले सैनिकों से सुन चुका था। इस पर भी उसने भास्कर को कहा—"राज्य का गेहूँ तुमने लूटा है ?"

"राज्य के कौनसे खेत का गेहूँ था ?"

"सब खेत राजा के हैं।"

"तो लोग कहाँ से खायें ?"

"राजा को अनाज की आवश्यकता है। कहाँ रखा है तुमने वह अनाज ?

"गाँव के लोगो में बाँट दिया है।"

"पकड लो इस विद्रोही को।" सरदार ने कहा।

भास्कर इसके लिए पहले से ही तैयार खडा था। दो पग पीछे हट-कर उसने लाठी घुमाई। आगे बढ़कर पकड़ने वालो की कलाइयाँ टूट गयीं और खड्ग उनके हाथ से छूट गए। भास्कर ने उनको ललकार-कर कहा—"भाग जाओ यहाँ से, नही तो कल की भाँति कइयो को मौत के घाट उतार दूंगा।"

सरदार के कहने पर सैनिको ने भास्कर को घेर लिया, परन्तु भास्कर की लाठी के सामने उनकी एक न चली। इस पर सरदार के सैनिकों को धनुष-बाण निकालने के लिये आज्ञा दे दी। वे लोग पीछे हटकर मोर्चे बाँधने लगे। भास्कर ने उनको इसका अवसर ही नही दिया और

अपने साथियों के साथ उन पर टूट पड़ा। इससे वे गाँव छोड़कर बाहर पेड़ों के एक झुरमुट के पीछे छुपकर बाण चलाने लगे। भास्कर ने उन मकानों की छतों पर जो इस झुरमुट के सामने थे, धनुषधारी चढ़ा दिये। अब दोनों पक्षों की ओर से बाण चलने लगे। भास्कर यह जानता था कि युद्ध का यह ढंग कोई परिणाम नहीं निकाल सकता। इससे लोग घायल किये जा सकते हैं, परन्तु युद्ध का निर्णय तो लाठियों, भालों अथवा तलवारों से आक्रमण करने से ही हो सकता है। इस कारण उसने अपने साथ तीस खड्गधारी ले लिये और गाँव के पिछवाड़े से गाँव का चक्कर काट पेड़ों के पीछे जा पहुँचा। सैनिक बाण चलाने में लीन थे कि भास्कर के साथी उन पर जा झपटे। दो-दो हाथ हुए। कुछ गान्धार मारे गये और शेष भाग गये।

इस प्रकार यह पहिली विजय गाँव वालों को प्राप्त हुई। इस विजय का कुछ भी परिणाम न होता, यदि अन्य सैकड़ों गाँवों में ऐसे ही विद्रोह खड़े न हो जाते। काश्मीरसैनिक भिन्न-भिन्न स्थानों से नदी पार कर गान्धारसेना के पीछे पहुँच रहे थे। जिस भी गाँव में वे जाते थे वहाँ जनता को उकसाकर गान्धारों का रसद-पानी बंद करवा देते थे। एक सप्ताह के इस प्रकार के संघर्ष के पश्चात् गान्धारसेनापति ने यह अनुभव किया कि वितस्ता नदी का पूर्ण दक्षिण तट विद्रोह कर उठा है। रात को सब गाँवों में सभायें होती थी। गाँव वालों को गान्धारों के विरुद्ध भड़काया जाता था। देश और धर्म के प्रति प्रेम को पुरी बनाकर उनको लड़ने-मरने पर तैयार किया जाता था। अधिकांश स्थानों पर तो भूख और मान-मर्यादा ने विद्रोह के लिए क्षेत्र तैयार कर दिया था और थोड़ा आश्रय पाकर लोग गान्धारों का विरोध करने पर तैयार हो जाते थे। सभायें 'आर्य धर्म की जय हो।' 'गान्धारों का सर्वनाश हो।' इत्यादि जयघोषों से समाप्त होती थी।

कुछ ही काल में गान्धार-सेनापति को अपनी सेना की अवस्था भयपूर्ण होने का ज्ञान हो गया था। अतएव उसने पाँच-पाँच सौ सैनिकों

के दल भेजने आरम्भ कर दिये। दूसरी ओर सैंकडो गाँवो के लोग सहस्रों की सख्या में एकत्रित होकर उनका विरोध करने लगे। जब कभी सेना की बडी टुकडी आती तो गाँव वाले गाँव छोड जगलो में घुस जाते और जब भी उनको अवसर मिलता वे सेना पर छापा मार उनके गोदामो में से अन्न छीन लाते।

एक मास के इस सघर्ष का पारिणाम यह हुआ कि गान्धारसेना भूख से तडफडाने लगी। वितस्ता और चन्द्रभागा नदियो के भीतर गान्धारसेना का टिका रहना असम्भव हो गया। रसद जो लवपुर से आती थी, वह मार्ग में ही लूट ली जाती थी। इस प्रकार वर्षा समाप्त होने से पूर्व ही गान्धारसेना को चन्द्रभागा के इस ओर आ जाना पडा।

विक्रम ने भास्कर की योजना के सफल होने पर सेना में विजयोत्सव मनाया। उसमें भास्कर को पुरस्कृत किया। ज्यो ही गान्धारसेना पीछे हटी विक्रम ने वितस्ता नदी पार कर चन्द्रभागा के उत्तरी किनारे पर शिविर जा गाडा।

विक्रम स्वय भास्कर को साथ लेकर, जो अब सेनानायक की उपाधि प्राप्त कर चुका था, उन सब गाँवो में गया, जिन्होने गान्धारसेना के विरुद्ध विद्रोह किया था। उन गाव वालो को, जिनको इस विद्रोह में हानि पहुँची थी, विक्रम ने उपाधियाँ दी और पुरस्कार दिया।

साथ ही उसने घोषणा कराई कि काश्मीर राज्य की इच्छा ब्रह्मावर्त में अपना राज्य स्थापित करने की नही है। गान्धारो को, जो न केवल विदेशी हैं प्रत्युत विधर्मी भी हैं, यहाँ से निकालकर इस देश का राज्य यहाँ के देशवासियो को देकर काश्मीरसेना लौट जायेगी।

विक्रम के इस व्यवहार की इस क्षेत्र में बहुत प्रशसा हुई। यह प्रशसा चन्द्रभागा पार कर उन क्षेत्रो में भी पहुँच गई जो गान्धारसेना के पीछे थे। भास्कर और उस जैसे काम करने वाले अन्य काश्मीर-

सैनिक फिर शत्रु-सेना के पीछे जा पहुँचे, और वहाँ गाँवों में विक्रम के पुरस्कार देने की बात और घोषणा की बात प्रचारित करने लगे।

जब सेना के पीछे हट जाने का समाचार काकूप को मिला तो वह बहुत चिन्तित हुआ। उसने सेनापति को लवपुर में बुलाकर पूछा—"सेना को वापिस करने की क्या आवश्यकता पड़ गई थी ?"

"महाराज !" सेनापति का कहना था—"पूर्ण देश में विद्रोह की भावना जाग उठी है। न तो सेना को अन्न मिलता था और न ही उनको सुख-सामग्री प्राप्त हो सकती थी। इसके अतिरिक्त शिविर वर्षा से जल-मग्न हो गया था। सेना कितने दिनों तक घुटनों पानी में पड़ी रही। यदि सेना को वापिस होने की आज्ञा न देता तो सैनिक स्वयं ही लौट आते।"

"पर जनता में विद्रोह क्यों उत्पन्न हुआ ?"

"कारण मैं नहीं जानता। इतना अवश्य है कि काश्मीर-सेनापति ने यह घोषणा कर दी है कि ब्रह्मावर्त का राज्य वहाँ के देशवासियों को ही लौटा देंगे। गान्धार विदेशी हैं और इनको देश से बाहर निकाल देना चाहिये।"

"पर मैं पूछता हूँ कि सेना इन बदमाशों को ही तो ठीक करने के लिए भेजी गयी थी। तुमने उसका प्रयोग क्यों नहीं किया ?"

"किया था, परन्तु सेना भूखी थी और जनता रात को छापे मारकर अन्न ले जाती थी।"

"तो अब क्या होगा ?"

"वहाँ की परिस्थिति यहाँ से भी विकट है। जनता को पता चल गया है कि सेना का रसद-पानी बन्द कर देने से सेना नहीं लड़ सकती। यहाँ से भेजा हुआ सामान मार्ग में ही लूट लिया जाता है। उसकी रक्षा के लिये पर्याप्त सैनिक नहीं होते।"

काकूप ने समझा कि गान्धार-सेना का प्रभाव जनता पर नहीं

रहा। उसने प्रभाव जमाने के लिये जनता पर अत्याचार और बलात्कार करने का आदेश दे दिया। उसने युद्ध के लिये गई सेना को गांवो को लूटने और स्त्रियों पर बलात्कार करने के लिये छोड दिया।

इससे कुछ देर तक तो आतंक छा गया, परन्तु जब जनता ने देखा कि दोषी और निर्दोष में अन्तर नही किया जाता, तो केवल दो मार्ग खुले देखे। या तो वे घर-द्वार छोडकर विदेश में चले जावें, या जान की बाजी लगाकर सेना से भिड जावें। जहाँ सेना की बडी-बडी टुकडियाँ गाँवो को लूटने अथवा स्त्रियो पर बलात्कार करने के लिये घूमने लगी, वहाँ विरोध में कई-कई गाँव मिलकर लडने लगे। इसका परिणाम काकूष के अनुमान से विपरीत हुआ। पूर्ण ब्रह्मावर्त में गान्धारों का विरोध आरम्भ हो गया और जो भी अधिकारी काकूष ने गाँवो अथवा कसबो में भेजे थे, प्राय. मार डाले गये।

ये सब सूचनाएँ विक्रम को मिल रही थी और उसने इस समय आक्रमण करना उचित समझा। वर्षा बद हो चुकी थी। इस पर भी नदियो में जल अभी कम नही हुआ था। परन्तु विक्रम का विचार था कि देश की परिस्थिति के कारण आक्रमण का उचित समय आ गया है।

लकडियो के बडे-बडे लट्ठे रस्सो से बाँधकर नौकायें बनाई गयी और चोरी-चोरी नदी से बीस मील नीचे जाकर तीन-चौथाई सेना पार कर दी गयी। विक्रम स्वय इस सेना के साथ था। अगले दिन यह सेना गान्धारसेना पर जा टूटी। घमासान युद्ध हुआ। गान्धारसेना गाँव वालो को शिक्षा देने के लिये देशभर में फैली हुई थी। काकूप अभी एक मास तक आक्रमण की आशा नहीं करता था। इस कारण गान्धारसेना के शौर्य से लडने पर भी उसकी पराजय हुई। काश्मीर-सेना गान्धारसेना से दुगनी थी। साथ ही जब नदी पार की हुई सेना ने आक्रमण किया तब नदी पार खडी सेना ने भी नदी पार करने का

यत्न किया। इस कारण गान्धारसेना को दो ओर से युद्ध करना पड़ा। काकूप की सेना के पांव उखड़ गये और वह अपना सब सामान छोड़कर इरावती नदी के दक्षिण तट पर आकर रुकी।

विक्रम ने चन्द्रभागा और इरावती के मध्य के भाग में भी वही किया जो उसने वितस्ता और चन्द्रभागा के भीतरी क्षेत्र में किया था, अर्थात् गाँव वालो की हानि की पूर्ति। उनके खाने और बीज के लिये अन्न, उनके लिये वस्त्र और उनकी स्त्रियो की रक्षा का प्रबन्ध किया गया। गाँव वालो में कइयो को शौर्य का पुरस्कार दिया और वही घोषणा, जो पहिले की गयी थी, यहाँ भी करा दी गयी।

इरावती के किनारे पर युद्ध की भारी तैयारी होने लगी। काकूप ने अपनी सेना का सचालन स्वय करने का विचार किया और विक्रम अपने सब सेनापतियो की राय से युद्ध की तैयारी में लग गया। अभी सेनाओ में बीस कोस का अतर था और ऐसा विचार किया जा रहा था कि युद्ध होने में अभी एक सप्ताह लगेगा। इस बार भास्कर भी सेना के साथ था। वैसे कार्य के लिये, जैसा वह पहिले करता रहा था, अब अवसर नही था। विक्रम का विचार था कि यह मोर्चा अन्तिम होगा। एक बार गान्धारो को यहाँ से पीछे हटाया गया तो लवपुर पर अधिकार हो जावेगा और शेष काम सुगम हो जावेगा। लवपुर में ब्रह्मावर्त वालो की सत्ता स्थापित कर दी जावेगी जिससे गान्धार देश से खदेड़ दिए जावेंगे। इस कारण इस बार उसका विचार था कि आमने-सामने युद्ध किया जावे। वह इस बार गान्धार-सेना को कुचल डालना चाहता था।

एक पुरुष घोड़े पर सवार काश्मीरसेना के शिविर में आया और उसने विक्रम से मिलने की इच्छा प्रकट की। जब वह विक्रम के सामने उपस्थित हुआ तो उसने अपना परिचय देते हुए कहा—"वीर विक्रम, मैं इन्द्रप्रस्थ राज्य का राजकुमार हूँ। मेरी बहिन चन्द्रसेन की **महारानी**

थी। मैं काकूष को समझाने आया था कि वह चुपचाप अपने देश को लौट जावे तो उसके अपराध क्षमा कर दिये जावेंगे।

"उसने मुझको एक बात बताई है कि काश्मीर ब्रह्मावर्त पर अधिकार जमाना चाहता है। इस अधिकार से गान्धार की राजनीतिक परिस्थिति दुर्बल न पड़ जाय इस कारण वह सेना लेकर ब्रह्मावर्त की रक्षा के लिये काश्मीर की सेना को परास्त करने के लिये आया था। चन्द्रसेन ने इस कार्य में उसकी सहायता करने से न कर दी थी। अतएव वह उसको बन्दी करने में विवश हो गया था। उसने यह भी कहा था कि काश्मीर को पराजित कर चन्द्रसेन को गद्दी पर बैठाकर वह वापिस लौट जावेगा।

"इस अवस्था में उसने मुझको अपनी सहायता करने के लिये तैयार कर लिया था। अपनी सेना, जो मेरे साथ आयी थी, इस समय ऐरावती के तट पर गान्धारसेना के साथ मिल लड़ने के लिये तैयार खड़ी है। कल रात मेरी बहन की एक दासी मुझको मिली है। उसने मुझको इससे भिन्न बात सुनाई है। उसने कहा है कि चन्द्रसेन बन्दी था, परन्तु मेरी बहन को यह बताया गया था कि वह मार डाला गया है। इससे वह बेचारी सती हो गयी है। मेरा भानजा भी बन्दी बना लिया गया है। परन्तु यह विख्यात किया जा रहा है कि वह अपनी माँ के साथ जलकर मर गया है। हमारे अन्य सम्बन्धी मार डाले गये हैं। इनके अतिरिक्त लवपुर में बलात्कार और अत्याचार बहुत अधिक मात्रा में हुये हैं। उसका कहना था कि काकूष का कुछ भी भरोसा नहीं। इन परस्पर-विरोधी समाचारों से मैं असमंजस में पड़ गया हूँ। मैं नहीं जानता कि क्या किया जावे ?"

विक्रम को यह बात सुनकर भारी क्रोध आया। उसने कहा—"आपने हमसे पूछे बिना हम पर सन्देह कर लिया है। यह कोई बुद्धिमत्ता का चिह्न नहीं। हमने काकूष को यह लिखा था कि चन्द्रसेन अथवा

अन्य किसी ब्रह्मावर्तनिवासी को राज्य सौंपकर वह लौट जाये। इसके विपरीत उसने यहां अपना राज्य स्थापित करना चाहा था। हमने जनता के समक्ष यह घोषणा कर दी है कि हमको राज्य अपने लिये नहीं चाहिये। इस पर भी आपने अपनी सेना हमारे विरुद्ध लड़ने के लिये खड़ी कर दी है। इसको मैं देश का दुर्भाग्य ही समझता हूँ।

"देखिये राजकुमार! यदि आपको काकूप की बात पर विश्वास है तो आप अभी लौट जाइये। काकूप को कहिये कि चन्द्रसेन को आपसे मिला दे और उसको स्वतन्त्र हो आपसे बात करने दे। उनसे बात करने पर यदि आपको सन्तोष हो जावे कि काकूप का कथन सत्य है, तो हम यहां से ही लौट जायेंगे। एक पग भी आगे नहीं बढ़ेंगे।

"मैं पांच दिन तक यहां प्रतीक्षा करूंगा। आप ऐसा करवा लीजिए और हमको विश्वास दिलवा दीजिए कि यह हो गया है। तब हम काश्मीर लौट जायेंगे।"

"मैं आपसे यही आश्वासन लेने आया हूँ। आप अपने दूत को मेरे साथ भेज दीजिए।" किसी को काकूप के कहने पर विश्वास नहीं था। इन्द्रप्रस्थ के राजकुमार के विषय में सन्देह किया जा रहा था। इस कारण यह एक विकट प्रश्न हो गया था कि किसको राजकुमार के साथ भेजा जावे। इस विषय पर विचार हो ही रहा था, जब भास्कर ने आगे बढ़कर कहा—"श्रीमान्! आप व्यर्थ की चिन्ता में पड़े हैं। मैं आपका दूत बनकर इन महाशय के साथ जाने के लिये तैयार हूँ।"

भास्कर के कहने को सुन विक्रम गम्भीर हो गया। उसने बहुत विचार कर कहा—"वीर भास्कर! यह काम अति भययुक्त है। यदि कुछ भी गड़बड़ हुई तो हमारे दूत का सिर काटकर गान्धार-पताका के साथ लटका दिया जावेगा।"

"महाराज, मेरा सिर काटने के लिये अभी तलवार नही बनी। शायद उसके लिये अभी लोहा भी तैयार नही हुआ। और फिर वह पताका ही टूट ही जावेगी, जिसके साथ मेरा सिर लटकाया जावेगा। आप मुझ को जाने की स्वीकृति दीजिये। मैं अपना एक साथी साथ ले जाना चाहूँगा।"

भास्कर का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। इन्द्रप्रस्थ के राजकुमार के साथ भास्कर को विदा कर दिया गया। जाने से पूर्व विक्रम ने इन्द्रप्रस्थ के राजकुमार को कहा—"यदि पाँचवें दिन से पूर्व भास्कर यहाँ नही पहुँचा तो इन्द्रप्रस्थ की ईट से ईट बजा दी जायेगी।"

(४)

इन्द्रप्रस्थ का राजकुमार पविधर, भास्कर के साथ लवपुर जा पहुँचा। काकूष उससे सचेत था और दो दिन की उसकी लवपुर से अनुपस्थिति का उसको ज्ञान था। यद्यपि इन्द्रप्रस्थ की सेना अपने उपयुक्त स्थान पर पहुँच रही थी और उनमें एक भी व्यक्ति नही था, जो बता सकता कि पविधर कहाँ रहा है, परन्तु इतना तो स्पष्ट था कि वह लवपुर में नही था। इतना ही काकूष के मन में सदेह उत्पन्न करने के लिये पर्याप्त था। बहुत रात गयी जब पविधर अपने शिविर में पहुँचा। भास्कर और उसके साथी के विषय में आदेश देकर वह सोया। अगले दिन प्रात-काल ही काकूष ने अपने प्रतिहार के हाथ उसको बुला भेजा। प्रतिहार ने झुककर प्रणाम कर काकूष का सदेश दिया—"महाराज आपसे भेंट की इच्छा रखते हैं। एक अत्यावश्यक विषय में परामर्श करना है और वे चाहते है कि आप अवलिम्ब दर्शन देने की कृपा करें।"

पविधर ने भास्कर को जगवाया और अपने साथ चलने को कहा। राजकुमार चाहता था कि उसके सम्मुख ही चन्द्रसेन के विषय म बात-

चीत हो जाये। उसका विचार था कि यदि इस वार्त्तालाप से काश्मीर के दूत को विश्वास हो जावे कि काकूप के मन में छलकपट नहीं तो युद्ध बन्द हो सकता है। परन्तु जब वह भास्कर के साथ महल के द्वार पर पहुँचा, तो भास्कर को भीतर जाने से रोक दिया गया। पविधर ने पूछा—"यह क्यों ?" उत्तर मिला। "महाराज की आज्ञा है।"

"अच्छी बात है। महाराज से जाकर कह दो, यह मेरे साथ आवेंगे।" द्वारपाल ने कहा—'आप चलिये। इनके विषय में पूछ कर ले चलूंगा।"

"नहीं," पविधर ने सतर्क हो कहा—"मैं यहाँ ही प्रतीक्षा करता हूँ। जाकर पूछ आओ।" विवश द्वारपाल ने एक साथी को भीतर भेज दिया। घड़ीभर प्रतीक्षा करने पर दस सुभट राजप्रासाद से निकले और पविधर को घेरकर खड़े हो गये। सुभटों के नायक ने कहा—'चलिये, महाराज की आज्ञा है।"

पविधर असमंजस में पड़ गया। उसने डरते-डरते पूछा—"क्या मैं बन्दी हूँ ?"

"यह हम नहीं जानते।" नायक ने कहा।

भास्कर यह वार्त्तालाप सुन रहा था। उसने राजकुमार के मुख की ओर देखा। उस पर चिन्ता के लक्षण देख उसने कहा—"महाराज ! भीतर मत जाइये। ये लोग आपको मार डालेंगे।"

राजकुमार ने उत्तर नहीं दिया। नायक ने पविधर की बाँह पकड़कर कहा—"चलिए।' राजकुमार ने इसको अपना अपमान समझा और उसने अपनी तलवार के मुठे पर हाथ रख लिया, परन्तु भास्कर ने तलवार निकालने का अवसर ही नहीं दिया। उसने राजकुमार की बाँह को हाथ लगाने वाले की कमर में हाथ डाल उसको उठा लिया और इस प्रकार उछालकर फेंक दिया जैसे कि वह गेंद हो। पश्चात् भास्कर ने लाठी तान ली। नायक, जो दूर जा गिरा था, विस्मय में यह

देखता ही रह गया कि क्या हो गया है। कितनी ही देर के पीछे वह भास्कर के अतुल बल का अनुमान लगा सका। दूसरे सुभट भी विस्मय में भास्कर के लम्बे-चौड़े शरीर और उसके बल को देख विचार कर रहे थे कि वे क्या करें। इस समय भास्कर ने उनको इधर-उधर हटाकर पविधर से कहा—"महाराज चलिए। देखें आपको कौन पकड़ता है।"

पविधर भास्कर के साथ अपने शिविर की ओर चल पड़ा। इस समय नायक को समझ आया कि क्या हो गया है। और उसने सुभटों को पुकारकर कहा—"पकड़ो उसको। वह जाने न पावे।"

सुभट पविधर की ओर लपके और उनको पविधर के समीप पहुँचने से रोकने के लिए भास्कर ने लाठी चलानी आरम्भ कर दी। कुछ ही क्षणों में सुभट घायल होकर भागने लगे। इस समय द्वारपाल ने भय का घंटा बजा दिया। जब तक पविधर और भास्कर अपने अश्वों तक पहुँचते पचास-साठ सैनिकों ने उनको आकर घेर लिया। भास्कर ने पचास के विरोध में भी लाठी चलानी आरम्भ कर दी। जब तक कि भास्कर इन सैनिकों को रोके हुए था, पविधर अपने अश्व पर चढ़-कर भाग गया। भास्कर ने भी समझ लिया कि यदि कुछ भी देरी और लगी तो पूर्ण सेना उसे पकड़ने के लिए आ पहुँचेगी। इस कारण उसने लाठी इतनी तेजी से चलाई कि सैनिकों की खोपड़ियाँ खटा खट फूटने लगीं। अपना मार्ग साफ कर वह घोड़े पर चढ़ पविधर के पीछे भाग खड़ा हुआ।

जब भास्कर पविधर के शिविर में पहुँचा तो उसने पूर्ण इन्द्रप्रस्थीय सेना को तैयार होने की आज्ञा दे दी। जो सेना नदी के किनारे काकूष की सेना के साथ मोर्चे पर जा पहुँची थी, उसको वापिस लौट आने की आज्ञा भेज दी। पविधर के शिविर के लोग भास्कर को बिना घायल हुए, वापिस लौटते देख, आश्चर्य करने लगे। सब उसके चारों ओर

एकत्रित हो गये और उससे बचकर निकल आने के विषय में पूछने लगे।

भास्कर ने पविधर के सम्मुख उपस्थित हो पूछा—"महाराज! अब मेरे लिए क्या आज्ञा है ?"

"अभी ठहरो। अब भय की कोई बात नहीं। तीन सहस्र सैनिक अभी हमारी रक्षा के लिए यहाँ आ उपस्थित होंगे।"

"मुझको भय नहीं लग रहा महाराज! अब मुझको यहाँ का समाचार अपने सेनापति जी के पास भेजना है।"

"वह मैं अभी भेजता हूँ।"

एक प्रहरभर में इन्द्रप्रस्थ की पूर्ण सेना शिविर में आ पहुँची। पविधर अपने सेना-नायकों को भीतर ले गया और इस नवीन परिस्थिति पर विचार करने लगा। इसी अन्तर में भास्कर अपने मन में बिना युद्ध के लवपुर विजय करने की योजना बनाने लगा था। उस समय काकूप का एक दूत पविधर के पास आया। पविधर ने उसको पृथक् में लेजाकर पूछा—"क्या चाहते हैं तुम्हारे महाराज ?"

"महाराज काकूप अपने सेवकों की मूर्खता के लिए क्षमा मांगते हैं। महाराज ने यह कहा है कि उन्होंने वे सुभट आपके सम्मान के लिए भेजे थे। आपने अपने को बंदी मान झगड़ा आरम्भ कर दिया। हमारे सेवकों को आपसे झगड़ा नहीं करना चाहिए था। महाराज काकूप का कहना है कि वे आपके मित्र हैं। इस कारण आप आइये। अपने साथ पचास-साठ सैनिक भी ला सकते हैं। वे विश्वास दिलाते हैं कि आपका बाल भी बांका नहीं होगा।"

पविधर ने गम्भीर हो कहा—"महाराज से कह दो कि मुझको उन पर उतना ही विश्वास है जितना पहले था। मैं डरकर नहीं भागा था। मेरे लौट आने का उद्देश्य यह है कि मैं आपने वार्ता अपने

शिविर में करना पसन्द करूँगा। आपके यहाँ एकान्त मिलने की आशा नही। साथ ही यहाँ पर आपको एक ऐसी योजना वताने वाला हूँ जिससे विना युद्ध के विजयश्री प्राप्त हो सके। उस योजना को उपस्थित करने वाला भी यहाँ उपस्थित है। आप आइये। मैं समझता हूँ कि जब आप भी इस योजना को सुनेंगे तो मान जावेंगे कि विना युद्ध के काश्मीर सेना वापिस की जा सकती है। महाराज से यह भी कहना कि चन्द्रसेन को भी साथ लेते आवें जिससे बातचीत का कुछ परिणाम निकल सके।"

दूत गया और न तो काकूष ही आया, न उसका कोई सदेश ही। राजकुमार पविघर को इसकी पहले ही आशा थी। इस कारण उसने अपनी पूर्ण सेना नदी पर से मँगवा ली थी। सब सेना लवपुर के बाहर राजकुमार के शिविर पर एकत्रित हो गयी थी। सेनानायको की सम्मति थी कि जिस समय काश्मीर सेना से युद्ध छिड जावे, उस समय लवपुर पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लेना चाहिये और तब तक काकूष से मैत्री प्रकट करते रहना चाहिये।

भास्कर अपने मन में एक दूसरी ही योजना वना रहा था। उसकी योजना के अनुसार काकूष को युद्ध से पहले ही वदी बना लेना आवश्यक था। उसका कहना था कि यदि ऐसा किया जा सका तो सहस्रों सैनिको की जान वच जावेगी। इतने लाभ के लिये जान का भय मोल लिया जा सकता है।

यद्यपि पविघर इस योजना के सफल होने में कुछ विशेष आशा नहीं करता था, इस पर भी वह भास्कर के शौर्य का भरोसा कर उसकी सहायता करने के लिये तैयार हो गया। काकूष को आश्चर्य इस बात से हुआ था कि काश्मीर सेना पचास कोस के अतर पर पहुँचकर ठहर गयी है। साथ ही उसको चिन्ता इस वात की थी कि इन्द्रप्रस्थ की सेना

अभी तक लवपुर के बाहर डेरा डाले पड़ी थी। चार दिन इसी प्रकार अनिश्चित मन में व्यतीत हो गये। पविधर अपने सेना-नायकों के साथ विचार-विमर्श कर रहा था और काकूप पविधर की ओर से किसी बात के चलने की प्रतीक्षा कर रहा था।

काकूप के मन्त्रीगण यह सम्मति दे रहे थे कि इन्द्रप्रस्थ की सेना को कूटनीति की बात-चीत में लगा छोड़ना चाहिये। उससे युद्ध तब तक नहीं करना चाहिये जब तक प्रधान युद्ध समाप्त न हो जावे। प्रधान युद्ध के पहिले इन्द्रप्रस्थ की सेना से युद्ध करने से अपनी सेना के दुर्बल पड़ जाने की आशंका में काकूप के सेना-नायक चुपचाप अनुकूल अवसर देख रहे थे।

चार दिन के विचार-विमर्श के उपरान्त पविधर से मिलने के लिये काकूप का दूत फिर आया। उसने पुनः महाराज काकूप की ओर से क्षमा माँगी और कहा—'महाराज चार दिन तक सेना का कार्य देखने में बहुत व्यस्त थे। इस कारण आपके कहने के अनुसार कार्य नहीं कर सके।" चन्द्रसेन के विषय में दूत ने कहा—"ब्रह्मावर्त के महाराज के राजगद्दी पर पुनः आसीन करने में देरी काश्मीर-सेना के आक्रमण के भय के कारण हो रही है। ज्यों ही वह सेना पराजित कर भगाई जा सकेगी, त्यों ही हम उनको राजगद्दी पर बैठाकर अपने देश को लौट जावेंगे। आपको यह चाहिये कि हमारी सहायता कर काश्मीर-सेना को भगा दें। यदि किसी कारण से आप यह नहीं कर सकते तो मेरा निवेदन है कि आप तटस्थ रहें और देखें कि हम अपना वचन पालन करते हैं या नहीं।"

इस संदेश का पविधर ने उत्तर दिया—"मैं आपके विचार से सर्वथा सहमत हूँ। मैं आपको अपना वचन पालन करने का अवसर देना चाहता हूँ। मुझको विश्वास भी है कि आप ऐसा करने का पूर्ण

विचार रखते हैं। रही काश्मीर-सेना से युद्ध में हमारी सेना के सहयोग की बात, इस विषय में हमारा निवेदन है कि चन्द्रसेन को यहाँ भेज दीजिये। वह हमारी सेना का नेतृत्व कर आपके साथ कधे से कधा लगाकर युद्धक्षेत्र में लडेगा।"

इस उत्तर का प्रत्युत्तर आया—"मैं आपकी बात को पसन्द करता हूँ, परन्तु चन्द्रसेन इतना भीरु है कि वह युद्धक्षेत्र में जाना नही चाहता। यदि वह योद्धा और शूर होता तो मुझको इस समर में आ कूदने की आवश्यकता ही न होती।"

इस कूटनीतिक बातचीत में पविघर कम चतुर व्यक्ति नही था। उसने लिखा—"मुझको चन्द्रसेन के विषय में आपकी बात पढ़ भारी विस्मय हुआ है। जब वह मेरी बहन से विवाह करने इन्द्रप्रस्थ गया था तो उसने अपनी शूरवीरता का परिचय दिया था। इस पर भी मुझको आपके कहने पर अविश्वास करने का कोई कारण दिखाई नही देता। क्या मैं स्वय चन्द्रसेन से मिलकर उसके मन के भावो को जान सकता हूँ? यदि सत्य ही वह, जैसा आप कहते हैं वैसा है, अर्थात् भीरु है तब तो उसको राजगद्दी पर बैठाने का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता। यह कहावत सत्य ही है—'वीरभोग्या वसुन्धरा।' ऐसी अवस्था में उसके पुत्र बन्धुक को राज्यगद्दी पर सुशोभित करने का प्रस्ताव करता हूँ। परन्तु पहिले चन्द्रसेन से मेरी भेंट हो जानी चाहिये।"

इस पर काकूष का उत्तर आया—"आपका विचार सुन मुझको बहुत प्रसन्नता हुई है। चन्द्रसेन से आपकी भेंट हो सकती है। आप यहाँ आ जावें। मैं उनसे आपकी भेंट करवा दूंगा। वह सुरापान कर दिनभर रमणियो में रमण करता रहता है। यदि आप यहाँ नहीं आ सकते तो अपने किसी विश्वस्त दूत को भेजकर, हमारे कहने का प्रमाण पा सकते हैं।"

जबसे भास्कर ने पविघर की जान बचाई थी तबसे वह पविघर के अंतरंग परामर्शदाताओं में माना जा रहा था। इन अंतिम पत्र के आने पर भी वह इस गोष्ठी में उपस्थित था। जब पविघर ने काकूप का पत्र पढ़कर सुनाया तो भास्कर ने निवेदन कर दिया—"आप अपना एक दूत भेजकर काकूप की बात को प्रमाणित कर सकते हैं।"

"मुझको उसके एक शब्द पर भी विश्वास नहीं। भास्करदेव ! जो भी दूत भेजूंगा, वह राजप्रासाद से बाहर नहीं लौटेगा।"

"महाराज ! यदि आप मुझको आज्ञा दें तो मैं भीतर जाकर बाहर आने का वचन देता हूँ।"

इससे पविघर विस्मय में उसका मुख देखता रह गया। भास्कर ने पुनः कहा—"महाराज ! मेरी एक योजना है। उसके लिये मैं आपसे पचास सैनिक साथ ले जाने के लिये माँगता हूँ। यदि मेरी योजना सफल हो गयी तो मैं बिना युद्ध के विजयश्री की प्राप्ति का आश्वासन देता हूँ।"

पविघर समझ नहीं सका कि क्या होगा, परन्तु वह भास्कर की शक्ति और साहस का प्रमाण पा चुका था। इस कारण उसने कहा—"बहुत ही भय की बात है, देख लो।"

"महाराज ! आप चिन्ता न करें। आप अपनी सेना को तैयार रखें। जब आप राजप्रासाद पर से काकूप की पताका उतरती देखें तो सेना लेकर वहाँ आ जावें और अपनी पताका चढ़ा देवें।"

भास्कर ने जब बहुत आग्रह किया तो पविघर ने अपने पचास सैनिकों को साथ जाने को तैयार कर दिया। साथ ही पूर्ण सेना को तैयार होने की आज्ञा कर दी। भास्कर ने अपने साथ चलने वाले सैनिकों को अपनी योजना समझाई और उनको अपना-अपना काम सौंप दिया। पश्चात् पविघर का पत्र ले राजप्रासाद की ओर चल पड़ा। पत्र

में पविघर ने लिखा था —"श्रीमान्! गान्धारनरेश के निमन्त्रण को म सहर्ष स्वीकार करता हूँ, परन्तु मेरा स्वास्थ्य कुछ ठीक नही। इस कारण अपने एक विश्वस्त अधिकारी भास्कर को, उसके अधीन अपने पचास योद्धाओ को देकर, भेज रहा हूँ। यदि वास्तव में चन्द्रसेन वैसा ही है, जैसा श्रीमान् ने अपने पत्र में बताया है, तो हम इसी भास्कर के नेतृत्व में अपनी सेना को नदी तट पर आक्रमणकारियो के विरुद्ध लडने के लिये भेज देंगे। यह भास्कर अकेला ही एक सेना के समान शक्ति रखता है। इसके युद्ध में जाने पर हमारी विजय निश्चित है।"

प्रासाद के द्वार पर पहुँचकर भास्कर ने पविघर का पत्र भीतर भेज दिया और कहा—"हम सबके सब महाराज चन्द्रसेन जी के दर्शन करना चाहते है।"

वहुत विचार-विमर्श के पश्चात् सबको प्रासाद के भीतर चलने की स्वीकृति मिल गयी। प्रासाद के एक विशाल आगार में एक महापुरुष राजसी ठाठवाट में बैठा था। लगभग पचास कर्मचारी इस आगार में अपने अपने आसनो पर विराजमान थे।। इस आगार के बाहर भास्कर पहुँचा तो द्वारपाल ने ऊँचे स्वर में कहा—"श्री राजकुमार पविघर के विश्वस्त दूत श्री भास्करदेव अपने सैनिको सहित महाराज काकूष की सेवा में पधार रहे है।"

भास्कर की योजना के अनुसार उसके पचास साथी आगार के बाहर ही रह गये। भास्कर अकेला भीतर गया। द्वारपाल के परिचय देने पर उसको यह पता चल गया कि वह गान्धारनरेश काकूष के सम्मुख जा रहा है। आज भास्कर की कटि के साथ तलवार बँधी थी। यद्यपि वह तलवार चलाने में इतना चतुर नही था, जितना लाठी चलाने में था, तो भी उसको यह भरोसा था कि हथियार हाथो की दृढ़ता के आधार पर चलते है और उसको अपने हाथों की दृढता पर विश्वास था।

उच्च सिंहासन पर विराजमान काकूप के सम्मुख पहुँच भास्कर ने झुककर प्रणाम किया। राजसभा में उपस्थित लोग भास्कर के शरीर की बनावट और ऊँचाई देख आश्चर्य करते थे। सबका ध्यान उसकी चार हाथ लम्बी तलवार पर भी गया और कानों ही कानों यह समाचार भी फैल गया कि यह वह योद्धा है, जो पविघर को पचास योद्धाओं से बचाकर ले गया था। इससे सबके मन में आतंक छा गया था। सिंहासनारूढ़ काकूप ने, भास्कर की नमस्कार के पश्चात्, उससे कहा—"भास्करदेव ! सत्य ही तुम राजकुमार पविघर के विश्वस्त दूत कहलाने के योग्य हो। हमें बहुत प्रसन्नता हुई है कि तुम इस आवश्यक कार्य पर नियुक्त हुए हो। अब तुम हमारे द्वारपाल के साथ भीतर जाकर चन्द्रसेन को सुरा और सुन्दरी में लीन देख सकते हो।"

"महाराज !" भास्कर ने झुककर प्रणाम कर कहा—"मैं उनके रंगमहल में जाना नहीं चाहता। अपने सेवकों को आज्ञा दीजिये कि विषयवासना से लिप्त इन महानुभाव को यहाँ उठा लावें।"

"हम उनका अपमान नहीं कर सकते।"

"मैं उसको पदच्युत करने आया हूँ। मान-अपमान किसी के कहने से नहीं होता। यह तो अपने अच्छे-बुरे कर्मों से बनता-बिगड़ता है। मेरा निवेदन है कि चन्द्रसेन जी को यहाँ बुला दें। यदि न आवें तो बलपूर्वक उठवा मँगवायें।"

"हम उनको यहाँ नहीं ला सकते।"

"तो आज्ञा दीजिये कि मेरे पाँच साथी उसको उठा लावें।"

"आप स्वयं क्यों नहीं जाते ?"

"महाराज ! यही बात तो मैं आपसे जानना चाहता हूँ कि आप उनको यहाँ क्यों नहीं बुलवा देते ?"

"वे स्वतन्त्र राजा हैं। हम उन पर बलप्रयोग नहीं कर सकते।"

"मेरे साथी वह काम कर देंगे जो आप नहीं करना चाहते।"

काकूष निरुत्तर हो रहा था। इस कारण उसने झगडा करने के विचार से कहा—"तुम मेरा अपमान कर रहे हो। मै इसको सहन नही कर सकता।"

"मैंने अपमान नही किया। मैंने तो केवल यह निवेदन किया है कि मैं अपनी इच्छा से आपके बन्दीगृह में जाना नही चाहता। आप अपने बन्दी चन्द्रसेन को यहाँ बुला दीजिये।"

"तो तुम हमारी बात पर विश्वास नही करते क्या?"

"इसमें विश्वास-अविश्वास का प्रश्न नही······।"

भास्कर काकूष की प्रत्येक गतिविधि को देख रहा था। उसने देखा कि उसने आँखो के सकेत से सभा में बैठे सभागणो को कुछ कहा है। इस कारण अपनी बात को बीच में ही बन्द कर उसने अपनी तलवार खींच ली। वह लपककर सिंहासन पर जा कूदा और काकूष के पेट में तलवार भोक दी। पश्चात् बहुत ही उच्च गर्जना करते हुए बोला—"महाराज चन्द्रसेन की जय हो।"

यह गर्जना भास्कर के बाहर खडे पचास योद्धाओ के लिये सकेत था। यद्यपि भास्कर को यह आशा नही थी कि काकूष इतनी सुगमता से मारा जावेगा, इस पर भी वह जानता था कि उसका काम आगे और अति कठिन है। आगार के भीतर और बाहर युद्ध छिड गया।

भास्कर ने काकूष का काम तमाम कर यह समझा था कि वहाँ उपस्थित लोग भयभीत हो भाग जावेंगे, परन्तु ऐसा नही हुआ। इसके विपरीत वहाँ बैठे एक व्यक्ति ने विकराल हँसी हँसते हुए आज्ञा दी—"इस दुष्ट विश्वासघाती को दण्ड दो।"

"भास्कर अपनी चार हाथ लम्बी तलवार निकाल चलाने लगा। तलवार चलाते हुए वह आगार के सिंहासन वाले कोने में खडा पचास याद्धाओ से लडने लगा। इसकी तलवार सबसे लम्बी थी और कोई

यह साहस नहीं कर सकता था कि उसकी मार के समीप आ सके। जो भी उसकी मार के अन्दर आया, उसका सिर, हाथ अथवा कोई अन्य अंग कटकर दूर जा गिरा। देखते-देखते चालीस-पचास के लगभग लोग घायल हो मैदान छोड़ गये। भास्कर ने देखा कि वह व्यक्ति, जो उसको दंड देने की आज्ञा दे रहा था, भागने वालों में सबसे आगे था। भास्कर ने उसको ललकारा भी—"ओ दंड दिलाने वाले भगोड़े! ठहर तो तनिक, हमारा हाथ भी देख जाओ।"

परन्तु वह रुका नहीं और एक द्वार खोल सब भाग गये। इस समय आगार के बाहर युद्ध छिड़ गया था। भास्कर का यह काम तो सिंह की गुफा में जाकर उस पर आक्रमण करने के समान था। भास्कर आगार के बाहर आ गया और अपने साथियों को, जो द्वारपालों का काम तमाम कर चुके थे, अपने साथ आने के लिये बोला—'आओ मेरे साथ।"

भास्कर की अपनी लम्बी तलवार रक्त से रंगी हुई और उसके साथियों को रक्त के प्यासे आते देख मार्ग में खड़े द्वारपाल भयभीत हो भाग खड़े हुए। भास्कर राजप्रासाद की छत पर चढ़कर पताका उतारने के लिये आगे बढ़ गया।

(५)

जब भास्कर राजप्रासाद की ओर गया तो पविधर ने अपनी सेना को तैयार होने की आज्ञा दे दी। उसने भास्कर के जाने के पश्चात् दो घड़ी भर की प्रतीक्षा की और पीछे सेना को नगर में घुस राज-प्रासाद पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी। इतना विश्वास था उसको झगड़ा होने का और भास्कर के युद्ध आरम्भ कर देने का कि वह पताका के हटाये जाने की प्रतीक्षा नहीं कर सका। नगर में जाने पर द्वारपालों ने उसको रोका, परन्तु पूर्ण सेना के सामने सब कुछ आँधी के सामने तिनके के समान उड़ गया। यह सब कुछ इतना अकस्मात् हुआ था

कि द्वार वन्द करने की आज्ञा मिलने से पहिले सेना नगर म घुस द्वारों पर अधिकार जमा चुकी थी। मार्ग में कहीं-कहीं छोटी-छोटी झड़पें हुईं, परन्तु सेना रुक नहीं सकी। जब सेना महल के द्वार पर पहुँची तो भास्कर प्रासाद की छत पर चढा हुआ पताका को गिराता हुआ दिखाई दिया। उसने अपनी तलवार से वार कर पताका के दड के दो टूक कर दिये थे। इन्द्रप्रस्थीय सेना नें पताका को गिरते देखा तो जयघोष किया। इस समय काकूष की सेना ने राजप्रासाद को आग लगा दी।

पविघर ने आज्ञा दी कि काकूष को पकड लिया जाय, परन्तु काकूष अश्व पर, जो वहाँ तैयार खडा था, सवार हो भाग गया। इस समय तक पूर्ण नगर में काकूष की सेना और इन्द्रप्रस्थीय सेना में युद्ध छिड़ गया था। प्रासाद के एक ओर तो आग लग गयी थी और दूसरी ओर से प्रासाद के कर्मचारी भाग रहे थे। जिस ओर से पविघर की सेना आक्रमण कर रही थी उस ओर आग लगी हुई थी।

भास्कर ने महल की छत पर खडे हुए नीचे से धुआँ उठते देखा तो अपने को फँस गया समझ नीचे की ओर भागा। बीच की छत पर अभी भी उसके साथी लड रहे थे। उसने यह घोषणा ऊँची आवाज में की कि प्रासाद को आग लग गयी है और जो अपनी जान बचाना चाहते हैं, वे भाग जावें। इस बात को सुनते ही लडाई बन्द हो गयी। भास्कर और उसके साथी अब प्रासाद से बाहर जाने का मार्ग ढूंढनें लगे। भास्कर ने उनको कहा—"महल के कर्मचारियों के पीछे चलो, वे मार्ग जानते हैं।"

महल सात छत का था और सातो छतो पर लडाई हो रही थी। भास्कर सीढियों से नीचे उतरता आता था और कहता आता था—"आग लग गयी! भाग जाओ!! आग लग गयी! भाग जाओ!!"

इस पर भी कुछ गान्धारसैनिक उसका मार्ग रोकने के लिए खडे हो जाते, परन्तु उसकी लम्बी तलवार उनका काम तमाम करती आती थी। भास्कर जब नीचे भूमि पर पहुँचा तो द्वारपाल भाग गये थे और उसका मार्ग धू-धू करता हुआ जल रहा था। यहाँ के सब आगार धुएँ से भर रहे थे और मार्ग दिखाई नही दे रहा था। साथ ही उसका दम घुटने लगा था।

इस समय महल के कुछ सेवक उसको महल के पिछवाडे की ओर भागते हुए दिखाई दिए। वह भी उनके पीछे भागा। धुएँ में दिखाई न देने के कारण सामान से ठोकरें खाता हुआ वह एक आगार से दूसरे आगार और दूसरे से तीसरे में भागता गया। सेवक उसके पीछे से आते थे और मार्ग को भलीभांति जानने के कारण आगे निकल जाते थे। वह समझ रहा था कि एक क्षण की भी देरी घातक सिद्ध हो सकती है। इस कारण ठोकरो और रुकावटो की ओर ध्यान न करता हुआ वह पिछवाडे की ओर चलता जाता था। वहाँ धुआं कम था और बाहर से वायु आ रही थी, जिससे आग अधिक और अधिक भडक रही थी। यहाँ खड़े हो भास्कर विचार करने लगा कि वह किधर जावे।

जिस आगार में वह खडा था वहाँ गर्मी इतनी अधिक थी कि खड़ा होना असम्भव था। उस आगार का लकडी का सामान गर्मी के कारण धुआं छोडने लगा था। वह देख रहा था कि एक-दो क्षण में ही वहाँ आग भड़क उठने वाली थी। इस कारण बिना अधिक विचार किए उसने सामने दिखाई देने वाली खिडकी को खोल डाला। इससे स्वच्छ वायु भीतर आयी और आग भडक उठी। खिडकी में लोहे के सीखचे लगे हुए थे। भास्कर ने सीखचे मरोडने का यत्न किया। एक-एक कर ये मुडने लगे। इस पर भी भास्कर के शरीर के निकल सकने के लिए मार्ग बनने तक आगार का सामान वेग से जलने लगा, और

उनकी लपटें उसके कपड़ों को भी लग गयीं। भास्कर ने समझा कि उसका अन्तकाल आ गया है। इससे उसने जलते कपड़ो के साथ खिड़की में से छलांग लगा दी। भास्कर लुढ़ककर खिड़की के बाहर जा गिरा।

खिड़की प्रासाद के एक प्राँगण में खुलती थी। जब भास्कर वहाँ गिरा तो इसके कपड़ो को आग लग चुकी थी। भास्कर ने तुरन्त उठकर उनको बुझाने का यत्न करना आरम्भ कर दिया। इस यत्न में वह अचेत होकर भूमि पर गिर गया। इस समय इन्द्रप्रस्थीय सेना के लोग प्रासाद के उस प्राँगण में पहुँच गये थे। उन्होंने भास्कर के जलते कपड़ो को बुझा दिया।

भास्कर को जब चेतनता हुई तो वह इन्द्रप्रस्थीय सेना के शिविर में पड़ा था और वैद्य उसके झुलसे शरीर पर औषधि लगा रहा था। चेतना आते ही उसने प्रथम बात यह पूछी—"राजकुमार कहाँ है ?"

"नगर में प्रबन्ध देख रहे हैं। काकूष भाग गया है और नगर में हमारा अधिकार हो गया है।"

"काकूष तो मर गया था।"

"नहीं ! जिसको तुमने मारा था वह काकूष नहीं था।"

भास्कर को बहुत अचम्भा हुआ। उसने वैद्य से पूछा—"मैं कब तक ठीक हो जाऊँगा ?"

"एक सप्ताह तो लग ही जावेगा।"

"तब तक तो वह न जाने कहाँ भाग जावेगा ?"

"सुना है कि नदी तट पर विक्रम से लड़ने की तैयारी कर रहा है।"

"युद्ध कब तक होगा ?"

"आज भी हो सकता है। काश्मीर-सेना प्रात से नदी पार करने की तैयारी कर रही है।

"भिषग्वर ! तुम मुझको आज ठीक नहीं कर सकते ?"

"असम्भव है। कपड़े तो तुम पहन ही नहीं सकते।"

भास्कर मन मसोस कर रह गया। रात को पविधर भास्कर को देखने आया। वह भास्कर के शौर्य और साहस को देख चुका था। इस कारण उसने कहा—"भास्कर देव, आपकी वीरता देख और सुन मैं चकित रह गया हूँ। यदि आप जैसे पाँच आदमी भी मेरे पास होते तो मैं संसार विजय कर लेता। अब बताओ किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं ?"

भास्कर ने उत्तर दिया—"महाराज ! मुझको बहुत दुःख है कि काकूप मेरे हाथ से बच गया है। यदि मैं जल न गया होता तो मैं युद्ध में अपने हाथ से उसको यमलोक में पहुँचा देता।"

"वह युद्ध से भी भाग गया है। गान्धार-सेना युद्ध में बहुत मारी गयी है। उसके लिये अब भाग जाने के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं था। उसकी सेना दो सेनाओं के बीच में आ गयी थी। काकूप नरसिंहपुर की ओर भागा जाता हुआ देखा गया है।"

"महाराज विक्रम कहाँ हैं ?"

"अभी तो नदी के पार ही हैं। कल हम उनका नगर में भव्य स्वागत करेंगे। एक बात बहुत दुःख की हुई है। चन्द्रसेन महल में बंदी था। वह उसमें ही जलकर भस्म हो गया है। बन्धुक को एक स्त्री बचाकर ले गयी थी। वह मिल गया है। मेरी बहिन तो पति की मृत्यु से पहिले ही सती हो गई थी। उसको झूठ ही यह कह दिया था कि वह विधवा हो गयी है।"

काकूप के राज्य की समाप्ति के समाचार से ब्रह्मावर्त की पूर्ण जनता आनन्दोत्सव मनाने लगी थी। लवपुर में तो घर-घर में शंख, दुंदुभी, ढोल, नगारे बजने लगे। नर-नारी, बाल-वृद्ध प्रसन्नता से पागल हो

उनकी लपटें उसके कपडो को भी लग गयी। भास्कर ने समझा कि उसका अन्तकाल आ गया है। इससे उसने जलते कपडो के साथ खिड़की में से छलांग लगा दी। भास्कर लुढ़ककर खिडकी के बाहर जा गिरा।

खिडकी प्रासाद के एक प्रांगण में खुलती थी। जब भास्कर वहाँ गिरा तो इसके कपडो को आग लग चुकी थी। भास्कर ने तुरन्त उठकर उनको बुझाने का यत्न करना आरम्भ कर दिया। इस यत्न में वह अचेत होकर भूमि पर गिर गया। इस समय इन्द्रप्रस्थीय सेना के लोग प्रासाद के उस प्रांगण में पहुँच गये थे। उन्होंने भास्कर के जलते कपडो को बुझा दिया।

भास्कर को जब चेतनता हुई तो वह इन्द्रप्रस्थीय सेना के शिविर में पडा था और वैद्य उसके झुलसे शरीर पर औषधि लगा रहा था। चेतना आते ही उसने प्रथम बात यह पूछी—"राजकुमार कहाँ है ?"

"नगर में प्रबन्ध देख रहे हैं। काकूष भाग गया है और नगर में हमारा अधिकार हो गया है।"

"काकूष तो मर गया था।"

"नही! जिसको तुमने मारा था वह काकूष नही था।"

भास्कर को बहुत अचम्भा हुआ। उसने वैद्य से पूछा—"मैं कब तक ठीक हो जाऊँगा ?"

"एक सप्ताह तो लग ही जावेगा।"

"तब तक तो वह न जाने कहाँ भाग जावेगा ?"

"सुना है कि नदी तट पर विक्रम से लडने की तैयारी कर रहा है।"

"युद्ध कब तक होगा ?"

"आज भी हो सकता है। काश्मीर-सेना प्रात से नदी पार करने की तैयारी कर रही है।

"भिषग्वर ! तुम मुझको आज ठीक नहीं कर सकते ?"

"असम्भव है। कपड़े तो तुम पहन ही नहीं सकते।"

भास्कर मन मसोस कर रह गया। रात को पविघर भास्कर को देखने आया। वह भास्कर के शौर्य और साहस को देख चुका था। इस कारण उसने कहा—"भास्कर देव, आपकी वीरता देख और सुन मैं चकित रह गया हूँ। यदि आप जैसे पाँच आदमी भी मेरे पास होते तो मैं संसार विजय कर लेता। अब बताओ किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं ?"

भास्कर ने उत्तर दिया—"महाराज ! मुझको बहुत दुःख है कि काकूप मेरे हाथ से बच गया है। यदि मैं जल न गया होता तो मैं युद्ध में अपने हाथ से उसको यमलोक में पहुँचा देता।"

"वह युद्ध से भी भाग गया है। गान्धार-सेना युद्ध में बहुत मारी गयी है। उनके लिये अब भाग जाने के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं था। उसकी सेना दो सेनाओं के बीच में आ गयी थी। काकूप नरसिंहपुर की ओर भागा जाता हुआ देखा गया है।"

"महाराज विक्रम कहाँ है ?"

"अभी तो नदी के पार ही हैं। कल हम उनका नगर में भव्य स्वागत करेंगे। एक बात बहुत दुःख की हुई है। चन्द्रसेन महल में बंदी था। वह उसमें ही जलकर भस्म हो गया है। बन्धुक को एक स्त्री बचाकर ले गयी थी। वह मिल गया है। मेरी बहिन तो पति की मृत्यु से पहिले ही सती हो गई थी। उसको झूठ ही यह कह दिया था कि वह विधवा हो गयी है।"

काकूप के राज्य की समाप्ति के समाचार से ब्रह्मावर्त की पूर्ण जनता आनन्दोत्सव मनाने लगी थी। लवपुर में तो घर-घर में शंख, दुंदुभी, ढोल, नगारे बजने लगे। नर-नारी, बाल-वृद्ध प्रसन्नता से पागल हो

घरो से निकल आये और नाचने, गाने, बजाने लगे। शिशिर में वसन्तोत्सव का-सा समय लग गया। कार्तिक में फाग खेला जाने लगा।

पविधर ने लवपुर में और ब्रह्मावर्त के उस भाग में, जहाँ से गांधार राज्य हट चुका था, घोषणा करवा दी—"काकूष ने ब्रह्मावर्त के महाराज चन्द्रसेन को राजप्रासाद में बन्दी कर रखा था और राजप्रासाद छोड़ते समय उसको आग लगवा दी, जिससे महाराज चन्द्रसेन उसमें जलकर भस्म हो गये उनका झुलसा हुआ शव मिला है। चन्द्रसेन का पुत्र बन्धुक इस आग से बचाया जा सका है। ब्रह्मावर्त से आततायी को परास्त कर निकालने में महाराज-काश्मीर की सेना ने बहुत सहायता दी है। उस सेना के सेनापति महाराज-काश्मीर के जामाता श्री विक्रमवीर कल लवपुर में पधारेंगे। हमको उनका हृदय से स्वागत करना चाहिये। नगरभर में सजावट करनी चाहिये और मगलगीत गाये जाने चाहियें।"

लवपुर के निवासियो ने इरावती नदी के घाट से, जहाँ विक्रम की नाव किनारे लगनी थी, विक्रम के निवासस्थान तक पूर्ण मार्ग को भलीभाँति सजाया। स्थान-स्थान पर विजयद्वार, पताका, बन्धनवार और पुष्प तथा मुक्तामणिजड़ित मालायें लगायी। मार्ग पर कौषेय और अतलसी दरियाँ बिछाई गयी। पुष्पवर्षा का बहुत भारी प्रबन्ध किया गया।

विक्रम के घाट पर उतरने के समय पविधर अपने भानजे बन्धुक को साथ लेकर स्वागत के लिये उपस्थित था। राज्य का सुसज्जित बजरा उसको लेने के लिये नदीपार गया था और बजरे के साथ आगे-पीछे सेना, नौकायें थी और उनमें पाँच सहस्र सैनिक भी आये थे। सबके लिये स्वागत और निवास का प्रबन्ध किया गया था।

विक्रम जब बजरे से उतरा तो पविधर उससे गले मिला और

बन्धुक ने हाथ जोड़ प्रणाम किया। विक्रम ने बालक को उठाकर गोदी में ले लिया और घाट पर खड़े हाथी में, जो उसकी सवारी के लिये आया था, चढ़कर बन्धुक को अपने साथ बैठा लिया। सबसे आगे विक्रम का हाथी था। उनसे पीछे पविधर का। पीछे स्वागतार्थ आई इन्द्रप्रस्थीय सेना और उसके पीछे काश्मीर के पाँच सहस्र सैनिक। इस प्रकार यह सवारी नगरभर में से भ्रमण करती हुई नगर के दूसरी ओर एक विशेष निर्मित शिविर में ले जाई गयी। वहाँ विक्रम और उसके साथ आयी काश्मीर-सेना का निवासस्थान था।

उसी रात भोजनोपरान्त विक्रम, पविधर और राज्य के बचे-खुचे विद्वानों की एक सभा हुई और उसमें विक्रम ने काश्मीर की ओर से घोषणा की। इसमें विक्रम ने घोषित किया—"काश्मीर राज्य की यह इच्छा नहीं कि ब्रह्मावर्त पर अपना राज्य स्थापित करे। यह राज्य ब्रह्मावर्त की राज्यसभा ही सँभालेगी। यहाँ का राजा वही होगा जिसको यह सभा निश्चय करेगी। बन्धुक अभी बालक है। हमारी पूर्ण सहानुभूति उसके साथ है। इस पर भी इस देश का राज्य तो उसको ही दिया जावेगा जिसको यहाँ की राज्यसभा निर्वाचित करेगी। बन्धुक जब बड़ा होगा, तब उसके अधिकारों पर विचार करने का अवसर आवेगा।

"काश्मीर-सेना काकूप को ब्रह्मावर्त से बाहर निकालने के लिये ही आयी है। काकूप अभी नरसिंहपुर में है और अपनी सेना का पुनर्संगठन करने का यत्न कर रहा है। यदि वह वहाँ से अपनी इच्छा से सिन्धुपार चला गया तो ठीक है, अन्यथा उससे युद्ध कर उसको सिन्धुपार कर ही काश्मीर-सेना वापिस जावेगी।

"मैं महाराज-काश्मीर की ओर से राजकुमार पविधर जी को आश्वासन दिलाता हूँ कि ब्रह्मावर्त की राज्यसभा के निर्णय पर हम किसी प्रकार का प्रभाव डालना नहीं चाहते। वे यदि अपना तथा अपने भानजे के राज्य पर अधिकार को मनवाने का यत्न करना चाहते हैं, तो राज्यसभा

के साथ परामर्श करें। हम इस विषय में किसी प्रकार का भी हस्तक्षेप नही करेंगे।"

इस घोषणा का सबने प्रसन्नता से स्वागत किया। इस सभा में, राज्यसभा में कौन श्रमन्त्रित किया जावे, इस विषय पर भी विचार किया गया। कुछ नाम विद्वानों के बताये गये और उनके विषय में अन्तिम निर्णय करने के लिये एक छोटी-सी समिति बना दी गयी।

विक्रम तब लवपुर में ही था, जब उसको चक्रधरपुर से यह सूचना मिली कि देवयानी के पुत्र हुआ है। इस समाचार से काश्मीर-सेना में विशेष रूप से और ब्रह्मावर्त में साधारण रूप से प्रसन्नता की तरग दौड गई। विक्रम को इस विजय में जब भास्कर के भाग का पता चला तो वह उसके पास पहुँचा। भास्कर आग में जल जाने के कारण अभी तक रुग्णशय्या पर लेटा हुआ था। विक्रम ने उसके पास बैठ उसका हाथ पकडकर उसका धन्यवाद किया और कहा—"भास्करदेव! मेरे पास शब्द नही कि मैं तुम्हारी प्रशसा कर सकूं। इस आयु में जो कार्य तुमने किया है, वह स्वर्ण-अक्षरो में लिखने योग्य है। मैं आज देवयानी को लिख रहा हूँ कि वह मलिन्द का धन्यवाद करे। उसके पति ने अपने प्रयत्न से इस युद्ध को बहुत छोटा कर दिया है और इस प्रकार सहस्रो सैनिको की जानें बचायी हैं।"

मलिन्द की याद आने पर भास्कर की आँखो में प्रेम के आँसू छलकाने लगे। विक्रम ने देखा तो पूछ लिया—"क्यो देवता! क्या है?"

"महाराज! मलिन्द का वियोग सताने लगा है।"

"पर भास्कर! समर अभी समाप्त नही हुआ। हमें तो काकुष का पीछा सिन्धु तक करना है और तुम्हारे बिना तो अब कार्य चल नही सकेगा।"

इससे भास्कर के मुख पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। उसने कहा—"महाराज! मैं आपके साथ चलूँगा। केवल... .." उसने गम्भीर हो और कुछ विचारकर कहा—"एक बात है। कृपया महारानी जी को लिख दीजिए कि मलिन्द को देवर्षि नारद से बचाकर रखें। मेरे मन में उसी का खटका लगा रहता है। वह अच्छा व्यक्ति नहीं है।"

विक्रम हँसकर कहने लगा—"बात तो तुम्हारी ठीक है। मैं अवश्य लिखूँगा। परन्तु एक बात मैं तुमको बताना चाहता हूँ। क्या तुम महारानी देवयानी की सखी सुमति को जानते हो?"

"हाँ महाराज!"

"देवर्षि का उससे विवाह होने वाला है।"

"सत्य?" भास्कर ने विस्मय में पूछा।

"मुझको उसके पिता महर्षि पाणिनी ने बताया था।"

"उस बूढ़े खूसठ से सुमति विवाह करेगी क्या?"

"वह अभी बूढ़ा कहाँ हुआ है? उसकी आयु डेढ़ सौ वर्ष से अधिक नहीं है। और देवताओं में यह पूर्ण युवाकाल माना जाता है।"

"आप मेरी हँसी कर रहे हैं। मैं इस समय पैंसठ वर्ष का हूँ और अपने को बूढ़ा मानता हूँ।"

"पर देवयानी तो कहती थी कि भास्कर देवता का एक और विवाह किया जा रहा है।" भास्कर इस बात से बहुत आनन्द अनुभव करने लगा था।

(६)

विक्रम ने जयपुर-विजय के तुरन्त ही पीछे अपनी सेना को एकत्रित किया और नरसिंहपुर की ओर प्रस्थान कर दिया। वह काबुल की समस्या को शीघ्रातिशीघ्र सुलझाकर चन्द्रपुर लौट जाना चाहता था।

अपने नवजात शिशु के दर्शन के लिये उसका मन व्याकुल हो रहा था।

इस समय तक भास्कर सर्वथा स्वस्थ हो चुका था और अब अति सम्मानित पद पर सेना के साथ था। सेना अब पैदल, अश्वों, रथों, हाथियो के साथ-साथ नौकाओ में भी थी। एरावती नदी में सहस्रो सैनिक नावो में थे। बीस सहस्र की सख्या में वे पश्चिम की ओर चल रहे थे।

काकूष की सेना का विनाश इतना अधिक हुआ था कि वह इसका संगठन करने में कठिनाई अनुभव कर रहा था। सेना के बहुत से सैनिक सेना छोड-छोड कर भाग रहे थे। पराजितो के साथ ऐसा ही होता है।

जब काश्मीर-सेना नरसिहपुर से पचीस कोस की दूरी पर रह गयी तो काकूष ने वहाँ से प्रस्थान कर पश्चिम की ओर चन्द्रभागा और वितस्ता के सगम पर मोर्चा जा लगाया। विक्रम ने नरसिहपुर की व्यवस्था कर काकूष का पीछा किया। अब काकूष की सेना के पीछे जाकर लोगो को भडकाने की आवश्यकता नहीं था। विक्रम का विचार था कि भागती सेना को भागने का मार्ग मिलता रहे तो ठीक रहता है। जब विक्रम की सेना सगम पर पहुँची तो काकूष की सेना भागकर सिधु नदी के तट पर जा पहुँची। जब विक्रम ने वहाँ भी उसका पीछा किया, तो काकूष का एक दूत हाथ में श्वेत पताका लिये हुए सन्धि की बातचीत करने के लिये आ पहुँचा। उसको सैनिक पकड विक्रम के सम्मुख ले आये। दूत ने काकूष का एक पत्र विक्रम को दिया। पत्र में लिखा था—
"प्रिय वीर विक्रम! मैं आपकी शूरवीरता और चतुराई का लोहा मानता हूँ। आप जैसे शूर सेनापति से पहिले मैत्री न कर सकने का मुझको शोक है। वास्तव में मेरा भ्रम था कि कश्मीर में जहाँ एक सहस्र वर्ष से कोई युद्ध नही हुआ, योद्धा और कूटनीतिज्ञ नही रहे।

यह भ्रम अब निवारण हो गया है। अब मैं काश्मीर से मैत्री कर अपना गौरव मानूंगा। मेरे विचार बदल गये हैं।

"अतएव आप लिखें कि क्या मैं मैत्री पाने की आशा कर सकता हूँ। मेरा मन अब काश्मीर के शूर सैनिकों का एक रक्त बूंद भी बहाने को नहीं करता। आशा करता हूँ कि आप मानवता के नाते इस युद्ध को समाप्त करने के लिये बातचीत करने की स्वीकृति देंगे। उत्तराकांक्षी—काकूप।"

पत्र पाकर सेनानायकों की गोष्ठी बुलायी गयी। दूत को एक दिन ठहरने के लिये कहा गया। भास्कर भी इस गोष्ठी में सम्मिलित था। सेनानायकों को यह विदित था कि घरों से निकले हुए दो-दो वर्ष हो चुके हैं और प्रायः सब सैनिक अपने बाल-बच्चों के पास जाने के लिये व्याकुल हो रहे हैं। सब युद्ध के शीघ्र समाप्त किये जाने के पक्ष में थे। उनका यह भी विचार था कि सन्धि की चर्चा द्वारा युद्ध शीघ्र समाप्त होगा। भास्कर इससे विपरीत विचार रखता था। वह समझता था कि युद्ध युद्ध करने से ही समाप्त होगा। काकूप के विषय में उसके विचार अच्छे नहीं थे। वह पविधर से काकूप का पत्रव्यवहार देख चुका था और जानता था कि वह विश्वास के योग्य नहीं है। विक्रम यद्यपि भास्कर के विचार का था, परन्तु यह विचार कर कि कोई भी अवसर, जिस पर बात शान्ति से सुलझ सके, छोड़ना नहीं चाहिये। इस कारण विक्रम का निर्णय यही हुआ कि चाहे बात सुलझने में कुछ देरी ही लग जावे, शान्ति का मार्ग ही अपनाना चाहिये। इस प्रकार सैकड़ों हत्याओं से बचा जा सकता है।

भास्कर का कहना था—"महाराज! यह काकूप बहुत धोखेबाज आदमी है। यह समय लाभ कर अपनी शक्ति बढ़ाने का यत्न करेगा।"

"इसकी देख-रेख हम रखेंगे। किंचितमात्र भी संदेह होने पर हम

विना सूचना के आक्रमण कर देंगे। इस वार्त्तालाप से एक लाभ यह होने वाला है कि यदि मैत्री से युद्ध बद होगा तो हमको इस सेना का पीछा करते हुए गान्धार तक नही जाना पडेगा। गान्धार विजय करना इतना सुगम नही होगा। वहाँ की जनता हमारे पक्ष में नहीं होगी। गान्धारसमर के समय हमारी स्थिति वही होगी जो काकूष की ब्रह्मावर्त मे थी। हमको शत्रु के देश में जाकर शत्रु से लडना पडेगा। इस पर भी मै समझता हूँ कि हमारी ही विजय होगी। परन्तु इसके लिये दस वर्ष लग जावेंगे।"

दस वर्ष की बात सुनकर सवका दिल दहल उठा। इस पर भी भास्कर ने कहा—"महाराज! गान्धार-विजय न सही, पर गान्धार-सेना को सिन्धुपार धकेलने के लिये तो प्रयत्न करना चाहिये।"

"सेनानायक भास्कर का कहना सर्वथा ठीक है। हमको यह सेना सिन्धुपार धकेल देनी है। इसमें मेरा कहना यह है कि शान्तिमय वार्त्तालाप में देरी भी लग सकती है और असफलता भी, परन्तु यदि वार्त्तालाप सफल हो गया तो सहस्रो सैनिकों की जान बच सकेगी और उनको बचाने के लिए यत्न न करना तो भारी पाप हो जावेगा।" इस प्रकार वार्त्तालाप करने की योजना स्वीकार करते हुए विक्रम ने काकूष को लिखा—"मैत्री के लिये वार्त्तालाप करने में किसी भी बुद्धिमान् व्यक्ति को 'न' नहीं करनी चाहिये। मै इस बातचीत का स्वागत करूँगा। हाँ, इसके लिए मैं चाहूँगा कि यह शीघ्रातिशीघ्र समाप्त हो सके और इसके लिए हमको अविलम्ब मिलना चाहिये।"

इस अर्थ दोनो सेनायें एक दूसरे के बहुत समीप शिविर बना रहने लगीं। इस प्रकार समीप-समीप रहने से और भेदियो को गान्धारसेना के चारो ओर के समाचार लाने से विक्रम को पता चल गया कि

गान्धारसेना दस-पाँच हजार से अधिक नहीं रही। इस ज्ञान से बातचीत में अधिक सुभीता हो गया।

वार्त्तालाप में किन-किन विषयों पर बातचीत हो, केवल इतना तय करने में कई मास लग गये। सिद्धान्तात्मक बातों में ही बहुत समय व्यतीत होता रहा था। सबसे अधिक समय इस बात पर ही लग गया कि एक देश में सेना की वृद्धि करना युद्ध की तैयारी मानी जावे अथवा न। काकूप का कहना था—"काश्मीर में सेनावृद्धि ही गान्धारों के ब्रह्मावर्त पर आक्रमण करने का कारण है। यदि वहाँ सेनापरिवर्द्धन न होता तो इस आक्रमण की आवश्यकता न होती।"

विक्रम इस मीमांसा को समझ न सका। उसने बताया—"यह ठीक है कि सेनापरिवर्द्धन हुआ, परन्तु यह कैसे पता चला कि यह परिवर्द्धन गान्धारों के विरुद्ध है?"

काकूप का उत्तर था—"आपकी सेना में वृद्धि देखकर हमको भी उसमें वृद्धि करनी पड़ी। इस प्रकार हमारे मन में एक भय समा गया कि हमारा देश विनाश को प्राप्त होने वाला है और उस भय को सदा के लिये दूर करने के लिये ब्रह्मावर्त और काश्मीर दोनों को विध्वस्त करने के लिये आक्रमण करना उचित हो गया। ब्रह्मावर्त का विध्वंस तो कर ही दिया था, परन्तु काश्मीर-सेनानायकों की कार्यपटुता के सामने पराजित होना पड़ा। इस कारण स्थायी शान्ति तब हो सकती है जब सब देशों में सेना रखनी बन्द कर दी जावे। अथवा कम से कम रखी जावे।"

विक्रम इस युक्ति से हँस पड़ा। उसने कहा—"सेना तो इतनी भय की वस्तु नहीं जितनी सेनापतियों की चतुराई और उन देशों के शासकों की मनोवृत्ति। सेना काश्मीर में बढ़ी और आक्रमण किया गान्धार देश ने। ब्रह्मावर्त में सेना बहुत अधिक थी और निश्चय हुई गान्धार की। डट कर युद्ध हुआ नहीं और भगदड़ मच गयी गान्धारसेना में। अतः युद्ध

बिना सूचना के आक्रमण कर देंगे। इस वार्त्तालाप से एक लाभ यह होने वाला है कि यदि मैत्री से युद्ध बद होगा तो हमको इस सेना का पीछा करते हुए गान्धार तक नही जाना पड़ेगा। गान्धार विजय करना इतना सुगम नही होगा। वहाँ की जनता हमारे पक्ष में नहीं होगी। गान्धारसमर के समय हमारी स्थिति वही होगी जो काकूष की ब्रह्मावर्त मे थी। हमको शत्रु के देश में जाकर शत्रु से लडना पडेगा। इस पर भी मै समझता हूँ कि हमारी ही विजय होगी। परन्तु इसके लिये दस वर्ष लग जावेंगे।"

दस वर्ष की बात सुनकर सबका दिल दहल उठा। इस पर भी भास्कर ने कहा—"महाराज! गान्धार-विजय न सही, पर गान्धार-सेना को सिन्धुपार धकेलने के लिये तो प्रयत्न करना चाहिये।"

"सेनानायक भास्कर का कहना सर्वथा ठीक है। हमको यह सेना सिन्धुपार धकेल देनी है। इसमें मेरा कहना यह है कि शान्तिमय वार्त्तालाप में देरी भी लग सकती है और असफलता भी, परन्तु यदि वार्त्तालाप सफल हो गया तो सहस्रो सैनिको की जान बच सकेगी और उनको बचाने के लिए यत्न न करना तो भारी पाप हो जावेगा।" इस प्रकार वार्त्तालाप करने की योजना स्वीकार करते हुए विक्रम ने काकूष को लिखा—"मैत्री के लिये वार्त्तालाप करने में किसी भी बुद्धिमान् व्यक्ति को 'न' नही करनी चाहिये। मै इस बातचीत का स्वागत करूँगा। हाँ, इसके लिए मै चाहूँगा कि यह शीघ्रातिशीघ्र समाप्त हो सके और इसके लिए हमको अविलम्ब मिलना चाहिये।"

इस मध्य दोनो सेनायें एक दूसरे के बहुत समीप शिविर बना रहने लगीं। इस प्रकार समीप-समीप रहने से और भेदियो को गान्धारसेना के चारों ओर के समाचार लाने से विक्रम को पता चल गया कि

गान्धारसेना दस-पांच हजार से अधिक नहीं रही। इस ज्ञान से बातचीत में अधिक सुभीता हो गया।

वार्त्तालाप में किन-किन विषयों पर बातचीत हो, केवल इतना तय करने में कई मास लग गये। सिद्धान्तात्मक बातों में ही बहुत समय व्यतीत होता रहा था। सबसे अधिक समय इस बात पर ही लग गया कि एक देश में सेना की वृद्धि करना युद्ध की तैयारी मानी जावे अथवा न। काकूप का कहना था—"काश्मीर में सेनावृद्धि ही गान्धारों के ब्रह्मावर्त पर आक्रमण करने का कारण है। यदि वहाँ सेनापरिवर्द्धन न होता तो इस आक्रमण की आवश्यकता न होती।"

विक्रम इस मीमांसा को समझ न सका। उसने बताया—"यह ठीक है कि सेनापरिवर्द्धन हुआ, परन्तु यह कैसे पता चला कि यह परिवर्द्धन गान्धारों के विरुद्ध है ?"

काकूप का उत्तर था—"आपकी सेना में वृद्धि देखकर हमको भी उसमें वृद्धि करनी पड़ी। इस प्रकार हमारे मन में एक भय समा गया कि हमारा देश विनाश को प्राप्त होने वाला है और इस भय को सदा के लिये दूर करने के लिये ब्रह्मावर्त और काश्मीर दोनों को विध्वंस करने के लिये आक्रमण करना उचित हो गया। ब्रह्मावर्त का विध्वंस तो कर ही दिया था, परन्तु काश्मीर-सेनानायकों की कार्यपटुता के सामने पराजित होना पड़ा। इस कारण स्थायी शान्ति तब हो सकती है जब सब देशों में सेना रखनी बन्द कर दी जावे। अथवा कम से कम रखी जावे।"

विक्रम इस युक्ति से हँस पड़ा। उसने कहा—"सेना तो इतनी भय की वस्तु नहीं जितनी सेनापतियों की चतुराई और उन देशों के शासकों की मनोवृत्ति। सेना काश्मीर में बढ़ी और आक्रमण किया गान्धार देश ने। ब्रह्मावर्त में सेना बहुत अधिक थी और विजय हुई गान्धार की। डट कर युद्ध हुआ नहीं और भगदड़ मच गयी गान्धारसेना में। अतः युद्ध

ग्रौर विजय होती हैं दूषित मनोवृत्ति के कारण ग्रथवा सेनानायको की चतुराई के कारण। इस कारण सेना कम करने से ग्रधिक उचित ता आक्रमण करने वाले देशो के शासको को ग्रथवा विजय प्राप्त करने वाली सेना के नायको को पकडकर सिन्धु नदी में डुबो देना होगा। इस-से दूसरे देश निर्भय हो रह सकेंगे।"

"योग्य ग्रौर कुशल लोगो को युद्धकार्य में न लगाकर जनता के सेवाकार्य में लगाया जाना चाहिये।"

"ठीक है। इसी प्रकार सेना को आक्रमण करने के कार्य में योग न कर सुरक्षा के कार्य में लगाया जा सकता है।"

"जब सेना नही होगी तो बुद्धिमान् लोग युद्ध के विषय में न सोच किसी ग्रन्य विषय की बात सोचा करेंगे।"

"यह ग्रन्य विषय दूसरो को हानि पहुँचाने का नही हो सकता क्या ? युद्ध में तो लोग लडते हैं ग्रौर उनसे पहुँचाई हानि प्रत्यक्ष हो जाती है, परन्तु कूटनीति से की गयी हानि घातक होते हुए भी प्रत्यक्ष नही होती। सबसे बडी बात यह है कि कूटनीति के चलाने वाले स्वय देवता बने रहते हैं ग्रौर प्रजा उजडती, मरती, खपती है।"

"तो फिर इस युद्ध के भय का निवारण कैसे हो ? इस भय के कारण ही एक दूसरे पर आक्रमण होते ह।"

इस प्रकार वार्त्तालाप चलते-चलते महीनो व्यतीत हो गए। वसन्त ऋतु गयी तो ग्रीष्म ऋतु ग्रायी ग्रौर ग्रीष्म व्यतीत हुई तो वर्षा ग्रा गयी। वर्षा समाप्त हो पुन: शिशिर ग्रा पहुँची। नदियो में बाढ ग्रायी ग्रौर फिर जल उतर गए, परन्तु युक्तियाँ समाप्त नहीं हुईं। काश्मीर-सेना का धीरज टूट गया।

भास्कर की मोटी बुद्धि में यह सब वार्त्तालाप व्यर्थ की प्रतीत हो रही थी। उसने एक दिन काकूष की सेना के एक नायक से, जिससे वह

कुश्ती किया करता था, कहा—"भूरे नायक ! सुनाओ कैसी कट रही है।"

भूरे ने अति उदास चित्त से कहा—"भाई, हम तो उकता गये हैं। घरों से निकले हुए तीन वर्ष हो गए हैं। पत्नी का रूप-रंग भी भूल गया है। और वह भी मेरी अनुपस्थिति में दो बच्चों की माँ बन गयी है।"

भास्कर को मलिन्द की याद आ गयी। वह गम्भीर हो चुप करे रहा। शिविर में आकर वह विचार करने लगा कि किस प्रकार युद्ध बन्द कराया जाये। वह यह तो चाहता था कि गान्धारसेना सिन्धु पार कर दी जावे, परन्तु वह शान्तिमय वार्त्तालाप को इसका उपाय नहीं समझता था। दूसरी ओर उसको मलिन्द और नारद की समस्या दुःखी कर रही थी। नारद संगीताचार्य होने के कारण रसिक प्रकृति का माना जाता था। साथ ही उसका मलिन्द से मेल-जोल उसके मस्तिष्क में उथल-पुथल मचा रहा था। अब भूरे की बात, कि उसकी पत्नी के दो बच्चे उसकी अनुपस्थिति में हो गए हैं, ने उसको पागल बना दिया।

रातभर वह विचार करता रहा और अन्त में एक योजना उसके मन को सूझी। अगले दिन उसने भूरे से मिलकर दोनों सेनाओं के मल्लों के दंगल करवाने आरम्भ कर दिये। एक-दो दंगल जब हो गए तो अन्त में यह निश्चय हुआ कि भास्कर का भूरे से मल्लयुद्ध हो। भास्कर ने अपनी सेना में यह विख्यात कर दिया कि गान्धार कुछ बेईमानी करने वाले प्रतीत होते हैं। अन्यथा भास्कर से कौन जीतने की आशा कर सकता है। इस पर काश्मीरसेना के सैनिकों को जोश चढ़ आया और कानों-कान यह समाचार फैल गया कि उस दिन दंगल में कुछ दंगा होने वाला है। इससे सहस्रों की संख्या में काश्मीरसैनिक अपने अस्त्र-शस्त्रों के साथ मैदान में जा पहुँचे। भास्कर एक विख्यात पहलवान था। इस

श्रौर विजय होती हैं दूषित मनोवृत्ति के कारण अथवा सेनानायको की चतुराई के कारण। इस कारण सेना कम करने से अधिक उचित ता आक्रमण करने वाले देशो के शासको को अथवा विजय प्राप्त करने वाली सेना के नायको को पकडकर सिन्धु नदी में डुबो देना होगा। इस-से दूसरे देश निर्भय हो रह सकेंगे।"

"योग्य श्रौर कुशल लोगो को युद्धकार्य में न लगाकर जनता के सेवाकार्य में लगाया जाना चाहिये।"

"ठीक है। इसी प्रकार सेना को आक्रमण करने के कार्य में योग न कर सुरक्षा के कार्य में लगाया जा सकता है।"

"जब सेना नही होगी तो बुद्धिमान् लोग युद्ध के विषय में न सोच किसी अन्य विषय की बात सोचा करेंगे।"

"यह अन्य विषय दूसरो को हानि पहुँचाने का नही हो सकता क्या ? युद्ध में तो लोग लडते है श्रौर उनसे पहुँचाई हानि प्रत्यक्ष हो जाती है, परन्तु कूटनीति से की गयी हानि घातक होते हुए भी प्रत्यक्ष नही होती। सबसे बडी बात यह है कि कूटनीति के चलाने वाले स्वय देवता बने रहते हैं श्रौर प्रजा उजडती, मरती, खपती है।"

"तो फिर इस युद्ध के भय का निवारण कैसे हो ? इस भय के कारण ही एक दूसरे पर आक्रमण होते ह।"

इस प्रकार वार्त्तालाप चलते-चलते महीनो व्यतीत हो गए। वसन्त ऋतु गयी तो ग्रीष्म ऋतु आयी श्रौर ग्रीष्म व्यतीत हुई तो वर्षा आ गयी। वर्षा समाप्त हो पुन. शिशिर आ पहुँची। नदियों में बाढ आयी श्रौर फिर जल उतर गए, परन्तु युक्तियाँ समाप्त नही हुईं। काश्मीर-सेना का धीरज टूट गया।

भास्कर की मोटी बुद्धि में यह सब वार्त्तालाप व्यर्थ की प्रतीत हो रही थी। उसने एक दिन काकूष की सेना के एक नायक से, जिससे वह

मान गया, परन्तु तीसरी बार जब पुनः वही परिस्थिति उत्पन्न हो गयी तो भास्कर ने यह कह दिया कि वह जीत गया है। मध्यस्थ ने भास्कर को विजयी घोषित कर दिया। इस पर गान्धारों ने बहुत शोर मचाया। एक गान्धार-सैनिक मैदान में निकल आया और मध्यस्थ को गाली देने लगा। यह काश्मीर-सैनिकों को असह्य हो गया और उन गान्धार-सैनिक को पकड़कर पीटने लगे। इससे तो चारों ओर गाली-गलौज और मुक्का-मुक्की होने लगी। भास्कर इतने से सन्तुष्ट नहीं था। उसने भागकर अपना खड्ग निकाल लिया। अब दोनों ओर से तलवारें निकल आयीं और घमासान युद्ध होने लगा। गान्धारों की संख्या कम थी। इस कारण वे भाग उठे। काश्मीर-सैनिकों ने उनका पीछा किया। भास्कर सबसे आगे था। उसने कुछ सैनिक अपने शिविर में भेज दिए जिससे और सैनिक आ जावें और जो सैनिक उसके साथ गान्धारों का पीछा कर रहे थे उनसे कहा कि आज हमने इन बेईमानों को सिन्धु पार भगा देना है। शिविर से और सहायता आ पहुँची तो इन्होंने गान्धार-शिविर पर धावा बोल दिया। शेष काम आधे प्रहर का था। जिन गान्धारों को नौकाएँ मिल सकीं, वे नौकाओं में, अन्य वैसे ही तैरकर नदी पार करने लगे। शिविर को आग लगा दी गयी और उस दिन साय होने से पूर्व पूर्ण गान्धारसेना या तो नदी पार हो गयी या नदी में डूबकर मर गयी।

दंगल और इस सब झगड़े के समय काकूद और विश्रम कुछ अन्य दोनों ओर के सेना-नायकों के साथ एक गम्भीर राजनैतिक विषय पर चर्चा कर रहे थे। विश्रम मन में तो यह समझ चुका था कि उनकी वार्तालाप के सफल होने की कोई आशा नहीं। इस पर भी वह इसको बन्द करने का कोई उपाय नहीं पा रहा था। जब बातचीत बहुत गर्मा-गर्मी चल रही थी, एक प्रतिहार सूचना लेकर आया कि दोनों सेनाओं में युद्ध

कारण गान्धारसेना के लोग भी भारी सख्या में यह कुश्ती देखने को आये थे।

भास्कर ने अपनी योजना का किसी को रहस्य नही बताया। वह स्वयमेव उसको सफल करने की चिन्ता में लगा हुआ था। उसने भूरे से कुश्ती करते समय झगडा करने का निश्चय कर लिया था। इस कारण वह घूम-घूम कर अपने साथियो को कह रहा था कि उसको विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ है कि गान्धार आज कोई शरारत करने वाले हैं। उसके साथी उसकी बात सुनकर कहते थे, यदि इन कायरों ने कुछ भी अनियमित काम किया तो उनको धक्के मार-मार कर सिन्धु पार कर देंगे। यही तो भास्कर चाहता था। उस दिन ऐसा अवसर उपस्थित करना चाहता था, जिससे दोनो सेनाओ में झगडा हो जावे। एक बार लडाई आरम्भ हुई तो उसको अन्तिम परिणाम तक ले जाना उसका काम था।

दगल का समय आया। भास्कर का एक नायक-मित्र मध्यस्थ था। उसको भास्कर ने स्वपक्ष में कर लिया था। वह भी भास्कर के विचार का ही था। इससे उत्साहित हो भास्कर कुश्ती के लिए मैदान में निकल आया। उधर भूरे भी आया और कुश्ती आरम्भ हो गई। भास्कर ने पहले ही क्षण में उसको उठाकर भूमि पर पटककर लिटा दिया। मध्यस्थ ने भूरे को हारा गया घोषित किया। वास्तव में भास्कर ने उसको पूरा पीठ के बल पर नही लिटाया था। इस कारण भूरे ने और गान्धारों ने कहा कि भूरे अभी चित्त नहीं हुआ। मध्यस्थ ने अपने निर्णय को ठीक बताने का हठ किया, परन्तु जब गान्धारों ने बहुत हल्ला किया तो भास्कर पुन कुश्ती करने के लिए तैयार हो गया।

दूसरी बार कुश्ती हुई। भास्कर की चतुराई इस बात में थी कि वह भूरे को ऐसे ढंग से चित्त करता था कि गान्धारों को सदेह करने का अवसर मिल जाता था। इस बार फिर मध्यस्थ ने निर्णय भास्कर के पक्ष में दिया। गान्धारो ने पुनः हल्ला किया। इस वार भी भास्कर

को बुलाकर, पूर्ण वृत्तान्त सुना और अति प्रसन्न हो उसको भारी पुरस्कार दिया।

अब विक्रम के लिये समस्या केवल यह रह गयी कि पूर्ण सिन्धु नदी के तट पर दुर्ग बनवा दिये जावें जिससे ब्रह्मावर्त सुरक्षित रह सके। इसके लिये पविधर को बुला भेजा गया। उसके सम्मुख दुर्गों की पूर्ण योजना वर्णन कर दी गयी।

इस समय तक ब्रह्मावर्त में गणराज्य की व्यवस्था कर दी गयी थी। चन्द्रसेन के पुत्र बन्धुक के विषय में यह निश्चय हो चुका था कि जब तक वह शिक्षा-दीक्षा से अलंकृत हो तैयार नहीं होता, तब तक उसको राजा मानना व्यर्थ है। इस कारण उसको इन्द्रप्रस्थ भेज दिया गया जिससे वह अपने नाना के यहाँ रहकर शिक्षा प्राप्त कर सके। एक राज्य-परिषद् बना दी गयी और पविधर उस परिषद् में गणपति नियुक्त हुआ। इस प्रकार ब्रह्मावर्त का राज्य चलने लगा। ब्रह्मावर्त की सेना का नवीन ढंग पर संगठन किया गया। वहाँ की कर-व्यवस्था और राज्य की व्यवस्था नवीन ढंग पर चला दी गयी।

इस सब समय में काश्मीर-सेनापति और काकूप संधि की बातचीत करते रहते थे। संधि-वार्त्तालाप असफल रहा और सफलता मिली बलप्रयोग से। दुर्गों की योजना और उसके लिये स्थानों का निश्चय करने में भी छः मास लग गये। इस समय तक सब काश्मीरसेना वापिस कर दी गयी थी। भास्कर भी चक्रधरपुर को लौट गया था।

चल पडा है। इस समाचार को दोनो सेनापतियों ने सत्य नही माना। इस पर भी जब फिर सूचना आई कि गान्धार-शिविर को आग लगा दी गई है तो विवश गोष्ठी के सब लोग उठकर बाहर आए और अपने-अपने अश्वो पर सवार हो गान्धार-शिविर की ओर चल पड़े। इस समय तक सूर्यास्त हो चुका था और दूर शिविर के जलने से उठ रही लपटो से आकाश प्रकाशित हो रहा था। काकूष समझ गया कि जानबूझ कर अथवा अनजाने में उसकी पूर्ण पराजय करा दी गयी है। इस बात का विश्वास हो जाने पर उसने घोडे को खडा कर लिया और विक्रम की ओर देखकर बोला—"मैं नही जानता कि यह कैसे हुआ है। आपकी आज्ञा से हुआ है अथवा किसी अन्य की शरारत से। परन्तु मैं देखता हूँ कि मेरी पूर्ण सेना का विनाश हो चुका है। अब हम क्या मित्र के रूप में पृथक् हो रहे हैं अथवा शत्रु के रूप में ? बताइये आप मित्रता चाहते हैं अथवा शत्रुता ?"

"मैंने एक वर्ष आपसे मैत्री बनाने के लिए व्यय किया है और मैं सौगन्धपूर्वक कहता हूँ कि यह कैसे हुआ है मैं नहीं जानता। इस सब कुछ होने पर भी मैं चाहूँगा कि हम परस्पर मित्र रह सकें। गान्धार और काश्मीर की मैत्री के लिए हम यत्न करते रहें और इस प्रकार इस देश के इस भाग में हम शान्ति रख सकें।"

काकूष भलीभाँति जानता था कि वह वहाँ झगडा कर जीवित बच-कर नहीं जा सकता। इस कारण चुपचाप हाथ जोड प्रणाम कर सिन्धु नदी में घोडा डाल तैरता हुआ पार हो गया।

इस प्रकार काकूष को सिन्धु नदी के पार कर विक्रम को दुःख नहीं हुआ। जिस समस्या का उसको कोई सुझाव प्रतीत नही होता था वह एक चमत्कारिक ढग और अति सुगमता से सम्पन्न हो गयी। पीछे जब उसको इसमें भी भास्कर का हाथ प्रतीत हुआ तो उसने भास्कर

को बुलाकर, पूर्ण वृत्तान्त सुना और अति प्रसन्न हो उसको भारी पुरस्कार दिया।

अब विक्रम के लिये समस्या केवल यह रह गयी कि पूर्ण सिन्धु नदी के तट पर दुर्ग बनवा दिये जावें जिनसे ब्रह्मावर्त सुरक्षित रह सके। इसके लिये पविधर को बुला भेजा गया। उसके सम्मुख दुर्गों की पूर्ण योजना वर्णन कर दी गयी।

इस समय तक ब्रह्मावर्त में गणराज्य की व्यवस्था कर दी गयी थी। चन्द्रसेन के पुत्र बन्धुक के विषय में यह निश्चय हो चुका था कि जब तक वह शिक्षा-दीक्षा से अलंकृत हो तैयार नहीं होता, तब तक उसको राजा मानना व्यर्थ है। इस कारण उसको इन्द्रप्रस्थ भेज दिया गया जिससे वह अपने नाना के यहाँ रहकर शिक्षा प्राप्त कर सके। एक राज्य-परिषद् बना दी गयी और पविधर उस परिषद् में गणपति नियुक्त हुआ। इस प्रकार ब्रह्मावर्त का राज्य चलने लगा। ब्रह्मावर्त की सेना का नवीन ढंग पर संगठन किया गया। वहाँ की कर-व्यवस्था और राज्य की व्यवस्था नवीन ढंग पर चला दी गयी।

इस सब समय में काश्मीर-सेनापति और काकूप संधि की बातचीत करते रहते थे। संधि-वार्त्तालाप असफल रहा और सफलता मिली बलप्रयोग से। दुर्गों की योजना और उसके लिये स्थानों का निश्चय करने में भी छः मास लग गये। इस समय तक सब काश्मीरसेना वापिस कर दी गयी थी। भास्कर भी नगरधरपुर को लौट गया था।

नहुष का पतन

करण इच्छा न रहते भी शची के पास यह प्रस्ताव करने गया कि वह नहुष से विवाह कर ले। सीमा पार कर वह उस गाँव में पहुँचा, जहाँ शची रहती थी। गाँव की रक्षा के लिये सेना की एक प्रबल टुकड़ी नियुक्त थी। शची से मिलने के लिए करण को यह कहना पड़ा कि देवलोक से नहुष का दूत आया है और श्रीमती इन्द्राणी से भेंट करना चाहता है। करण की सूचना शची के पास पहुँचा दी गयी। इस दिन नारद उससे मिलने आया हुआ था, और उससे देवलोक की अवस्था का वर्णन कर रहा था। करण के आने की उसे नारद की उपस्थिति में सूचना मिली। इन्द्राणी करण का नाम सुन नारद का मुख देखने लगी। नारद उसके देखने का अभिप्राय समझ बोला—"यह नहुष का महामन्त्री है। सुनने में आया है कि भला पुरुष है। इस पर भी किसी कारणवश उसका सेवक है। इसने एक देवकन्या से विवाह कर लिया है। और कहा जाता है कि वह बहुत सुखी है।"

इस प्रशसात्मक परिचय को सुन उसने करण को बुलाने की आज्ञा दे दी। सैनिक करण को लेकर आये तो घर के आँगन में उसे बैठाया गया। पश्चात् शची नारद के साथ वहाँ पहुँची। करण ने उठकर शची को आदर से प्रणाम किया और खड़ा रहा। शची बैठ गयी और पहिले उसने नारद को एक चौकी पर बैठने को कहा, पश्चात् करण को बैठने का आदेश दिया।

जब कारण बैठ गया तो शची ने उसको अपने आने का आशय वर्णन करने को कहा। कारण उसके सौंदर्य से प्रभावित हो मन्त्रमुग्ध की भाँति उसका मुख देख रहा था। अब इस प्रकार सम्बोधन किये जाने पर सचेत हो कहने लगा—"मैं देवलोक का महामात्य हूँ। महाराज नहुष की आज्ञा से सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। उन्होंने एक संदेश निवेदन किया है।"

"तो कहो!" शची ने बात को शीघ्र समाप्त करने के लिए कहा।

"श्रीमती जी!" कारण ने आगे झुककर कहा—"मुझको आज्ञा यह है कि महाराज का संदेश केवल आपके ही कर्णगोचर करूँ।" इतना कहकर नारद की ओर देखने लगा।

"ओह मैं समझी थी कि आप इनको जानते हैं। ये महर्षि नारद हैं। इनसे हमारी कोई बात छुपी नहीं है।"

कारण ने झुककर देवर्षि को नमस्कार किया और कहा "मैं क्षमा चाहता हूँ महारानी! मेरा नम्र निवेदन है कि मेरे स्वामी ने मुझको आपके लिये ही और केवल आपके लिये ही संदेश दिया है। आप पीछे जिसको चाहें बता सकती हैं, परन्तु मैं तो केवल आपको ही निवेदन कर सकता हूँ।"

इस पर नारद ने कहा—"महारानी जी! मैं कुछ दूर ठहरता हूँ, जिससे यह भद्रपुरुष अपना कार्य शुद्ध-आत्मा से कर सकें।" नारद उठकर दूर चला गया। वह इसी आँगन में दूर, जहाँ से वह उनकी बातों को न सुन सके परन्तु उनको देख सके, जा खड़ा हुआ और उनकी बात समाप्त होने की प्रतीक्षा करने लगा। उसके चले जाने के पश्चात् कारण ने अपनी बात कही—"माननीय देवी जी! कुछ मास हुए मेरे स्वामी ने आपके दर्शन किये थे। यूँ तो उन्होंने आपको कई बार भी देखा था, जब वे आपके भवन में सेवा कार्य करते थे। परन्तु इतने समीप से दर्शन, जैसे अब हुए थे, पहले नहीं हुए थे।"

"जब वह सेवक था, तब तो हमने उसकी ओर कभी ध्यान भी नहीं दिया था। परन्तु अब की बात तो हमको स्मरण नहीं कि कैसे भेंट हुई है उससे।"

"इसी भवन में। शायद इसी स्थान पर। कुछ मास हुए एक जौहरी रत्न बेंचने आया था और आपने दो हीरे पसन्द किये थे।"

"तो वह जौहरी तुम्हारा स्वामी नहुष था! वह धूर्त और चतुर बहुरूपिया है। पता चल जाता तो पकड़वा लिया जाता। यहाँ विक्रम जैसा दयालु उसको छुड़ा न सकता।"

"इससे विक्रम की मान-मर्यादा कम नहीं हुई देवी! ससार भर में उसकी चर्चा है।"

"छोड़ो इस बात को। क्या चाहता है वह?"

"उनका कहना है कि आप जैसी सुन्दर कोमलांगी देवी को अपना जीवन इस निर्जन शीतप्रधान और कष्टप्रद स्थान पर रहकर व्यर्थ नही गँवा देना चाहिये। देवलोक की महारानी दो हीरो का मूल्य न दे सके, यह विस्मय करने की बात है। यहाँ एक-दो दासियों के साथ कैदियों की भाँति रहना आपकी मान-मर्यादा के अनुकूल नहीं है। इसलिये श्रीमान् नहुष आपके लिये एक अति सुन्दर सुख-सुविधा-सम्पन्न भवन देव-लोक में भेंट करना चाहते हैं। उनकी विनम्र प्रार्थना है कि यदि श्रीमती जी वहाँ आना स्वीकार करें तो उनको असीम प्रसन्नता होगी। वे अपने पूर्ण धन, सम्पदा और देवलोक के साधनो के साथ आपकी सेवा के लिये तत्पर रहेंगे। वे आपके देवलोक की महारानी होने की घोषणा करवा देंगे और पूर्ण राज्य आपकी आज्ञा पालन करेगा।"

शची हँस पड़ी और बोली—"बहुत सुन्दर शब्दो में बात कही गयी है। परन्तु क्या मैं जान सकती हूँ कि वहाँ पर कोई राजा भी होगा, या नही?"

"वहाँ पर एक राजा श्रीमान् नहुष पहिले ही विद्यमान है।"

"और यह महारानी, जो तुम वहाँ ले जाओगे, उस महाराज की ही रानी होगी क्या ?"

"हाँ महारानी जी, आप पूर्ण देवलोक की महारानी होगी।"

"तब तो तुम्हारा नहुष महाराज नहीं रह सकेगा। एक खोल में दो तलवारें कैसे रह सकेंगी ?"

"यह एक खोल में दो तलवारों की-सी बात नहीं होगी। यह तो दो का एक में समन्वय कहा जायेगा। श्रीमती जी वहाँ पहिले भी महारानी थी। मेरे स्वामी की यह अभिलाषा है कि श्रीमती अपनी खोई अवस्था पुनः प्राप्त करें।"

"बिना अपने पति को प्राप्त किये ?"

"यदि आप क्षमा करें तो मैं अपने स्वामी के विचारों की व्याख्या कर दूं। वे आपका अधिक अच्छा पति बनने का आश्वासन देते हैं।"

"यह हो नहीं सकता। हमारे यहाँ नियम है कि जीवन भर एक ही पति रहता है। और यदि हमारे वश में हो तो सब जीवनों में भी एक ही पति रखें।"

"अन्य जीवनों में क्या प्रमाण है और इस जीवन में भी तो भविष्य का कुछ भी विश्वास नहीं। एक पति ने आपको इस निर्जन नीरस स्थान पर ला पटका है और दूसरा आपको शक्ति और सुख-सम्पन्न करना चाहता है। क्या ही आनन्द की बात होगी, जब दस लाख सेना आपकी ध्वजा के नीचे संसार विजय को प्रयाण करेगी। वह कितना भव्य दृश्य होगा, जब आप केवल देवलोक की ही नहीं प्रत्युत संसार-भर की महारानी स्वीकार की जावेंगी। मनुष्यमात्र आपकी वंदना करेगा। लंका-विजय, बाली-दमन, परशुराम-पराजय और सब वे कार्य जिनकी ख्याति संसार में है, इसके सम्मुख फीके पड़ जावेंगे।

"शक्ति और सम्पत्ति का सम्पूर्ण क्षेत्र, सुख और समृद्धि की पराकाष्ठा, मान-मर्यादा का सर्वोच्च स्तर आपके लिये खुल जावेगा। केवल एक वार स्वीकृति की दृष्टि और प्रसन्नता की मुस्कराहट दीजिये और यह द्वार की भाँति खुल जावेंगे।

"श्रीमती जी! मैं इससे अधिक स्पष्ट रूप में वर्णन नही कर सकता। अब आप अपने मुखारविन्द से एक स्वीकृति का शब्द कहिये, जो मैं अपने स्वामी तक पहुँचा दूं। विश्वास रखिये कि आप इस प्रकार दो महान् जातियो का सयोग कर एक पुण्य की भागिनी बनेंगी।"

करण के कहने के इस ढग को शची ने अनुभव किया और उसने इस योग्य व्यक्ति को अपनी योग्यता को और प्रकट करने का अवसर देने के लिए पूछा—"क्या श्री करण विवाहित हैं ?"

"हाँ श्रीमती जी!"

"आप अपनी स्त्री से प्रेम करते हैं क्या ?"

"बहुत।"

"हम आशा करते हैं कि वह भी श्री करण जी से प्रेम करती होगी ?"

"जहाँ तक मुझको ज्ञान है वह मुझसे बहुत प्रेम करती है। शायद अपने जीवन से भी अधिक।"

"क्या वह आपके देश की लडकी है ?"

"नही! मुझको वह अमरावती में मिल गयी थी। उससे मेरे दो बच्चे भी है।"

"ठीक! आप बुद्धिमान् व्यक्ति प्रतीत होते हैं। क्या मैं आपसे प्रश्न पूछ सकती हूँ कि क्या आप पसन्द करेंगे कि विपत्ति में वह आपको छोड जावे ?"

करण निरुत्तर हो गया। शची उसके उत्तर की प्रतीक्षा करने

लगी। करण ने बहुत हिचकिचाहट के पश्चात् कहा—"श्रीमती जी ! मेरी स्त्री और आपकी बात में बहुत अंतर है। वह एक निर्धन सैनिक की पत्नी है और आप स्वभाव से किसी देश की रानी बनने योग्य है। एक देश की रानी के लिए केवल अपनी इच्छाओं का ही ध्यान रखना पर्याप्त नहीं। उसको उन असंख्य प्रजागणों के हितों का भी ध्यान रखना होता है जिनको प्रकृति ने उनके अधीन रखा है। जातियों के नेताओं का स्वार्थ प्रजाहित में ही निहित है।"

"यह मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं। मैं पूछती हूँ, मानो तुम राजा हो, जिस पर कोई विपत्ति आन पड़ी है। क्या तुम यह पसन्द करोगे कि तुम्हारी पत्नी तुमको छोड़ उसके पास चली जावे, जिसने तुम्हारे राज्य पर अधिकार कर लिया हो ? अपनी अन्तरात्मा को टटोलकर बताओ कि तुम क्या चाहोगे ?"

करण अनुभव कर रहा था कि वह उसको कुछ ऐसी बात करने को कह रहा है, जो वह स्वयं अपनी स्त्री को करने को नहीं कह सकता। उसको नहुष की ओर से यह निवेदन करते हुए लज्जा लगने लगी थी। अतएव वह चुप था। इस पर शची ने फिर कहा—"पूर्व इसके कि तुम इस विषय में कुछ और कहो, एक बात मैं पूछना चाहती हूँ। तुम अपनी स्त्री से यदि पूछो कि वह तुम्हारी मुसीबत के समय तुमको छोड़ना चाहेगी अथवा नहीं, तो उसका क्या उत्तर होगा ?"

करण तो यह पहिले ही पूछ चुका था। सुमन का उत्तर वह भूला नहीं था। उसने कहा था कि पति-पत्नी का सम्बन्ध सांसारिक नहीं है। यह आत्मा-आत्मा का संयोग होता है, जो टूट नहीं सकता। इस बात के स्मरण होने पर उसकी आत्मा में यहाँ आने के उद्देश्य पर ग्लानि उत्पन्न हो गयी थी। इस कारण एक भी शब्द और बोले बिना वह उठ खड़ा हुआ। उसने झुककर नमस्कार की और जाने के लिये

स्वीकृति माँगी। शची उसको अभी कुछ और कहना चाहती थी। इस कारण उसने कहा—"ठहरो! तुमको मैंने अभी तुम्हारे स्वामी के लिए उसके निवेदन का उत्तर नही दिया। मेरा विचार है कि जाने से पूर्व उसके प्रस्ताव का उत्तर लेते जायें। उसको कहना कि उसके बिना भी मैं देवलोक की महारानी हूँ। मैं शीघ्र ही अपना स्थान लेने के लिए आने वाली हूँ। मेरे आने से पूर्व उसे वह स्थान जिसका वह अधिकारी नही है और जहाँ अधर्म का राज्य चल रहा है, छोड देना चाहिये अन्यथा उसको उस कष्ट और दु ख के लिए, जिसका वह कारण है, दण्ड मिले बिना नहीं रहेगा।

"अब तुम रात के लिए यहाँ मन्दिर में ठहर सकते हो। रात होने वाली है और मार्ग ठीक नही है।"

इतना कह वह उठ खडी हुई और घर के भीतर चली गयी। करण-देव मन्त्र-मुग्ध की भाँति खडा का खडा रह गया।

करण रात काटने के लिए गाँव के मन्दिर में ठहर गया। उसके वहाँ पहुँचने के कुछ ही पीछे नारद आया और मन्दिर के अध्यक्ष से कहकर करण के लिए भोजन-व्यवस्था कर करण से मिलने को उसके आगार में जा पहुँचा। करण उसको देख स्वागत करने उठ खडा हुआ। नारद ने उसको बैठाकर कहा—"आपको यदि किसी बात की आवश्यकता हो अथवा कोई कष्ट हो तो अध्यक्ष से कह दीजिएगा। उसको महारानी जी की आज्ञा मिल चुकी है।"

"बहुत धन्यवाद है उनका। आपका परिचय प्राप्त कर भी भारी प्रसन्नता हुई है। आपके विषय में यह विख्यात है कि देवताओ की राजनीति के आप सचालक हैं।"

नारद मुस्कराया और बोला—"मैं नही जानता कि आपने यह बात प्रशसा के भाव में कही है, अथवा निन्दा के भाव में। इस पर भी इतना स्वीकार करने में मैं सकोच नही करता कि मरे विषय में सूचना

देने वाला कोई जानकार व्यक्ति है। उसने मुझको ठीक समझा है। मैं पृथ्वी के भ्रमण में था, जब देवलोक का राज्य पलटा। अन्यथा इस विपत्ति को रोकने का कुछ तो उपाय किया जा सकता था। मैं अब अवस्था सुधारने का यत्न कर रहा हूँ।"

"आपको शायद यह पता नहीं कि मैंने एक ऐसी लड़की से विवाह कर लिया है जो देवलोक की रहने वाली है और आपके विषय में उसने ही मुझको बताया है। वह वास्तव में ही बहुत बुद्धिमती है और मुझे बहुत प्यारी लगती है।"

"महारानी जी ने मुझको आपके विषय में बताया है। उनका कहना है कि आप अति योग्य, बुद्धिमान् और विद्वान् व्यक्ति हैं। वे आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा करती हैं। उनका कहना है कि यह दुर्भाग्य की बात है कि आप जैसा व्यक्ति एक ठग और धूर्त बदमाश की सेवा कर रहा है।"

"तो क्या नहुष इन्द्र से अधिक ठग और धूर्त बदमाश है? उसका अहल्या से व्यवहार क्या भूला जा सकता है?"

नारद को करुण के ज्ञान पर अति विस्मय हुआ। इस पर भी वह समझता था कि दोनों बातों में समता नहीं है। उसने कहा—"बात ठीक है, परन्तु दोनों में कोई तुलना नहीं। एक तो परिस्थिति के वश पतित हुआ था और वह अपने पर लज्जित था। उसने इसका प्रायश्चित्त भी किया था। दूसरी ओर आपके महाराज अपने पतन को विजय और प्रशंसा की बात मानते हैं। उनको इस पतन में ही जीवन का सार प्रतीत होता है।"

"देवर्षि! वे मेरे स्वामी हैं।"

"यही तो दुःख की बात है। आपने उनकी सेवा स्वीकार की हुई है, परन्तु न तो महारानी जी ने और न ही मैंने उनकी सेवा का वचन

लिया हुआ है। यही कारण है कि हम अपनी सम्मति प्रकट करन में कठिनाई नही पाते। मै आपको अमरावती में मिलूंगा।"

इतना कह नारद उससे विदा मांगने लगा। वह उठ खड़ा हुआ परन्तु एकाएक घूमकर करण की आंखो में देखकर बोला—"कभी भविष्य में नहुष की सेवा में दु ख अनुभव हो तो मेरी राय है कि आप महारानी की सेवा में आ सकते है। आप उनको अपने वर्तमान स्वामी से अधिक सहानुभूतिपूर्ण पायेंगे।"

(२)

करण जब अमरावती वापिस पहुंचा तो उसकी मानसिक अवस्था में पूर्ण परिवर्तन हो चुका था। उसने अतुलनीय सौन्दर्यराशि के दर्शन किये थे। वह एक अति शिक्षित, सभ्य और सुसस्कृत देवी से बातचीत करके आया था और वह उसकी युक्ति के सम्मुख परास्त होकर आया था। नहुष का दूत बनकर जाने पर और एक पतिव्रता को पतिव्रत धर्म से डिगाने के प्रयत्न के कारण वह अपने को पतित अनुभव करने लगा था। वह समझने लगा था कि उसमें भी आत्मा है और वह धन-दौलत और सुख-सुविधा के लिये उसे बेच रहा है। इस कारण उसके मन मे प्रश्न उत्पन्न हो रहा था कि क्या वह एक मूर्ख-गंवार की सेवा ही करता जावेगा, अथवा इसका कभी अन्त भी होगा।

वह नहुष की सेना के साथ देवलोक इस कारण आया था कि तनिक ससार को देखने का अवसर प्राप्त करे। वह गांव से बाहर निकलना चाहता था। उसकी इच्छा पूर्ण हो गई और अब नहुष का साथी कहाने मे वह अपने आपको एक नीच कार्य में प्रवृत्त मानता था। फिर इन्द्राणी की ओर से उसको अपनी सेवा में लेने का प्रस्ताव तो उसके मन में उथल-पुथल मचा रहा था।

अमरावती में पहुंच वह पहिले अपने घर गया। सुमन का व्यवहार

अति प्रेममय था। उसने उपालम्भ नहीं दिया और सदा की भांति आज भी उनकी सेवा के लिये उपस्थित थी। करण जानता था कि वह उसके दूतकार्य की सफलता अथवा असफलता के विषय में जानने के लिये अति उत्सुक होगी, परन्तु उसने कुछ नहीं पूछा और उसकी सेवा शुश्रूषा में लगी रही। उसने करण के स्वास्थ्य और मानसिक अवस्था के विषय में तो पूछा, परन्तु कार्य के विषय में संकेत भी नहीं किया।

करण आधे दिन तक उसके पास रहा और अनेकों विषयों पर बातचीत चलती रही। बच्चों ने पिता की अनुपस्थिति की अनेकों बातें बतायीं। सुमन ने भी बच्चों की बहुत-सी बातें बतायीं। अन्त में करण महाराज के पास जाने के लिये तैयार हो गया। इस समय उसको स्मरण आया कि सुमन ने शची के विषय में एक शब्द भी नहीं पूछा। इससे उसको विस्मय हुआ। उसने जाने से पूर्व अपनी पत्नी से पूछा—"तुम मेरे कार्य के परिणाम को जानने के लिये उत्सुक नहीं हो क्या ?"

"उसकी आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। कारण यह कि उसका एक ही परिणाम हो सकता था और वह है आपकी असफलता।"

करण हँस पड़ा। उसने सुमन को अति प्रेम से कटाक्ष करते हुए कहा—"तुम्हारा अनुमान ठीक है। मैं महाराज से लौटकर सब बताऊँगा।"

करण जब नहुष के सम्मुख पहुँचा तो वह सुरापान से अर्ध-चेतनावस्था में था। वह करण को देख प्रसन्नता से उठा और करण से गले मिलने लगा। पश्चात् आदर से उसको बैठाकर कहने लगा—"बताओ, कब आयेगी वह ?"

करण नहुष की बचपन की-सी बातें सुनकर मन ही मन ग्लानि अनुभव कर रहा था। इस पर भी वह अपने उद्देश्य की पूर्ति में पूर्ण

असफलता का ज्ञान कराने में देरी करना नही चाहता था। इस कारण उसनें एकदम कह दिया—"महाराज ! मैं अपने कार्य में सर्वथा असफल रहा हूँ। वह यहाँ आना चाहती है, परन्तु ऐसे नहीं। वह चाहती है कि यहाँ विजेता के रूप में आये और आपको दड दे।"

"मुझको वह दड देना चाहती है ? उसने कहा है यह ? तुमने उसकी जिह्वा नही खीच ली थी ? तुम कैसे मेरे सेवक हो ?"

करण समझ गया कि वह आज मात्रा से अधिक पिये हुए है। इस कारण उसने कह दिया—"महाराज ! मैं आज बहुत थका हुआ हूँ। यदि आप आज्ञा दें तो मै कल उपस्थित होकर पूर्ण वार्त्तालाप निवेदन करूँ ?"

"अच्छी बात है। कल प्रातःकाल आना। ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारे ऊपर भी उस औरत का सम्मोहन मत्र चल गया है। इसी कारण तुम उसके मुख से मेरी निन्दा सुनकर चुपचाप लौट आये हो। मैं जानता हूँ कि तुम भी हाड-चाम के बने हुए हो। परन्तु.. परन्तु... अच्छी बात। कल बातें करेंगे। अब जावो।"

करण ने बाहर आ सुख का साँस लिया। जब वह इतनी जल्दी लौट आया तो सुमन को अचम्भा हुआ और उसने पूछा—"क्या बात है ? महाराज नही मिले क्या ?"

"मिले थे, परन्तु कुछ मद्य पिये हुए थे। इस कारण बात नही हो सकी।"

"आपके अमरावती से अनुपस्थिति-काल में यहाँ बहुत गडबड हुई है"

"क्या ?"

"देवताओ और गान्धारो में झगडा हुआ है। देवताओं में बदला लेने की भावना जाग उठी है। एक स्त्री कही देहात से अमरावती आ

रही थी। मार्ग में सेनापति कनकदेव ने उसके अपहरण का यत्न किया तो उसके साथ आ रहे मरुतक ने उसकी आँत काट डाली। इस अपराध में किसी एक देवता और उसकी गर्भपत्नी को मृत्यु-दंड दिया गया। इसके प्रतिकार में दो गान्धारों की हत्या कर दी गयी। महाराज ने देवताओं की भारी संख्या में हत्या करने की आज्ञा दे दी। देवताओं ने इसका भी प्रतिकार लिया। महाराज ने महिला-मन्दिर को, जो देवता-स्त्रियों की रक्षा के लिये खोला गया था, आग लगवा दी। देवताओं ने सेनाशिविर को आग लगा दी।

"अब महाराज डर गये हैं और देवताओं को शासनकार्य में और सेना में स्थान देने लगे हैं।"

करण इस वर्णन से गम्भीर विचार में डूब गया। उसने भी वह पूर्ण विवरण, जो इन्द्राणी से भेंट का था, बताया। अन्त में नारद का प्रस्ताव कि इन्द्राणी की सेवा की जा सकती है, बताया। सुमन का कहना था—"मैं समझती हूँ कि देवलोक में गान्धारों का अंतकाल आ गया है। अब यहां से चल देना चाहिए।"

"कहां चलूं ?"

"पहिले अपने देश में चलिये। वहां आपकी माता जी के दर्शन होंगे। पीछे विचार कर लेंगे।"

करण ने कुछ उत्तर नहीं दिया, परन्तु वह उस बात के लिये मन को तैयार करता रहा कि देवलोक में रहना उचित नहीं।

करण ने नहुष के मन में भी अपने प्रति द्वेषभाव उत्पन्न हुआ देखा था। नहुष ने कहा था—'उस औरत का सम्मोहन मन्त्र तुम्हारे पर भी चल गया है।'

अगले दिन वह प्रातःकाल नहुष के भवन में पहुँचा। नहुष इस समय सर्वथा सचेत था। अतएव करण को आदर से बैठाकर उसने पूर्ण

वृत्तान्त सुना और पश्चात् कहा—"तुम्हारे पीछे यहाँ देवताओ और गान्धारो में भारी झगडा हो गया था। उसमें जहाँ गान्धारो ने उच्छृंखलता की थी, वहाँ देवताओ ने भी राज्य के विरुद्ध विद्रोह किया है। उसका मैंने एक उपाय यह सोचा है कि जब देवता अपराध करें तो गान्धारसेना द्वारा उनको दण्ड दिलवाऊँ और जब गन्धार गडबडी करें तो देवताओ की सेना से दण्ड दिलवाऊँ। अब देखता हूँ कि इस उपाय से शान्ति रहने लगी है।

"अब तुम आ गये हो। तुम राज्यप्रबन्ध देखो और उसमें जो भी कुप्रबन्ध करे उसको निकाल बाहर करो। रही शची की समस्या। मैंने स्वय उसके अपहरण करने का निश्चय किया है। मैंने देखा है कि तुम इस समस्या को सुलझा नही सकते। जैसे देवलोक के राज्य को मैंने बिना एक बूंद रक्त बहाये ले लिया था वैसे ही यह कार्य भी करूँगा।"

करण ने सिर से विपत्ति टली समझ सुख की साँस ली। इस समय उसनें अपने मन में उठ रही बात कह दी। उसने कहा—"महाराज मेरी माता का स्वास्थ्य बिगड रहा है। इस कारण छ मास का अवकाश चाहता हूँ। फिर माता को, यदि वह चाहेगी तो साथ लेता आऊँगा।"

नहुष भी यह चाहता था कि शची के अपहरण काल में वह यहाँ न रहे। उसके मन में यह धारणा बैठ गयी थी कि जैसी चतुराई उसने देवलोक का राज्य लेने के समय की थी वैसी बात करण जैसे लोगो की उपस्थिति में चल नही सकेगी। इस कारण उसने कह दिया—"हाँ, छ. मास का अवकाश दे सकता हूँ, परन्तु तुम्हारे वापिस आने का विश्वास होना चाहिये।"

"मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं आऊँगा।"

"तुम्हारी सुमन यहाँ रहेगी न ?"

"महाराज ! वह भी मेरे साथ जाना चाहती है।"

"तो तुम लौटकर आने का विचार नही रखते ?"

"ऐसा नही है महाराज !"

"देखो करण ! तुम्हारा लड़का यहाँ बधक के रूप में रहेगा। यदि तुम छ मास में नही लौटे तो उसको मृत्यु के घाट उतार दिया जायेगा।"

"महाराज !" करण ने अति दुःखी मन से कहा—"जब राजा और मन्त्री में परस्पर अविश्वास उत्पन्न हो जाए तब दोनों का एक साथ रहना उचित नही। इस कारण मेरी प्रार्थना है कि मुझे सेवाकार्य से मुक्त किया जाए।"

"तो तुम हमारी सेवा से मुक्त होना चाहते हो ?"

"इसी में आपकी भलाई है महाराज !"

"मैं तो पहिले ही समझ गया था कि उस औरत का सम्मोहन अस्त्र तुम पर चल गया है।"

"तो आप मुझको क्या आज्ञा देते हैं ?"

"अभी तुम नही जा सकते। हम विचार कर ही इस विषय में आज्ञा देंगे।"

नहुष को सन्देह हो गया था कि करण यदि अपने परिवार सहित वहाँ से जाना चाहता है तो अवश्य इन्द्राणी की सेवा करने के लिये जा रहा है। वह यह नही चाहता था।

नहुष ने कुछ ऋषियों को राज्य में बुला लिया था। उनसे उसने यह कह रखा था कि यदि वे ब्रह्मा को प्रसन्न कर जीवित पारद का रहस्य जान सकेंगे तो वह उनको इतना पुरस्कार देगा कि वे उसका सैकड़ों वर्षों तक उपभोग करने पर भी उसे समाप्त नही कर सकेंगे। साथ ही उसने यह भी कहा कि यह रहस्य देवलोक की उन्नति के लिए ही प्रयोग में लाया जायेगा या फिर मानवसमाज की सुख-सुविधा बढ़ाने के लिए प्रयोग में लाया जायेगा।

ऋषि लोभ में फँस गए और ब्रह्मा से भिन्न-भिन्न प्रकार इस

विद्या को प्राप्त करने का यत्न करने लगे। ब्रह्मा ने उनका न तो इस विद्या के देने में न की थी और न हाँ ही। उसका कहना था कि तपस्या से सिद्धि प्राप्त होती है। जब किसी की तपस्या पूर्ण हो जाती है, तब फल प्राप्त होता ही है।

इस कारण ऋषि लोग भगवत्भजन और ब्रह्मा के द्वार पर आना-जाना लगाए हुए थे। अब नहुष ने ऋषियों को बुलाकर कहा—"महात्माओ, मेरी एक समस्या यह भी है कि अभी तक मेरा विवाह नहीं हुआ। इस कारण किसी अपने योग्य स्त्री से विवाह करना चाहता हूँ। मैंने इन्द्राणी से विवाह का प्रस्ताव किया था परन्तु उसने अभी इसे स्वीकार नहीं किया। मैं समझता हूँ कि यदि आप लोग उसको अपना परामर्श मेरे पक्ष में देंगे तब वह अवश्य मान लेगी।"

पहिले तो ऋषि इस प्रस्ताव से बहुत भचकचाये पश्चात् यह विचार कर कि इसमें ब्रह्मा सहायता दे सकता है, उन्होंने यत्न करने का आश्वासन दे दिया।

ऋषि इस नवीन समस्या को सुलझाने के लिए ब्रह्मा के पास पहुँचे। ब्रह्मा ने उनकी बात सुनकर अपने विचार बतलाये—"जहाँ तक जीवित पारद के निर्माण का सम्बन्ध है मैं समस्या को लोकहित में देखता हूँ। पिछली बार जब आप लोग यहाँ आये थे तो मैंने आपकी इस युक्ति को सुना था कि विद्वान् लोगों को जनता के हित में विचार करना चाहिए। राजा तो जो भी होगा वह कूटनीतिज्ञ होने से स्वार्थी, लोभी और कामी होगा ही। इस कारण हमें राजनीति और राजा का विचार छोड़कर सर्वसाधारण के सुख-साधन में लगे रहना चाहिए। मैं इसके लिए तैयार हूँ। केवल एक बात विचारणीय रह गई है। यह पारद-रहस्य किसको दूँ, जिससे यह किसी दुष्ट के हाथ में न चला जाए। दुष्ट के हाथ में इस अथाह शक्ति के स्रोत के चले जाने से वह प्रजा का अहित भी कर सकता है। परिणाम यह होगा कि हमारी ओर से

मन्त्री को शची के पास इसी प्रयोजन से भेजा था। और शची ने नहुष के प्रस्ताव को नही माना। इस विषय में एक वात और स्मरण रखनी चाहिए। नहुष का विवाह अपने देश में हो चुका है और उससे उसका एक पुत्र भी है। वह पुत्र यशस्वी और एक विख्यात वश की स्थापना करने वाला भी होगा। अतएव मै इसमें हस्तक्षेप नही करूँगा। नहुष चाहे तो किसी अन्य राजा की कन्या से विवाह कर सकता है।"

वास्तव में ऋषियो को ब्रह्मा से अभी तक कुछ भी प्राप्त नही हुआ। इस पर भी उनको आशा बनी हुई थी। इसी आशा के कारण नहुष उनकी मान-प्रतिष्ठा करता था। यह ब्रह्मा से तीसरी भेंट थी। इसके पश्चात् पुन: तीन मास उपरान्त उनको आने के लिए कहा गया था।

(३)

नहुष से मिलकर जब करण घर लौटा तो उसका मन अति खिन्न था। सुमन ने उससे इस उदासी का कारण पूछा तो करण ने सब घटना ज्यो की त्यो वर्णन कर दी। सुमन का कहना था—"इसका तो यह अर्थ हुआ कि हम वदी हैं।"

"हम महाराज की सेवा छोड भी नही सकते।"

"यह क्यो हुआ है ? हमने तो कोई भी काम नही बिगाडा। क्या यही मन लगाकर सेवा करने का फल है ?"

करण चुप था। मुमन ने फिर कहा—"हमको चुपचाप यहाँ से चल देना चाहिये।"

"अकेला होता तव यह वात कठिन नहीं थी। सीमा पर कोई रोकता तो दो-दो हाथ कर भाग निकल सकता था, परन्तु तुमको तथा वच्चों को यहाँ छोडकर नहीं जाना चाहता। और सवका भाग निकलना कठिन है।"

सुमन कठिनाई समझ गई, इस कारण वह इसके दूर करने का उपाय सोचने लगी। उसकी विचारधारा अपने को करण से पृथक् कर

देने की ओर जाती थी। वह अपने को अलग करके अपने पति का मार्ग साफ कर सकती थी। बच्चो की समस्या विकट थी। न तो वह उनको छोड सकती थी और न ही उनके लिए पति को अपनी माता से भेंट करने से रोक सकती थी। बहुत विचारोपरान्त उसने कहा—"तो आप अकेले ही अपनी माता जी से मिल आइये। मुझको और बच्चो को यही छोड जाइये। इस प्रकार जाने की स्वीकृति तो मिल सकती है।"

"प्रश्न यह नही है सुमन ! मै तो अब इस राज्य की सेवा नही कर सकता और न ही करना चाहता हूँ। परन्तु मै भागकर जा नही सकता और जाना भी नही चाहता। मैने कोई खराबी नही की जिसके कारण मुझको यहाँ बंदी बनकर रहना पडे।"

समस्या इस प्रकार सुलझ नही सकी। नियमानुकूल मध्याह्न के समय करण राज-न्यायालय में जाने के लिए घर से निकला तो उसको राज्यभवन के बाहिर नारद जाता मिला। वह उसको ओर लपका। कुछ ही दूर पीछा करने पर नारद ने उसको देख लिया। इस कारण वह मार्ग में खडा हो उसकी प्रतीक्षा करने लगा। करण पास आया तो साथ-साथ चलते हुए नारद ने उससे पूछा—"तो आप आ पहुँचे है यहाँ ?"

"हाँ ! महाराज को पूर्ण स्थिति बतला दी है।"

"अब वे क्या करने की सोच रहे है ?"

"यह तो उन्होंने बताया नही।"

"मै आपको बताता हूँ। यह विवाह नही होगा। इस पर समय व्यय करना व्यर्थ है। मुझको यहाँ आये हुए कई दिन व्यतीत हो चुके हैं। मैं यत्न कर रहा हूँ कि किसी प्रकार आपकी स्त्री से परिचय प्राप्त करूँ। कोई ऐसा व्यक्ति नही मिला जो उससे परिचित हो और मेरा परिचय दे सके।"

"क्या काम है आपको उससे ?"

"शची जी ने आपकी स्त्री की अत्यन्त प्रशसा की थी और मुझसे कहा था कि जब अमरावती में आऊँ तो पता करूँ कि कौन है वह ?"

"बस इतनी सी बात है ? मैं ही बता देता हूँ। इन्द्र के काल के भवनाध्यक्ष की वह लडकी है। सुमन नाम है।"

"सुमन ?" नारद ने विस्मय मे खडे हो पूछा। वह करण का मुख देखने लगा था।

"हाँ ! कई कारणो से हमारा सम्पर्क हुआ और फिर विवाह हो गया। क्या आप जानते हैं उसको ?"

"बहुत अच्छी तरह से। महारानी शची भी जानती होंगी। वह इन्द्रभवन में एक बहुत ही सर्वप्रिय बालिका थी। कहाँ रहते है आप ?"

"भवन के पश्चिमी पार्श्व में। नीचे ही मेरा निवासस्थान है।"

"मै उससे मिलना चाहूँगा। यदि आपको आपत्ति न हो तो किसी समय आऊँ ?"

करण ने उत्तर नही दिया। वह अपनी और नहुष की समस्या पर विचार करने में लीन था। नारद ने समझा कि वह उसके अपनी स्त्री से मिलने में कोई कठिनाई अनुभव नही कर रहा। इस कारण पूर्व इसके कि वह कुछ और कहे नारद नमस्कार कर चल पडा।

करण अभी विचार कर ही रहा था कि वह अपनी कठिनाई उसके सम्मुख कहे कि नारद लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ चला गया।

करण न्यायालय में गया तो ऋषि लोग ब्रह्मा से मिलकर लौट आये थे और नहुष को उसके विचारो से अवगत करा चुके थे। करण ने उनको नहुष के पास से बाहर आते देखा तो वह नही जान सका कि ये लोग कौन है और किस कार्य से आए है। उसने न्यायालय के एक अधिकारी से पूछा, जिसने बताया—"ये ऋषि लोग है। आपकी अनुपस्थिति में इनको आर्यावर्त से बुलाया गया है। इनके द्वारा ब्रह्मा से

वार्तालाप हो रहा है और उसमें काफी सफलता मिलने की आशा हो रही है।"

करण के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि कही यही लोग न हो जिन्होने नहुष को उसके विरुद्ध कर दिया हो। अतएव उसने इनका परिचय प्राप्त करने के लिए उठकर ऋषियो के नेता जावाल को झुककर प्रणाम किया और अपना परिचय दिया।

"भगवन्! मैं महाराज का मुख्य सेवक करणदेव हूँ। मुझको यह जानकर अति प्रसन्नता हुई है कि आप महाराज की और देवलोक की सहायता के लिए यहां पधारे हैं। सेवक यदि किसी काम आ सके तो उपस्थित है।"

जावाल ऋषि को करण से परिचय प्राप्त कर अति प्रसन्नता हुई। उसने करण को आशीर्वाद देकर कहा—"आप किसी समय मिलें तो बहुत अच्छा हो। आपसे एक आवश्यक विषय पर बात करनी है।"

करण भी यही चाहता था। अतएव मन्त्रालय का कार्य देख सायकाल ऋषि जावाल के निवासस्थान पर जा पहुँचा। सातो ऋषि वहां उपस्थित थे और परस्पर परामर्श कर रहे थे। करण के आने पर उसको भी वही बुला लिया गया। जब करण बैठ गया तो उन्होंने सर्वप्रथम शची से हुई बातचीत का वृत्तात जाना। पश्चात् ऋषि भृगु ने कहा—"जहाँ तक शची से विवाह का सम्बन्ध है यह हो ही जाना चाहिए।"

करण ने निवेदन किया—"विवाह बल अथवा छल के प्रयोग से होना तो ठीक नही।"

भृगु का कहना था—"राजा-महाराजाओ के विवाह उनकी इच्छा या अनिच्छा का विषय नहीं होते। इस प्रकार के विवाहो में देश, प्रजा और कभी-कभी विदेशो के हित-अहित का विचार करना पडता है। देखिए करणदेव! नहुष का अविवाहित रहना देश के लिए ठीक नही।

विवाह के विना उसका मन अव्यवस्थित रहेगा। प्रजा के हित के विचार से उसको इच्छानुकूल पत्नी मिल जानी चाहिए।"

"परन्तु श्रीमान् !" करण ने झिझकते हुए कहा—"वह एक दूसरे पुरुष की पत्नी है और वह पुरुष अभी जीवित है।"

"वन्दी और मृत में कोई अन्तर नहीं। जिस धर्मनीति को गान्धार मानते है, उसमें किसी की धर्मपत्नी होने से पुनः विवाह वर्जित नहीं है। इस पर भी एक वात विशेष विचारणीय है। वह यह है कि नहुष देश का राजा है। शची अपने सौन्दर्य के कारण रानी वनने के योग्य है। वह किसी ऐसे के हाथ में नही रखी जा सकती जो उसकी रक्षा न कर सकता हो।"

"तो फिर आप क्या करने को कहते है ? उसने तो यहाँ आना स्वीकार नही किया।"

"हमारी तो यह इच्छा थी कि ब्रह्मा से कहकर उसको मनवायें, परन्तु ब्रह्मा ने इस विषय में हस्तक्षेप करने से न कर दी है। हमारा यह निश्चित मत है कि एक बार और यत्न कर लिया जाये और यदि देवी जी मान जावें तो ठीक, अन्यथा बलपूर्वक अपहरण कर उनको देवलोक की महारानी के पद पर सुशोभित कर दिया जावे।"

"कैसे यत्न किया जावेगा ?"

"हम नारद की खोज में हैं। हमें ज्ञात है कि नारद का शची पर वहुत प्रभाव है और यदि वह शची को जाकर समझाने का कष्ट करे तो सब वात सुधर जावेगी।"

करण को स्मरण हो आया कि नारद उसको मिलने को कह गया है। इस कारण उसने कह दिया—"मैं नारद को ढूंढने का यत्न करूँगा।"

"यदि वह मिल जाये तो वहुत काम हो सकता है। ब्रह्मा जी भी उसको स्मरण कर रहे थे।"

यद्यपि करण को ऋषियो की युक्ति पसन्द नही थी फिर भी वह अपनी विरोधी सम्मति उनके सामने रखने से डरता रहा। उसको विश्वास था कि नारद उनकी नीति को पसन्द नही करेगा, परन्तु उसने ऐसी कोई बात ऋषियो के सम्मुख नही कही। वह ऋषि यो के सामने अपने मन के भाव कहने से हानि ही मानता था। इस वार्त्तालाप के पश्चात् वह नारद से मिलने के लिए उत्सुक हो उठा और उसकी प्रतीक्षा करने लगा।

करण का विचार था कि उसको नारद के ढूंढने में यत्न करना पडेगा, परन्तु उसको यह कष्ट करने की आवश्यकता नही पड़ी। उसी रात, जब वह ऋषियो से अपनी बात सुमन को बता रहा था और सुमन ऋषियो की बुद्धि पर आलोचना कर रही थी प्रतिहार ने आकर सूचना दी कि कोई देवता जो अपना नाम नही बताता, मिलने के लिये आया है। करण को एकदम सूझ गया कि नारद आया है। इस कारण वह उठकर बाहर द्वार पर जा पहुँचा और आगन्तुक को देखकर जान गया कि उसका अनुमान ठीक ही था। वह उसको भीतर ले गया। पश्चात् द्वार बन्द कर बोला—"आपने अच्छा ही किया है जो नाम नही बताया, अन्यथा आपके यहां आने का रहस्य खुल जाता।"

"इतना ज्ञान तो मै रखता हूँ।"—नारद ने कहा। इस समय सुमन आ गई और देवर्षि को पहिचान प्रणाम करने लगी। जब सब पिछले आगार में जाकर अपने-अपने आसनो पर बैठ गये तो सुमन ने कहा—"अपाका यहाँ आना भयरहित नही। आजकल हम पर महाराज को सन्देह हो रहा है। इसका कारण कहा नही जा सकता।"

"जिस समय से पता मिला है कि तुम यहां रहती हो, मै तुमसे मिलने की इच्छा कर रहा हूँ। अपनी इच्छा को अधिक काल तक न रोक सकने के कारण यहां ही चला आया हूँ। तुम सुनाओ! प्रसन्न तो हो? कितने बच्चे है तुम्हारे और कहां है?"

"अभी दो हैं। एक माणिक्य है और एक परा । दोनों इस समय सो रहे हैं।"

"करण जी की महारानी इन्द्राणी बहुत प्रशसा कर रही थी। वे विस्मय करती थी कि ये कैसे नहुष की सेवा कर सकते हैं ? मुझको महारानी ने आज्ञा दी है कि इनको महारानी जी की सेवा के लिये तैयार कर लूं।"

करण ने इस बात का उत्तर देने के स्थान ऋषियो की बात कह दी। उसने कहा—"अगस्त्य, भृगु, काश्यप इत्यादि कई ऋषि नहुष की सेवा में आ गये हैं। वे आपको भी ढूंढ रहे थे। शायद आपकी सेवायें भी नहुष के लिये मांगते होगे।"

"कहाँ हैं वे ? मैंने सुना तो है, परन्तु विश्वास नही आता।"

करण ने उसके निवासस्थान का पता दिया और कहा—"मैं आज उनसे मिलकर आया हूँ। वे यत्न कर रहे हैं कि ब्रह्मा उनको जीवित पारद-निर्माण का रहस्य बता दें। सुना है कि ब्रह्मा जी चाहते हैं कि नारद आये तो उससे परामर्श कर उनसे बात करें।।"

"देखिये करण जी, एक बात में मेरा और श्री ब्रह्मा जी का मत-भेद रहा है। उनका कहना है कि ज्ञान मनुष्यमात्र की सपत्ति है। इस कारण यह जिज्ञासु को देनी चाहिये। मैं कहता हूँ कि ज्ञान एक अमूल्य रत्न है जो केवल अधिकारी को ही मिलना चाहिये। जिज्ञासा-मात्र से यह नही दिया जा सकता। ये ऋषि वेदो के ज्ञाता अवश्य हैं, परन्तु जो कुछ ये करना चाहते हैं वह वैदिक विचारधारा के अनुकूल नहीं है। इस पर भी मैं इन लोगो से मिलूंगा और इनको अपने विचार बताऊँगा।"

"मैं समझता हूँ कि आपको इन लोगो से मिलना चाहिये। व्यक्तियो के झगडे जातियो की उलझनो को बढाने वाले नही होने चाहियें। यदि किसी प्रकार से देवलोक के रहने वालो को सुख-सुविधा

मिल सके तो फिर चाहे इन्द्र राजा हो और चाहे नहुप इसमें क्या महत्त्व है ?"

नारद हँस पड़ा और कहने लगा—"इस प्रकार से विचार करने में आपका कोई दोष नही। आपके संस्कार ही इसमें कारण है। हम तो यह समझते हैं कि राजा अच्छा होने से ही प्रजा सुखी हो सकती है। केवल सुख-सुविधा मनुष्यजीवन का ध्येय नही। आत्मोन्नति सुख-सुविधा प्राप्त करने से बहुत ऊँची वस्तु है। आत्मोन्नति एक विपय-लोलुप राजा के राज्य में सम्भव नही।"

बहुत रात व्यतीत हो चुकी थी। नारद उठ खडा हुआ और इतना कहकर कि वह कभी कभी मिलने आया करेगा, विदा हो गया।

(४)

एक दिन करण को यह सुन विस्मय हुआ कि नारद शची को विवाह के लिये मनाने चला गया है। उसको नहुप ने स्वय यह बात बतायी थी। उसने कहा था—"सुनो करण ! मेरी नीति सफल हो रही है। मैं समझता हूँ कि तुम लोग सब बुद्धू हो। कोई भी काम तुम लोग सम्पन्न नही कर सके। एक ओर ब्रह्मा ने यह मान लिया है कि जब भी जीवित पारद समाप्त होगा वह उसको अपने कोप में से देंगे। कुछ पारद उन्हो ने दिया भी है। दूसरे नारद, जो मेरा शत्रु था, मेरा मित्र बन गया है और शची को मेरी पत्नी बनाने में यत्न करने के लिए काश्मीर चला गया है। यह सफलता आर्यावर्त के कुछ ऋपियो को यहाँ लाकर बसाने से मिली है।"

करण को यह सब अनहोनी बात प्रतीत होती थी। परन्तु वह यह कह नही सका कि उसको नहुप की बात का विश्वास नही है।

जब रात सुमन से बात हुई तो वह आश्चर्य में पड गई। वह देख रही थी कि दिन-प्रतिदिन देवताओ का साहस बढता जाता है। गान्धार

उनके सामने आने में भय अनुभव करने लगे हैं। इक्का-दुक्का गान्धार उनके मुहल्लों में भी जा नहीं सकता। नित्य गान्धारो और देवताओं में झगड़ा होता रहता है और इन झगड़ो में प्राय गान्धार ही पराजित होते हैं। इन सब बातो से प्रतीत होने लगा था कि शीघ्र ही गान्धार राज्य समाप्त हो जायेगा। ऐसी अवस्था में ब्रह्मा और नारद का नहुष का राज्य चलाने में सहायक होना और उसके विवाह का प्रबन्ध करने में यत्न करना, सुमन को आश्चर्यजनक प्रतीत हुआ। इस पर भी वह यह विचार कर कि वह इस विषय में कुछ नहीं कर सकती, चुप थी।

करण के सामने एक गान्धार-सैनिक यह अभियोग लेकर आया कि एक दुकानदार ने एक सेव का दाम एक रजत माँगा है और जब इतना अधिक दाम देना उसने अस्वीकार किया तो झगड़ा हो गया और दुकानदार ने उसको घायल कर दिया।

गान्धार-सैनिक ने अपनी पीठ दिखाई जिस पर तलवार का घाव लगा था। करण गान्धार-सैनिक की इस अवस्था से तिलमिला उठा। उसने पूछा—"तुम पीठ पर घाव कैसे खा गये ? अवश्य तुम उससे डरकर भागने लगे होगे ?"

"श्रीमान् ! वह तलवार चलाने में अत्यन्त प्रवीण था। उसने एक ही वार में मेरी तलवार के दो टूक कर दिये। ऐसी अवस्था में मुझे भागना पड़ा और उसकी तलवार से मेरी पीठ पर घाव लगा।"

"तो तुम क्या चाहते हो ? क्या मैं तुम्हारी भीरुता और दुर्बलता के लिए उसको दंड दूं ?"

"मैं चाहता हूँ कि उस देवता को शासक-पक्ष के व्यक्ति के विरुद्ध लड़ने के अपराध में दण्ड दें।"

"परन्तु यदि यह सिद्ध हो गया कि पहिला अपराध तुमने किया है तो फिर ?"

"उसने ही मुझसे झगडा आरम्भ किया था। मैंने सेव लेकर घर चलने से पूर्व उसको कहा था कि सेव का दाम एक-चौथाई रजत होना चाहिये, वह मैं दे सकता हूँ और यदि उसे अधिक चाहिए तो वह न्यायालय में जाकर ले ले। मेरी इस बात को सुनकर वह तलवार ले मेरे सामने आ खड़ा हुआ। विवश मुझको भी तलवार निकालनी पड़ी। उसने एकाएक वार किया और वह मेरी तलवार की मुट्ठी के कुछ ऊपर पडा। मेरी तलवार उसी स्थान से टूट गई और मेरे हाथ में उसकी केवल-मात्र मुट्ठी रह गई। इस कारण वह अपराधी है।"

"परन्तु तुमको किसने बताया है कि एक सेव का दाम एक-चौथाई रजत है? और फिर जब उसने तुम्हारा दाम स्वीकार नही किया तो तुम बिना दाम दिये सेव लेकर क्यो चल पड़े? अपने माल की रक्षा के लिए तलवार निकाल लेना अपराध नही था। तुम्हे उसके विरुद्ध यदि कुछ करना था तो न्यायालय में आकर करते। सेव को घर ले जाने का कोई कारण नही था।"

"यदि आप मेरी सहायता तथा मेरे इस घाव का प्रतिकार नही करेंगे तो गान्धारो का भारी अपमान हो जावेगा। इससे हमारा राज्य दुर्बल हो जावेगा और हम सबकी जान को भय उत्पन्न हो जावेगा।"

"महाराज ने घोषणा कर दी है कि गान्धार और देवता राज्य मे समान समझे जावेंगे। इसमे मुझे तो तुम अपराधी प्रतीत होते हो और यदि मैंने तुम्हारा अभियोग सुना तो तुमको ही दंड मिल जावेगा।"

"परन्तु, पहिले तो ऐसा नही होता था।"

"जो पहिले होता था वह उचित नही था। अब तो ऐसा ही होगा।"

करण मे किसी प्रकार की सहायता की आशा न पा, गान्धार-सैनिक नहुष के पास जा पहुँचा। नहुष के पास जावाल ऋषि बैठा था। नहुष ने जावाल ऋषि से उसका अभियोग सुनने को कहा। ऋषि

जाबाल ने उस दुकानदार को बुलाकर पूछा—"तुम सेब कितने का बेंचते हो ?"

"एक रजत का एक ।"

"यह दाम बहुत ही अधिक है ।"

"महर्षि ! सेब काश्मीर से आते हैं । इनके लाने में मार्गव्यय बहुत अधिक लगता है । इस कारण इससे कम दाम पर बेचने में हमें लाभ नहीं होता ।"

"तो इसको तुम बेचते ही क्यों हो ? इतने दाम की वस्तु इस लोक में शोभा नहीं देती ।"

"पर महर्षि ! यह तो इस दाम पर भी बहुत बिकती है ।"

"नहीं ! तुम ऐसी वस्तु को इस दाम पर नहीं बेच सकते । बेचोगे तो दड के भागी बनोगे ।"

"बहुत अच्छा भगवन् ! आगे से नही बेचूगा ।"

जब वह दुकानदार जाने लगा तो गान्धार ने महर्षि को कहा—"श्रीमान् ! आपने इसको दड तो दिया नहीं ?"

"अब अधिक दाम पर बेचेगा तो दड का भागी बनेगा ।"

"पर इसने मुझे घायल जो कर दिया है ।"

"ओह ! भूल हो गई । क्यो भाई दुकानदार, तुमने इसको घायल क्यों किया है ?"

"महर्षि ! मैंने इसको घायल नहीं किया । प्रत्युत यह मेरी तलवार के सम्मुख आ गया था ।"

जाबाल इस युक्ति से हँस पडा और बोला—"देखो सैनिक, तुम भी तलवार चलाओ और इसको कहो कि तुम्हारी तलवार के सम्मुख आ जाये । यह भी घायल हो जायेगा ।"

गान्धार विवश घर लौट गया । नहुष को जाबाल ऋषि की चतुराई प्रतीत हुई कि उसने दोनो को सतुष्ट कर दिया है । वह यह नही समझ

सका कि दोनों असन्तुष्ट ही लौटे थे। परिणाम यह हुआ कि न तो दुकानदार ने सेव कम दाम पर वेचने स्वीकार किये और न ही गान्धारो ने अपनी उच्छृंखलता वद की और इस प्रकार की घटनायें नित्य-प्राय: होने लगीं।

इसके कई मास पीछे, एक दिन नहुष ने करण को वुला भेजा। इससे चिन्तित अवस्था में करण नहुष के सामने उपस्थित हुआ। उसने नहुष को अत्यन्त चिन्तित अवस्था में पाया। इस कारण वह नमस्कार कर इसका कारण जानने के लिए खडा रहा।

"हमने तुमको वुलाया है।"

"महाराज! सेवक उपस्थित है।"

"आज रात को नगर में भारी उपद्रव हो गया है।"

"इस विपय में कुछ समाचार सुने हैं, परन्तु श्रीमान् को विदित होना चाहिए कि विना मुझसे राय लिए सेनापति ने इस उपद्रव को शान्त करने का प्रयत्न भी किया है।"

"क्या मालूम है तुमको ?"

"रात को कुछ सैनिक वलपूर्वक एक मकान में घुस गए। वे मद्यपान किए हुए थे। उस घर में कुछ महिलायें रहती थी उनसे सैनिको ने वलात्कार करना चाहा। इस पर झगडा हो गया। उन महिलाओ के सम्वन्धियो नें सैनिको से युद्ध किया और एक के अतिरिक्त सव सैनिक मारे गए। वह सैनिक, जो डरकर वहाँ से भाग आया था, सेनापति के पास पहुँचा और सेनापति नें उस घर को जलाकर महिलाओ सहित भस्म कर देने की आज्ञा दे दी और इसके लिए अपने सैनिक भेज दिए। ऐसा प्रतीत होता है कि सेनापति की इस आज्ञा की सूचना नागरिको को पहिले ही मिल गई थी। वे भारी सख्या में वहाँ उपस्थित थे। दोनो पक्षो में युद्ध हुआ और दो वार सैनिको को नागरिको ने लडकर भगा

दिया । सुना है कि सेनापति आपसे आज्ञा लेकर पूर्ण सेना एकत्रित कर पूर्ण नगर को भस्म कर देने की योजना बना रहा है ।"

"हमने तुमसे कुछ भिन्न कथा सुनी है । सायकाल सेनापति के पास सूचना मिली कि वह लड़की, जिसके सरक्षक ने कुछ दिन पूर्व उसकी बाँह काट दी थी, एक मकान में रहती है । सेनापति ने कुछ सैनिको को उसे पकड़ने के लिये उस मकान में भेज दिया । वहाँ उन सैनिको के मार्ग में बाधा डाल दी गई, जिससे झगडा हो गया, और बारह में से ग्यारह सैनिक वही मार डाले गए । इस समाचार को पाकर सेनापति ने दो सौ के लगभग सैनिक भेजे । इस पर वहाँ घमासान युद्ध हुआ । अभी तक उन विद्रोहियो ने वहाँ मोर्चा बाँधा हुआ है । मैंने यह निर्णय कर लिया है कि उनको इस विद्रोह के लिए दड दिये बिना नहीं रहूँगा ।"

करण मुख देखता रहा । वह कुछ कह नही सका । उसे चुप देख नहुष ने पूछा—"तुमको यह पसन्द नही है क्या ?"

"जब आपने एक बात निश्चय कर ली है, तब मैं क्या कह सकता हूँ । आपकी इच्छा सर्वोपरि है ।"

"इसका अर्थ यह है कि तुमको हमारी योजना रुचिकर नहीं है ।"

"इसमें रुचि अरुचि का प्रश्न ही नही उठता । महाराज ! मान लीजिये उन विद्रोहियो को दड देने के लिए आप नगर को भस्म कर देने में सफल हो गए, तो फिर आप कहाँ रहेंगे, और यदि भवन के ये यन्त्र, जिनसे यहाँ का जीवन चलता है बिगड गए तब फिर आप यहाँ रहकर क्या करेंगे ? यह तो दूसरे को झूठा सिद्ध करने के लिये, अपनी ही नाक काटने के तुल्य होगा ।"

"इस भवन को बचा रखेंगे ।"

'मान लीजिये यदि ऐसा सभव हो गया, तब भी जब नगर नही रहेगा तो राज्य किस पर करेंगे ?"

"गान्धार से और लोगो को बुला लेंगे।"

"और आप समझते हैं कि इस प्रकार देवताओ के विनाश के पश्चात् भी ब्रह्मा आपकी सहायता करेगा ?"

"जब शची आ जावेगी, तब ब्रह्मा की आवश्यकता नही रहेगी।"

"तब ठीक है। आप करिये, परन्तु मै इस विनाशकार्य में कुछ तत्त्व नही देखता। मेरे विचार में शान्तिमार्ग को ढूंढना ही उचित है।"

"अब तो आज्ञा जा चुकी है। देखे इसका परिणाम क्या होता है।'

करण चुप हो खडा रहा। कुछ विचार कर नहुप ने पूछा—"तुम इसमें क्या सहायता दे सकते हो ?"

"मुझको आज्ञा दीजिये मै क्या करूँ ?

"एक घोपणा लिखो और उसे मेरी ओर से घोपित करवा दो। उनमें लिखो कि यदि विद्रोही एक प्रहर तक अपने आपको बंदी न बनवा देंगे, तो पूर्ण नगर को भस्म कर दिया जायेगा।"

करण ने उसी समय घोपणा लिख दी। नहुप ने घोपणा को सुना और उसके शब्दो को पसन्द कर प्रसारित करने के लिए भेजने ही वाला था कि प्रतिहार सूचना लाया—"महाराज! कुछ गान्धार सैनिको की स्त्रियाँ अपने बाल-बच्चो को लेकर रुदन करती हुई श्रीमान् से कुछ निवेदन करने के लिए आई हैं।"

"तुरन्त बुलाओ।" महाराज ने आज्ञा दी।

बीस पचीस स्त्रियां थी और उनके साथ दस-पन्द्रह के लगभग बालक थे। वे अति अस्त-व्यस्त अवस्था में वहाँ आ खडी हो गई। नहुप ने पूछा—"क्या बात है ?"

"महाराज! हम लुट गए है। देवताओ ने हमारे घर वालो को मार डाला है और हमको घरो से निकाल दिया है।"

"तुम लोगो की रक्षा के लिए मै अभी सेना भेज रहा हूँ।"

"सेना तो वहाँ प'ची थी महाराज! परन्तु डरकर भाग गई है।"

"अभी और अधिक मात्रा में भेजता हू।"

इस समय प्रतिहार सूचना लाया—"महाराज! सेनापति दर्शन करना चाहते हैं।"

"आने दो।"

सेनापति आया और प्रणाम कर बोला—"सेना ने लडने से इन्कार कर दिया है।"

"क्यो ?"

"कहते हैं कि देवताओ की सेना को बुलाकर देवताओ से लडने के लिए भेजना चाहिए।"

"देवताओ की सेना कहाँ है ?"

"बहुत से देवता-सैनिक तो सीमा पर भेज दिये गये हैं। उनको वापिस बुलाने में समय लगेगा।"

"तो उस समय तक शान्त रहना चाहिए।" इतना कहकर नहुष ने करण से कहा—"मैं समझता हू कि अब महामात्य का काम आ गया है। करणदेव! जाइये और किसी प्रकार शान्ति करने का प्रयत्न करिये।"

करणदेव जानता था कि सब बात बिगड चुकी है। इस पर भी उसने सोचा कि अपनी ओर से शान्ति के लिये यत्न करना ही चाहिये। यदि असफलता मिली तो अपना कर्त्तव्य तो पूरा हो जायेगा। इस विचार से वह शान्ति-स्थापन के लिये चल पडा। वह सीधा न्यायालय गया और वहाँ जाकर उसने वह घोषणा जो उसने न ष के कहने पर लिखी थी, फाडकर फेंक दी और एक नई घोषणा लिख डाली। उसमें उसने लिखा—'हमको यह जानकर भारी खेद हुआ है कि कुछ गान्धार-सैनिको ने नगर के लोगो से झगडा किया है। इस झगडे में दोनो ओर के लोग मारे गये है। सैनिको की ओर से यह झगडा हमारी नीति के

विरुद्ध हुआ है। हमने उन सैनिकों पर, जिन्होंने यह झगडा आरम्भ किया है, अभियोग चलाने की आज्ञा कर दी है। उनमें से ग्यारह मर चुके हैं, केवल एक बचा है। उस पर अभियोग चलाया जावेगा और यदि वह सचमुच दोषी सिद्ध हुआ तो उसको दंड दिया जावेगा।

"हम जनता को विश्वास दिलाते हैं कि उनके साथ न्याय होगा और जिन-जिन को इस झगडे से हानि पहुँची है उनकी क्षति की पूर्ति की जावेगी।

"हम जनता से भी प्रार्थना करते हैं कि वे शान्तिपूर्वक व्यवहार रखें। जिस किसी को भी किसी के विरुद्ध कोई आरोप लगाना हो, न्यायालय में लगाये। उसके साथ न्याय किये जाने का विश्वास दिलाया जाता है।"

यह घोषणा नगर में कई वार करवाई गयी। इस पर भी छुट-पुट आक्रमण कई वार होते रहे। पूर्ण शान्ति स्थापित होने में दो सप्ताह तक लग गये। तब तक देवताओं की सेना नगर में आ पहुँची। उस सेना के नायकों को करण ने समझाया—'वीर सैनिको! यह देश तुम्हारा है। यहाँ के रहने वाले तुम्हारे भाई-बंधु हैं। इस कारण तुमको उनकी रक्षा करनी चाहिए। देश में शान्ति स्थापित रखना तुम्हारा धर्म है। इस कारण विना किसी पर भी अन्याय किये नगर में झगडे बंद कराना तुम्हारा काम है। यदि कोई व्यक्ति किसी प्रकार का भी झगड़ा करे तो उसको पकडकर न्यायालय में ले आओ। उसको स्वयं दंड मत दो।"

इस प्रकार समझा-बुझा कर देवता-सैनिकों को करण ने नगर में नियुक्त कर दिया।

(५)

देवताओं और गान्धारों का यह झगडा अभी पूर्ण रूप से शान्त

नही हुआ था कि जाबाल ऋषि नारद का सदेश लेकर आया। नारद ने नहुष को बधाई दी थी और यह संदेश दिया था—महाराज नहुष से कह दीजिये कि आधे से अधिक काम हो गया है। महारानी इन्द्राणी अमरावती आने के लिये तैयार हो गयी है। वह कुछ शर्तें करना चाहती हैं। मैं इस अवस्था में नही हूँ कि महाराज की ओर से किसी प्रकार की शर्तें कर सकूं। इस कारण महाराज से कह दीजिये कि किसी अपने विश्वस्त व्यक्ति को यहाँ भेज दें, जो शर्तें स्वीकृत करने का अधिकारी हो। यह कार्य शीघ्र हो।"

नहुष इस समाचार को सुन पागलो की भाँति नाचने-कूदने और ऋषि से गले मिलने लगा। अविलम्ब करण को बुलाया गया। जाबाल ऋषि ने नारद का पत्र पढ़कर सुनाया, और उसकी सम्मति माँगी।

करण ने कहा—"महाराज ! यह सत्य है कि नारद का देवताओ पर भारी प्रभाव है। और जब उसने लिखा है कि आधे से अधिक कार्य हो गया है, तो वास्तव में भारी प्रसन्नता का विषय है। आप अपने किसी विश्वस्त दूत को भेज दीजिये। शेष सफलता भी मिल जायेगी।"

"तो तुम ही जाओ और मेरे द्वारा मान्य शर्तें निश्चित कर उसको ले आओ।"

"बहुत कठिन कार्य है महाराज ! यदि भूल से कोई ऐसी शर्त हो गयी, जिसको आप पसन्द न कर सके, तो फिर क्या होगा ?"

"देखो करण ! तुम मेरे मित्र हो। मैं तुमसे कोई बात छुपाकर नही रखना चाहता। मैं तो उससे किसी भी शर्त पर विवाह करना चाहता हूँ। मैं अपना सब राजपाट उस पर न्योछावर कर सकता हूँ। मेरी ओर से केवल एक ही शर्त है। वह है उसके सहवास का निर्बाध अधिकार। शेष जो वह माँगे, मान जाना। एक बात देख लेना कि मुझको लज्जित करने वाली कोई बात न हो। शची जैसी स्त्री के पति

का जो मान संसार म होना चाहिए, वह मेरा हाना चाहिये। घर में तो मैं उसके जूते तक साफ कर सकता हूँ।"

करण ने मुस्कराकर कहा—"आप आज दिनभर विचार कर लें। मैं कल ही यहाँ से जा सकूँगा। इससे पूर्व यदि कोई विशेष बात आप कहना चाहते हो, तो आज्ञा कर दें।"

"मै तुम्हारी बुद्धि और चतुराई पर विश्वास रखता हूँ। अब जा सकते हो और जाने की तैयारी कर सकते हो।"

करण वहाँ से चलकर घर आया और सुमन को नारद का संदेश बताकर तैयारी करने के लिये कहने लगा।

सुमन यह समाचार सुन मुख देखती रह गयी—"क्यो ?" करण ने पूछा—"विश्वास नही आता न ?"

"देवताओ का घोर पतन हो चुका है, तभी तो यह दुर्दशा इनकी हुई है। जब राजा ही पतित हो गया है तो प्रजा की क्या बात है ?"

"तुम दूसरा विवाह करना पतन का लक्षण समझती हो ?"

"यह विवाह का प्रश्न नही है। यह तो समाज के नियमो के भंग करने की बात है। हमारे समाज में स्त्री दूसरा विवाह नही करती जिस समाज में दूसरा विवाह नही होता, वहाँ यह पतन ही है।"

"तो इसका अभिप्राय यह निकला कि इन्द्राणी ने देवसमाज को छोडकर गान्धारसमाज में प्रवेश करने का निश्चय कर लिया है।"

"यही विस्मय करने की बात हैं। समाज-परिवर्तन एक साधारण-सी बात नही होती। इसमें यह तो देखना आवश्यक है ही कि दोनो में कौन श्रेष्ठ है। ऐसा प्रतीत होता है कि चारो ओर गान्धारो की विजय होती देख शची के मन में विजेताओ के श्रेष्ठ होने का विश्वास बैठ गया है।"

"सुमन ! यह बात क्या विचारणीय नहीं कि विजेताओ की जीत उनमें किसी श्रेष्ठता की सूचक है।"

नहीं हुआ था कि जाबाल ऋषि नारद का सदेश लेकर आया। नारद ने नहुष को बधाई दी थी और यह सदेश दिया था—महाराज नहुष से कह दीजिये कि आधे से अधिक काम हो गया है। महारानी इन्द्राणी अमरावती आने के लिये तैयार हो गयी है। वह कुछ शर्तें करना चाहती हैं। मैं इस अवस्था में नही हूँ कि महाराज की ओर से किसी प्रकार की शर्तें कर सकूँ। इस कारण महाराज से कह दीजिये कि किसी अपने विश्वस्त व्यक्ति को यहाँ भेज दें, जो शर्तें स्वीकृत करने का अधिकारी हो। यह कार्य शीघ्र हो।"

नहुष इस समाचार को सुन पागलो की भाँति नाचने-कूदने और ऋषि से गले मिलने लगा। अविलम्ब करण को बुलाया गया। जाबाल ऋषि ने नारद का पत्र पढ़कर सुनाया, और उसकी सम्मति माँगी।

करण ने कहा—"महाराज ! यह सत्य है कि नारद का देवताओ पर भारी प्रभाव है। और जब उसने लिखा है कि आधे से अधिक कार्य हो गया है, तो वास्तव में भारी प्रसन्नता का विषय है। आप अपने किसी विश्वस्त दूत को भेज दीजिये। शेष सफलता भी मिल जायेगी।"

"तो तुम ही जाओ और मेरे द्वारा मान्य शर्तें निश्चित कर उसको ले आओ।"

"बहुत कठिन कार्य है महाराज ! यदि भूल से कोई ऐसी शर्त हो गयी, जिसको आप पसन्द न कर सके, तो फिर क्या होगा ?"

"देखो करण ! तुम मेरे मित्र हो। मैं तुमसे कोई बात छुपाकर नही रखना चाहता। मैं तो उससे किसी भी शर्त पर विवाह करना चाहता हूँ। मैं अपना सब राजपाट उस पर न्योछावर कर सकता हूँ। मेरी ओर से केवल एक ही शर्त है। वह है उसके सहवास का निर्बाध अधिकार। शेष जो वह माँगे, मान जाना। एक बात देख लेना कि मुझको लज्जित करने वाली कोई बात न हो। शची जैसी स्त्री के पति

का जो मान संसार म होना चाहिए, वह मेरा होना चाहिये । घर में तो मैं उसके जूते तक साफ कर सकता हूँ ।"

करण ने मुस्कराकर कहा—"आप आज दिनभर विचार कर लें। मैं कल ही यहाँ से जा सकूँगा। इससे पूर्व यदि कोई विशेष बात आप कहना चाहते हो, तो आज्ञा कर दें।"

"मै तुम्हारी बुद्धि और चतुराई पर विश्वास रखता हूँ। अब जा सकते हो और जाने की तैयारी कर सकते हो ।"

करण वहाँ से चलकर घर आया और सुमन को नारद का सदेश बताकर तैयारी करने के लिये कहने लगा।

सुमन यह समाचार सुन मुख देखती रह गयी—"क्यो ?" करण ने पूछा—"विश्वास नही आता न ?"

"देवताओ का घोर पतन हो चुका है, तभी तो यह दुर्दशा इनकी हुई है। जब राजा ही पतित हो गया है तो प्रजा की क्या बात है ?"

"तुम दूसरा विवाह करना पतन का लक्षण समझती हो ?"

"यह विवाह का प्रश्न नही है। यह तो समाज के नियमो के भंग करने की बात है। हमारे समाज में स्त्री दूसरा विवाह नही करती जिस समाज में दूसरा विवाह नही होता, वहाँ यह पतन ही है।"

"तो इसका अभिप्राय यह निकला कि इन्द्राणी ने देवसमाज को छोडकर गान्धारसमाज में प्रवेश करने का निश्चय कर लिया है।"

"यही विस्मय करने की बात है। समाज-परिवर्तन एक साधारण-सी बात नही होती। इसमें यह तो देखना आवश्यक है ही कि दोनो में कौन श्रेष्ठ है। ऐसा प्रतीत होता है कि चारो ओर गान्धारो की विजय होती देख शची के मन में विजेताओ के श्रेष्ठ होने का विश्वास बैठ गया है।"

"सुमन ! यह बात क्या विचारणीय नही कि विजेताओ की जीत उनमें किसी श्रेष्ठता की सूचक है ।"

"मैं इस सिद्धान्त को मानने में कोई युक्ति नही देखती। इस पर भी हमारा इस विषय पर वाद-विवाद कुछ अर्थ नही रखता। देखें आपके वहाँ जाने का क्या फल निकलता है? अब तो भगवान् का ही आश्रय है।"

"तो अब मेरा आश्रय भी नहीं रहा?"

"आपको आज क्या हो गया है? मैं जब अपने विषय में कहती हूँ तो अपने पूर्ण परिवार के विषय में ही तो कहती हूँ। और आप उसमें मुख्य व्यक्ति हैं। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि इस समाज के चुनाव के विषय में मैंने तो भगवान के भरोसे आपका छोर पकड़ा हुआ है।"

"मैं तुम्हारा अभिप्राय नहीं समझा।"

"अभिप्राय स्पष्ट है। मेरी लड़की परा है। वह आपकी समाज की प्रथा स्वीकार करेगी अथवा देवताओं की यह कौन कह सकता है। मेरी धारणा है कि देवसमाज की प्रथा अधिक सुखकारक है। परन्तु जो घटनाएँ हमारे चारों ओर घट रही हैं वे तो देवसमाज के रहनसहन और नियमों को विध्वस करके छोड़ेंगी। ऐसी अवस्था में भगवान् का ही तो भरोसा किया जा सकता है।"

"देखो सुमन!" करण ने अपनी अन्तरात्मा की बात को खोलते हुए कहा—"मेरा इस काम में मन नही है। इस पर भी मैं जा रहा हूँ। मैं यह देखना चाहता हूँ कि महारानी इन्द्राणी को किसी प्रकार का धोखा देकर कोई बात तो नही मना ली गई। इस पर भी यदि वे विवाह करने पर स्वच्छा से तैयार हुई, तो मैं इसमें कुछ नही कर सकूंगा।"

"इसी कारण तो कहती हूँ कि भगवान् की जैसी इच्छा है वैसा ही हो।"

अगले दिन करण यात्रा के लिए तैयार होकर नहुष से अन्तिम

आदेश लेने के लिए उसके सम्मुख जा उपस्थित हुआ। वहाँ एक स्त्री पहिले ही तैयार उपस्थित थी। करण उसको देख चुप खड़ा रह गया। बात नहुष ने आरम्भ की। उसने उस स्त्री का परिचय दिया—"यह महारानी शची की सखी मलिन्द है। यह देवर्षि नारद का पत्र लेकर आयी है और आपको एक सीधे मार्ग से वहाँ ले जाने के लिए साथ जा रही है। अश्वो पर जानें से राजमार्ग पर एक पखवारा लगता है। ये आपको तीन दिन में ले जावेंगी। कहती है, मार्ग कुछ कठिन अवश्य है, परन्तु देवर्षि की आज्ञा है कि यह कार्य शीघ्रातिशीघ्र सम्पन्न होना चाहिये। इनका कहना है कि शायद वहाँ से एक बार और आना पड़े। यदि महारानी जी आनें पर तैयार हो गयी तो पहिले यहाँ आकर उनके लिए निवास का उचित प्रबन्ध करना होगा।"

करण बिना बोले चुप खड़ा रहा। अब इस परिचय के पश्चात् अपने सम्मुख खडी स्त्री को देखकर उसनें नमस्कार किया और पूछने लगा—"आप भी घोडे पर सवार होकर चलेंगी क्या ?"

"इसीलिये तो आयी हूँ। मैं इस मार्ग पर बीसियों बार आ-जा चुकी हूँ।"

"महाराज ! देवी जी को आपको कुछ पुरस्कार देना चाहिये।"

"दे रहा था, परन्तु ये कहती है कि जब तक अन्तिम निर्णय नहीं हो जाता तब तक यह यहाँ से कुछ भी स्वीकार नही करेंगी।"

"क्यो ?"

उत्तर उस स्त्री ने दिया—"मै महारानी जी की दासी नही हूँ। मै उनकी सखी हूँ और उनके द्वारा ही महाराज से भेंट ले सकती हूँ।"

करण महाराज से महारानी के लिये एक पत्र, जिसमें करण का उनकी ओर से बातचीत करने का पूर्ण अधिकार लिखा था, लेकर

विदा हो गया। मलिन्द भास्कर की स्त्री ही थी। करण उसके साथ दस सैनिक और लेकर अमरावती से चल पड़ा।

अमरावती से निकलते ही मलिन्द ने सबको एक भिन्न मार्ग पर चलने के लिये कहा। राजमार्ग छोड़कर यह मार्ग सीधा पश्चिम की ओर जाता था। कुछ दूर जाकर मलिन्द उन सबको एक और सकीर्ण मार्ग पर ले जाकर चल पड़ी। यह मार्ग एक घने जगल में से होकर जा रहा था। मलिन्द सबसे आगे थी और करण तथा अन्य अश्वारोही उसके पीछे थे। मार्ग इतना सकीर्ण था कि दो अश्वारोही एक साथ नही चल सकते थे। अमरावती की वादी में से निकलकर ये लोग अब पहाड़ पर चढ़ाई चढ रहे थे। दो प्रहरभर चढ़ाई चढ़कर ये लोग एक दूसरी वादी में पहुँचे और मार्ग कुछ ढलवान पर जा पहुँचा। यह दल धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा। अभी तक ये देवलोक में ही थे कि रात पड़ गयी। करण ने मलिन्द से पूछा—"रात कहाँ ठहरने का प्रबन्ध होगा ?"

"यहाँ से कुछ ही दूरी पर एक मन्दिर है। हम वहाँ ही ठहरा करते हैं। मन्दिर का पुजारी एक भला पुरुष है। भोजन का प्रबन्ध उसी के द्वारा हो जावेगा।"

इस समय मार्ग ऊबड़-खाबड़ नहीं था। यह एक जगल में से समतल भूमि पर जा रहा था और करण का घोड़ा मलिन्द के घोड़े के साथ-साथ चल रहा था। दिनभर की यात्रा से थका होने के कारण और मार्ग में केवल भुने चने खा सकने के कारण करण अशान्ति अनुभव कर रहा था। मलिन्द ने उसे शान्ति देने के लिये कहा—"हम पचास कोस आ गये हैं। लगभग इतना ही और चलना है। यदि कोई विघ्न न पड़ा तो कल सायकाल से पूर्व सीमा पार कर महारानी जी से भेंट कर सकेंगे।"

"नारद जी वहाँ हैं क्या ?"

"हाँ, वे महारानी जी के विदा होने तक वही रहेंगे और पश्चात् चक्रवरपुर जाने का विचार रखते हैं।"

"अमरावती आने का नही ?"

"नही ! ब्रह्मावर्त में काश्मीर-सेनाओ को कुछ सफलता नही मिल रही। इस विषय में भी वह कोई समझौता करवाने के पक्ष में हैं।"

'हमारा तो यह अनुमान था कि देवर्षि बहुत झगडालू व्यक्ति है। परन्तु यह कार्य तो उन्होने ऐसा किया है जिससे हमारी पूर्वधारणा असत्य सिद्ध हुई है।"

"देवर्षि जी के विषय में आपकी यह धारणा भ्रमपूर्ण थी। देवताओ में सबसे अधिक सतुलित बुद्धि रखने वाले वही हैं। अनेको वार ससार भ्रमण करने के कारण उनका मानव-मन का ज्ञान भी अति श्रेष्ठ है। उनके परिणाम प्राय: ठीक ही निकलते हैं।"

"तो यह कार्य, मेरा अभिप्राय शची के विवाह से है, उनकी श्रेष्ठ बुद्धि का श्रेष्ठ कार्य मानती हैं आप ?"

मलिन्द चुप रह गयी। करण को कुछ ऐसा सदेह हुआ कि वह इस विवाह के पक्ष में नही है। इस कारण उसने इस विषय में कुछ और अधिक जानने के लिये उससे पूछा—

"आप क्या समझती हैं कि देवलोक का इससे कल्याण होगा ?"

मलिन्द ने बहुत सयत भाषा में उत्तर दिया—"हम लोग इसमें क्या सम्मति रख सकते हैं। यह विवाह मेरा होता तो मैं विचार कर इसमें अपनी सम्मति बनाने का प्रयत्न करती।"

करण हँस पडा और बोला—"आपकी सखी के साथ आपका विवाह भी तो हो सकता है। क्या आयु है आपकी ?"

"देवताओ में आयु का प्रश्न ही नही उठता। हमने जीवन का एक रहस्य ढूंढ निकाला है। हम काल की लम्बाई में जीवन व्यतीत करने के स्थान इसकी गहराई में जाने का ढग जानते हैं। ऐसी अवस्था में काल

तो चलता जाता है, परन्तु हम बूढे नहीं होते। हमारे यहाँ एक व्यक्ति पाँच सौ वर्ष जीता हुआ भी युवा रह सकता है। काल व्यतीत हो जाता है, पर जीवन व्यतीत नहीं होता।"

करण इस गणना की पहेली को नहीं समझा। उसको विस्मय में अवाक्मुख अपनी ओर देखते हुये पा मलिन्द ने कहा—"देखिये महामात्य! मैं बहुत पढी-लिखी नही। इस कारण यह समस्या आपको समझा नही सकती। केवल इतना वता सकती हूँ। एक नदी है मानो वह वहता हुआ काल है। ससार के प्राणी उस नदी में वहते जा रहे हैं अर्थात् आयु भोग रहे हैं। कोई योगी उस नदी में वहने के स्थान उसके पार जाने लगता है। वह जल-बिहार तो वैसे ही करता है जैसे नदी के जल के साथ वहने वाला कर सकता है। परन्तु अपने योग बल से वह किनारे के विचार से आगे नहीं बढ़ता। अर्थात् वह योगी ससार का भोग करता हुआ भी बूढ़ा नहीं होता।"

"अर्थात् देवता लोग किसी भी आयु में विवाह कर सकते हैं और सन्तानोत्पत्ति कर सकते हैं?"

"हाँ।"

"तो आपकी आयु पूछने की आवश्यकता नही और विवाह का प्रस्ताव किया जा सकता है।"

"मै तो योग नही जानती। इस पर भी अपनी समाज के कुछ ऐसे प्राणियो को जानती हूँ जो ऐसा कर सकते हैं। इन्द्राणी उनमें एक है। इन्द्र भी योगेश्वर है। ब्रह्मा जी भी ऐसे ही एक हैं।"

"मैं ब्रह्मा, इन्द्र और इन्द्राणी तीनो से मिल चुका हूँ। इन्द्र और इन्द्राणी के विपय में कह सकता हूँ कि वे अभी युवा हैं, परन्तु ब्रह्मा तो वहुत वूढे प्रतीत होते हैं।"

मलिन्द हँस पडी। उसने पूछा—"इन्द्राणी जी कहती थीं कि

आपने इतिहास-पुराण पढे है। इससे आप जानते होगे कि महाप्लावन को कितने वर्ष हो गये होगे ?"

"कम से कम वीस सहस्र वर्ष तो हो ही गये होगे।

"ब्रह्मा जी प्लावनपूर्व की सृष्टि के पुरुष है। दस सहस्र वर्ष हुए जब आपने कायाकल्प किया था। यह राम के काल की वात है। जब लंकाविजय हो गयी, तव उन्होने सुख का सांस लिया और कायाकल्प कर पाँच सौ वर्ष तक समाधिस्थ हो विश्राम किया। पश्चात् वे पुन: युवा हो अपना कार्य करते रहे।"

"तो अव वे पुन. कायाकल्प करने का विचार रखते है क्या ?"

"यह तो वही वता सकते है।"

इस समय वे मन्दिर के सम्मुख पहुँच गये थे। यह एक वडा-सा अहाता था, जिसके चारो ओर एक दीवार वनी हुई थी। दीवार में भीतर जाने के लिए एक छोटा-सा द्वार था। उस द्वार के सामने मलिन्द ने अपना घोडा खडा कर आवाज़ की—"पुजारी महोदय !"

यह आवाज़ सुन एक सुडौल पुरुष द्वार के वाहर निकल आया। मलिन्द को उसने देख प्रणाम कर आशीर्वाद दिया और पश्चात् प्रश्न-भरी दृष्टि से करण की ओर देखने लगा। मलिन्द ने करण का परिचय कराया—"आप महाराज नहुष के महामात्य है। आज रात इस मन्दिर में रहेंगे ।"

पुजारी ने पुन: प्रणाम किया और उन सबको भीतर आने का निमन्त्रण दिया। करण और मलिन्द घोडो से उतर आये और अपने घोडो की लगामें अपने साथी सैनिको को देकर द्वार के भीतर चले गये। पुजारी ने उनके साथ आये सैनिको को कहा—"आप लोग अपने घोडो को खोल दीजिये और इनको आराम कराकर पिछवाडे की ओर अश्व-शाला में ले जाकर वांध दीजिये। तव तक आपके भोजनादि का प्रवन्ध हो जाता है।"

चारदीवारी के भीतर जाकर एक खुले मैदान के बीचों-बीच एक बड़ आगार के चारो ओर कई छोटे-छोटे आगार बने हुए थे। उस गृह के सम्मुख खडे होकर पुजारी ने आवाज दी-"ओ भामा ! ओ भामा !" गृह के पिछवाडे की ओर से एक दस-ग्यारह वर्ष की लडकी निकल आई और अतिथियो को देख सकोच से एक ओर खडी हो गयी। उसे आया देख पुजारी ने कहा —"जाओ माता जी से कहो, बारह आदमियों का भोजन तैयार हो जावे।"

लडकी के चले जाने पर पुजारी ने अतिथियो को कहा—"आइये महाराज !" और उनको बडे आगार में ले गया।

(६)

पुजारी ने मलिन्द और करण को एक सुसज्जित आगार में ले जाकर बिठाया और कुछ अतर पर सामने बैठकर कहा—"इन देवी जी को तो मै जानता हूँ। यह वर्ष में एक दो बार इधर से आती-जाती रहती हैं। आज आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।"

करण ने उत्सुकता से पूछा—"इधर से क्या बहुत लोग आते-जाते हैं ?"

"नही श्रीमान् ! यह मार्ग चालू नही है। शीतकाल में यह सामने दिखाई देने वाला पहाड हिम से ढँक जाता है और आने-जाने का मार्ग नही रहता। साथ ही यहाँ से कुछ अन्तर पर एक नदी पडती है। वर्षा ऋतु में उसका पार करना असम्भव हो जाता है। इस प्रकार वर्ष-भर में आठ मास तक यह मार्ग चालू नही रहता।"

"आप यहाँ क्या करते हैं ?"

"यह यात्रियो के ठहरने के लिये मन्दिर बनाया गया है, परन्तु मार्ग की दुर्व्यवस्था के कारण यात्री बहुत कम आते-जाते हैं। इस मार्ग

से प्राय: लोग पैदल जाते हैं । यह ही देवी है, जो इस मार्ग पर घोड़े पर सवार होकर आती-जाती है । मैंने कई बार इनको कहा भी है कि किसी समय उस पहाड की चोटी पर कही घोडा चमक उठा तो अश्व और अश्वारोही दोनो नीचे खड्ड में गिरकर चकनाचूर हो जावेंगे । पर यह देवी घोडा सरपट दौडाती हुई चली जाती है ।"

पुजारी एक बात पूछने पर दस बताता था । करण उसकी बोलने की आदत को समझ उसको विदा कर देना चाहता था । उसने कहा—"तो महाराज! भोजन का प्रबन्ध तनिक शीघ्र करवाइये । हमने दिनभर कुछ नही खाया । कुछ कल प्रात: साथ ले जाने के लिये भी चाहिये ।"

पुजारी ने कहा—"भगवन् ! पुजारिन बहुत चतुर है और बहुत ही जल्दी आपको भोजन मिल जावेगा । वह बहुत स्वादिष्ट पाक करती है । जब पेटभर खाइयेगा तो रात भली-भाँति सोकर दिनभर की थकावट दूर कर सकेंगे ।"

"उस बेचारी की आप भी कुछ सहायता कर दीजिये ।"

"इसमें वह अपना अपमान मानेगी । आज तो आप बारह व्यक्ति हैं । एक बार पचास यात्री आ गये थे । और भामा की माँ ने दो घड़ी भर में भोजन तैयार कर परस भी दिया था ।"

मलिन्द ने कहा—"मैं दूसरे आगार में आराम करूँगी ।"

विवश हो पुजारी ने उठते हुए कहा—"चलिये !"

"आप चलकर प्रबन्ध करवाइये तो पीछे मैं वहाँ चलूंगी ।"

इस प्रकार पुजारी को उनको अकेला छोडकर जाना ही पड़ा । उसके चले जाने पर करण ने मलिन्द से पूछा—"आप विवाहित हैं क्या ?"

मलिन्द ने मुस्कराकर कहा—"हाँ श्रीमान् ! मेरी दो लड़कियाँ हैं। उनके भी विवाह हो चुके हैं । और उनके संतान भी है ।"

"ओह् ! तब तो आपकी आयु चालीस-पचास के लगभग होगी।"

"हाँ ! मैं पैंसठ की हूँ।"

"परन्तु आप घोडा तो ऐसे चलाती हैं जैसे आप बीस वर्ष की युवती हो।"

मलिन्द चुप रही। करण ने कुछ बात आरम्भ करने के लिये कह दिया—"यह पुजारी तो पीछा ही नही छोडता था।"

"बहुत भला आदमी है। यात्रियो से ही तो इसको बातें करने का अवसर मिलता है। इस कारण कुछ मात्रा से अधिक बोलने की आदत हो गई है।"

करण हँस पडा। मलिन्द ने कहा—"इसमें हँसने की क्या बात है ? कभी एक-आध वर्ष एकान्त में रहकर देखिए तो आपको इस निर्जन बन में रहने वाले के इस स्वभाव का ज्ञान हो जायेगा।"

करण ने पुन: बात इन्द्राणी के विषय में आरम्भ कर दी—"आपकी सखी महारानी जी से मैं मिलने गया था।"

"मैं उन दिनों अपने घर गयी हुई थी। लौटने पर आपके आगमन के विषय में ज्ञात हुआ था।"

"उस समय उन्होंने विवाह से न कर दी थी।"

"मुझको मालूम है। अब तो नारद मुनि की प्रेरणा का फल हुआ है। इस पर भी वह कुछ शर्तें रखना चाहती हैं।"

"जब विवाह ही होना है, तो क्या शर्तें हो सकती हैं ?"

"यह विवाह, एक प्रकार से, दो जातियो के भीतर सधि का रूप रखता है। इस कारण सधि की भाँति ही उसमें शर्तें होगी।"

"मैं तो समझ नहीं सका। आप उस पर कुछ प्रकाश डालेंगी क्या ?

मलिन्द ने मुस्करा दिया। उसको चुप देख करण ने फिर पूछा—"तो आप कुछ नही बताना चाहती ?"

मैंने तो आपसे पहिले ही निवेदन किया है कि विवाह मेरा होता

तो मै इस पर अपना मस्तिष्क लड़ाती। मैंने तो इस विषय में कुछ जानने का यत्न ही नही किया।"

"इसका अर्थ मैं यह समझता हूँ कि आप अपनी सखी के इस विवाह को पसन्द नही करती।"

"यह आपने कैसे समझ लिया है? मेरे कहे शब्दो का यह अर्थ तो नही निकलता।"

"मै सब कुछ समझता हूँ। भला यह बताओ, यदि तुम्हारे विवाह का कोई प्रस्ताव करे तो तुम उसके उत्तर में क्या कहोगी?"

"तो यह प्रस्ताव आप करेंगे?"

"मान लो मैं ही करता हूँ। तब?"

"तो सुमन का क्या होगा?"

करण अपनी पत्नी का नाम सुनकर विस्मय में मलिन्द का मुख देखता रह गया। मलिन्द उसके मन के भावो का अनुमान लगाकर खिलखिलाकर हंस पडी। पीछे बोली—"आप विस्मय कर रहे हैं कि मै उसका नाम कैसे जानती हूँ? नारद जी ने उसको देखा है और पहिचाना है। मैंने उसको गोदी में खेलाया है। इन्द्रभवन के प्रायः सब शिष्टलोग उससे परिचित है।"

"तब तो तुम मुझसे विवाह नहीं करोगी?"

"नही। क्योकि मैं आपको मूर्ख नही समझती। सुमन जैसी स्त्री को छोड मेरी ओर दृष्टि करने वाला पागल कहायेगा।"

करण चुप कर गया। इस समय पुजारी आ गया। उसके साथ उसकी लडकी थी। उन दोनो के पीछे-पीछे पुजारिन भी आ गयी। उन्होंने भोजनशाला में चलने के लिये कह दिया—"श्रीमान् चलिये। भोजन तैयार है।"

करण ने कहा—"हमारे सैनिको को पहिले खिलाना चाहिये।"

"वे खा रहे है महाराज! आप आइये।"

करण और मलिन्द उठे। हाथ-मुख धो भोजनशाला में जा पहुँचे। भामा रसोईघर में से भोजनसामग्री ला-ला कर उनके सामने परसने लगी। भोजन स्वादिष्ट था, परन्तु साधारण था। भात था, दाल-भाजी और खीर थी। करण को भूख लगी थी इस कारण उसने पेट भरकर खाया।

खाते समय पुजारी सामने बैठा था और अपनी कथा बता रहा था। उसने बताया—"महाराज! मेरी आयु साठ वर्ष की है। मैं जब तीस वर्ष का था तब गुरु जी से धर्म-भाषा पढ़कर अमरावती की ओर चल पडा। मार्ग मे एक कुएँ पर जलपान करते समय भामा की माँ के दर्शन हो गये। उसी समय हम प्रस्पर प्रेम करने लगे। मैं इसके पिता के पास गया और इससे विवाह कर इन्द्र महाराज के दरबार में जा पहुँचा। महाराज ने मुझको इस मन्दिर में भेज दिया। मैं यहाँ तबसे रहता हूँ। बीस वर्ष विवाह को हुए हो गये पर कोई सन्तान नहीं हुई। उस समय मैं इन्द्र जी की सेवा में पहुँचा, तो श्रीमान् जी ने औषधि दी और उसके प्रभाव से यह कन्या उत्पन्न हुई। अब यह दस वर्ष की हो गयी है। इच्छा थी कि इस बार एक पुत्र के लिये उनके पास जाता, परन्तु वर्तमान महाराज तो यह विद्या जानते नही। इस कारण पुत्र की अकाक्षा तो मन की मन में ही रह गयी है।"

"पुजारी! तुम प्रसन्न हो अपने जीवन से?"

"निस्सन्देह महाराज! मेरी स्त्री भी बहुत बातें करने वाली है और हम दोनो परस्पर बहुत प्रेम करते हैं। इस कारण हमारी बातें समाप्त ही नहीं होती।"

"बहुत भाग्यशाली हो पडित! परन्तु क्या तुम्हारी पत्नी तुम्हारी बातें सुनती-सुनती थकती नही?"

"नहीं महाराज! वह तो मेरी बातें सुनते-सुनते मुग्ध हो जाती है और प्रेम के सम्मोहन मत्र में ससार की सुध-बुध भूल जाती है।"

करण इस पंडित के संतोष को देख विस्मय करता था। उसने पूछा—"पंडित, आज से पहिले यात्री यहाँ कब आये थे ?"

"दो दिन हुए तो यही देवी जी पश्चिम की ओर से आयी थीं। रातभर यहाँ रही और प्रातःकाल पूर्व की ओर चली गयी थी। इससे पहिले तीन मास तक एक पक्षी भी यहाँ नही फड़का था।"

"यहाँ खाने-पीने का प्रबन्ध कैसा होता है ?"

"समीपतम गाँव यहाँ से दस कोस पर है और महाराज इन्द्र की आज्ञा से उस गांव वाले हमारे और यात्रियो को भोजनादि का प्रबन्ध करते थे। जबसे राज्य पलटा है मैं मास में एक बार उस गाँव में जाता हूँ और लोगो को कह-सुनकर अपने और यात्रियो के निमित्त ले आता हूँ। बीच में बहुत कठिनाई हो गयी थी, परन्तु पिछली बार गाँव वालो ने मन्दिर का भाग देने में न नही की। सुना है कि वर्तमान महाराज में और पितामह में मैत्री हो गयी है। ब्रह्मा जी के आशीर्वाद से ही खेत हरे-भरे दिखाई देने लगे है।"

इस समय करण और मलिन्द ने भोजन कर लिया था। वे हाथ धो विश्राम के लिये तैयार हो गये। पुजारिन आयी और मलिन्द को उसके सोने के आगार में ले गयी। जाने से पूर्व मलिन्द ने करण से कहा—"सूर्योदय होते ही हमको यहाँ से चल देना चाहिये जिससे अपराह्न में ही हम सीमा पार कर सकें।"

"देवी! बहुत थका हुआ हूँ और पडितायिन जी के स्वादिष्ट भोजन की खुमारी चढ रही है। जब जाग खुलेगी तब ही तो चल सकेंगे।"

इस पर भी करण बहुत नही सो सका। रात्रि के मध्य में ही उसकी निद्रा में बाधा पड़ी। आँख खोलते ही उसने देखा कि आगार में प्रकाश हो रहा है और कुछ लोग एक सुदृढ डोरी से उसके हाथ-पाँव बाँध रहे हैं। जब उसको परिस्थिति का ज्ञान हुआ तो उसने अपने को

छुड़ाने का यत्न किया, परन्तु बाँधने वाले दस थे और बहुत बलिष्ठ थे।

जब करण के हाथ-पाँव बँध गये तो उसको उठाकर वे लोग आँगन में ले आये। वहाँ उसने देखा कि पुजारी की पत्नी और उनकी लडकी भामा तथा मलिन्द के हाथ-पाँव बाँधकर उन्हें वहाँ पहिले ही बैठाया हुआ था। करण के आने पर मलिन्द ने प्रश्नभरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। करण स्वय इसका अर्थ नही समझा था। पुजारी की अवस्था तो अति करुणाजनक थी। वह अपनी स्त्री और लडकी को कष्ट में देखकर रो रहा था और कह रहा था—"अरे दुष्टो! इनको क्यो पकड रखा है। इन्होने तुम्हारा क्या बिगाडा है? अरे पापियो! निर्दोष स्त्री और बालिका को छोड दो।"

यह दयनीय अवस्था देखकर करण ने एक आतताई से पूछा—"तुम कौन हो?"

"अपने स्वामी के सेवक।" उसने उत्तर दिया।

"क्या नाम है तुम्हारे स्वामी का?"

"बताने की आज्ञा नही है।"

करण इन उत्तरो को सुनकर क्रोध से पागल हो रहा था, परन्तु हाथ-पाँव बँधे होने के कारण कुछ कर नही सकता था। कुछ काल तक चुप रहकर उसने फिर पूछा—"हम सबको पकडने का क्या उद्देश्य है तुम्हारा?"

"मैं नही जानता।"

"अब हमारे साथ क्या करने का विचार है?"

"स्वामी के पास ले जाने का।"

"कब तक?"

"अभी आपके अगरक्षकों को भेज रहा हूँ। सब लोग एक ही स्थान पर नही जा रहे।"

करण विस्मय में देखता रहा। एक घडीभर की प्रतीक्षा के पश्चात् पकडने वालो के दस साथी और आये और पुजारी-पुजारिन और भामा को उठाकर ले गये। एक घड़ी के पश्चात् फिर आये और करण तथा मलिन्द को उठाकर उन्ही के घोडो पर लादकर और वहाँ बांधकर अँधेरे में चल दिये। जगल में वे लोग इनको ले जा रहे थे। उनके पास प्रकाश करने को कुछ नही था। इस पर भी वे ठीक मार्ग पर ही जा रहे थे। वे भटक रहे प्रतीत नही होते थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वे उस स्थान और मार्ग से भली-भांति परिचित थे। जगल से वे पहाड़ी की चढान पर चढने लगे। घोड़ो के पांव अब घास पर न पड-कर पत्थरो पर पड रहे थे। दो घडी चलने के पश्चात् वे एक पहाड की गुफा में गये। यहाँ भी उनको प्रकाश की आवश्यकता न पडी। वे अन्धेरे में चलते गये। घोड़ो के पांवो से उत्पन्न शब्द की गूंज से यह पता चल रहा था कि वे किसी कदरा में से जा रहे थे। इस गुफा में कुछ दूर तक चलने पर वे इससे बाहिर निकले। आकाश में पुनः तारे दिखाई देने लगे तो करण समझ गया कि वे गुफा पार कर किसी वादी में पहुँच गए है। मार्ग पुन: ढालू आरम्भ हो गया था। उषाकाल का धीमा प्रकाश तारागण के ओज को फीका करने लग गया था। कुछ समय उपरान्त वे एक घर के बाहर आ पहुँचे। वहाँ प्रकाश था और कुछ लोग इनकी प्रतीक्षा में खडे थे। इनके वहाँ पहुँचते ही उन्होने इनके बधन खोल डाले और इन्हे घोडो से नीचे उतार कर भूमि पर खडा कर दिया। अब इनको पूर्णतया मुक्त कर उस घर के भीतर ले गए। वहाँ एक आगार में करण को ले जाकर विश्राम करने के लिए कह दिया गया और मलिन्द को एक अन्य आगार में ले गए।

करण इस रहस्यमय घटना का अर्थ समझने में लीन, बिस्तर पर जो उसके लिए लगा हुआ था, लेटा रहा। उसकी आँखों ने एक भी झपकी नही ली।

सुमन के मन में इन्द्राणी के नहुष से विवाह के लिए तैयार हो जाने पर घोर सघर्ष चल पडा था। वह अत्यन्त उत्सुकता से अपने पति के उससे मिलकर वापिस आ जाने की प्रतीक्षा कर रही थी। वह सोचती थी कि शची के मन में यह विकार किस कारण उत्पन्न हुआ। देवताओं में शची के लिए भारी मान था। यह माना जाता था कि वे आदर्श सती साध्वी थीं और उनके मन में लेशमात्र भी पाप नही विचर सकता फिर यह कैसे हुआ ? सुमन नहीं समझ सकी।

इससे भी अधिक वह नारद के व्यवहार पर विस्मय कर रही थी। नारद ने उसको इस प्रकार की प्रेरणा क्योकर दी ? वह यह सब कुछ समझने में अशक्त थी। शची का एक विजेता के साथ विवाह के लिये तैयार हो जाना, उसके घोर पतन का सूचक था।

अपने जीवन को नीरस पा वह बच्चो से नाराज रहने लगी। तनिक-सी बात पर उनकी ताडना करने लगती थी। और बच्चे अपनी माँ के इस व्यवहार पर बितर-बितर माँ का मुख देखते रहते थे।

जिस दिन करण अमरावती से गया, उसी दिन सायंकाल प्रतिहार ने द्वार खटखटाकर उसको सूचना दी कि एक पुरुष और स्त्री उससे मिलने आये हैं। वह बाहिर देखने आई तो नारद को एक युवती के साथ खडा देख, चकित रह गई। उसकी सूचना के अनुसार नारद वहाँ से सैंकडो कोस दूर शची के साथ उसको पतित करने की योजना में सहयोग दे रहा था। इस कारण वह समझ नही सकी कि वह सत्य ही नारद को देख रही है, अथवा उसको प्राप्त हुई सूचना मिथ्या थी। सुमन को चुप देख नारद ने मुस्कराकर पूछा—"सुमन बेटी ! क्या देख रही हो ? हमें भीतर आने का निमन्त्रण नही दोगी क्या ?"

"आइये !" सुमन ने चेतते हुये कहा—"मैं तो कुछ और ही विचार

कर रही थी, आइये बहिन जी !" सुमन ने साथ में आई स्त्री को सबोधन किया।

उनको भीतर कर, द्वार बद कर सुमन ने प्रश्न भरी दृष्टि से उस स्त्री की ओर देखा। नारद ने साथ आई स्त्री को बैठने का आग्रह कर सुमन से कहा—"सुमन ! करण कहाँ है ?"

"तो आप नही जानते कि वे कहाँ है ? आपने पत्र नहीं भेजा था महाराज को जिसमें उनको कोई विश्वस्त दूत भेजने को कहा था ?"

"तो महाराज ने उनको भेज दिया है ? मैं तो समझता था कि आजकल महाराज उनसे प्रसन्न नही है। मेरा विचार था कि ऋषि जावाल को भेजेंगे ?"

"यह क्या रहस्य है देवर्षि ? मेरी तो बुद्धि में यह समा नही रहा।"

"मै तो करण से मिलने आया था। इनको भी उन्ही से मिलाने के लिये लाया था।"

"वे तो है नही। आज प्रातः ही चले गये है। मै यदि कुछ इनकी सेवा कर सकूं तो आज्ञा दीजिये।"

नारद कुछ काल के लिये सोच में पडा रहा। पश्चात् सतर्क हो हो उसने कहा—"सुमन ! तुम देवकन्या हो न ?"

"इसमें आपको सन्देह है क्या ? क्या मेरी माता के विषय में आपने कुछ बुरा-भला सुना है ?"

"हरे ! हरे !! यह बात नही सुमन ? मेरा पूछने का अभिप्राय यह था कि तुम्हारा हित देवताओ के साथ है न ?"

"मै अपने पति की सती पत्नी हूं ?"

"करण म्लेच्छ नही है। वह, उसकी माँ और उसका पिता सब आर्य है।"

(७)

सुमन के मन में इन्द्राणी के नहुष से विवाह के लिए तैयार हो जाने पर घोर संघर्ष चल पड़ा था। वह अत्यन्त उत्सुकता से अपने पति के उससे मिलकर वापिस आ जाने की प्रतीक्षा कर रही थी। वह सोचती थी कि शची के मन में यह विकार किस कारण उत्पन्न हुआ। देवताओ में शची के लिए भारी मान था। यह माना जाता था कि वे आदर्श सती साध्वी थी और उनके मन में लेशमात्र भी पाप नही विचर सकता फिर यह कैसे हुआ ? सुमन नही समझ सकी।

इससे भी अधिक वह नारद के व्यवहार पर विस्मय कर रही थी। नारद ने उसको इस प्रकार की प्रेरणा क्योंकर दी ? वह यह सब कुछ समझने में अशक्त थी। शची का एक विजेता के साथ विवाह के लिए तैयार हो जाना, उसके घोर पतन का सूचक था।

अपने जीवन को नीरस पा वह बच्चों से नाराज़ रहने लगी। तनिक-सी बात पर उनकी ताडना करने लगती थी। और बच्चे अपनी माँ के इस व्यवहार पर बितर-बितर माँ का मुख देखते रहते थे।

जिस दिन करण अमरावती से गया, उसी दिन सायकाल प्रतिहार ने द्वार खटखटाकर उसको सूचना दी कि एक पुरुष और स्त्री उससे मिलने आये हैं। वह बाहिर देखने आई तो नारद को एक युवती के साथ खड़ा देख, चकित रह गई। उसकी सूचना के अनुसार नारद वहाँ से सैंकड़ों कोस दूर शची के साथ उसको पतित करने की योजना में सहयोग दे रहा था। इस कारण वह समझ नही सकी कि वह सत्य ही नारद को देख रही है, अथवा उसको प्राप्त हुई सूचना मिथ्या थी। सुमन को चुप देख नारद ने मुस्कराकर पूछा—"सुमन बेटी ! क्या देख रही हो ? हमें भीतर आने का निमन्त्रण नहीं दोगी क्या ?"

"आइये !" सुमन ने चेतते हुये कहा—"मैं तो कुछ और ही विचार

कर रही थी, आइये बहिन जी !" सुमन ने साथ में आई स्त्री को सबो-धन किया।

उनको भीतर कर, द्वार बद कर सुमन ने प्रश्न भरी दृष्टि से उस स्त्री की ओर देखा। नारद ने साथ आई स्त्री को बैठने का आग्रह कर सुमन से कहा—"सुमन ! करण कहाँ है ?"

"तो आप नही जानते कि वे कहाँ है ? आपने पत्र नही भेजा था महाराज को जिसमें उनको कोई विश्वस्त दूत भेजने को कहा था ?"

"तो महाराज ने उनको भेज दिया है ? मैं तो समझता था कि आजकल महाराज उनसे प्रसन्न नही हैं। मेरा विचार था कि ऋषि जावाल को भेजेंगे ?"

"यह क्या रहस्य है देवर्षि ? मेरी तो बुद्धि में यह समा नही रहा।"

"मैं तो करण से मिलने आया था। इनको भी उन्ही से मिलाने के लिये लाया था।"

"वे तो हैं नही। आज प्रात: ही चले गये है। मैं यदि कुछ इनकी सेवा कर सकूं तो आज्ञा दीजिये।"

नारद कुछ काल के लिये सोच में पडा रहा। पश्चात् सतर्क हो हो उसने कहा—"सुमन ! तुम देवकन्या हो न ?"

"इसमें आपको सन्देह है क्या ? क्या मेरी माता के विषय में आपने कुछ बुरा-भला सुना है ?"

"हरे ! हरे !! यह बात नही सुमन ? मेरा पूछने का अभिप्राय यह था कि तुम्हारा हित देवताओ के साथ है न ?"

"मैं अपने पति की सती पत्नी हूँ ?"

"करण म्लेच्छ नही है। वह, उसकी माँ और उसका पिता सब आर्य है।"

"मैं तुम्हारे सम्मुख एक रहस्योद्घाटन करने के विचार से यह पूछ रहा था। करण से भी इसी दृष्टि से बातचीत करने आया था। नहुष के मन की बात को न जानने के कारण यह अनुमान नही लगा सका कि करण ही शची के पास भेज दिया जायेगा।

"यूं तो तुम पर विश्वास ही था और तुमसे यह आशा लेकर आया था कि तुम करण को हमारे अनुकूल ही सम्मति दोगी। अब यह नहीं है। इस कारण तुमसे एक रहस्य को अपनें मन में सुरक्षित रखने के विचार से उक्त प्रश्न किया था। मैं तुम पर विश्वास रखकर ही इस देवी का परिचय दे रहा हूँ। ये हैं काश्मीर के महाराजा देवनाम की सुपुत्री देवयानी। इनके पति विक्रमदेव नें गान्धारो को ब्रह्मावर्त से भगाकर सिन्धु के तट तक धकेल दिया है। ये अब देवलोक से गान्धारों को निकालने के लिए आई है। और हम देवताओ से हित रखने वाले प्रत्येक से आशा करते हैं कि वह इनको अपना सहयोग देगा।"

सुमन देवयानी का नाम सुन अपने स्थान से उठ अचम्भे में उसे देखने लगी। देवयानी उसे इस अवस्था में देख मुस्करा रही थी। जब सुमन को समझ आई तो हाथ जोड नमस्कार कर बोली—"यहां आपका इस प्रकार चले आना भयरहित नही है।"

"सुमन बहिन! बिना भय लिए भला कोई कार्य हो सकता है? देवलोक का उद्धार कोई साधारण बात नही। इसके लिए भारी त्याग और बलिदान की आवश्यकता अपेक्षित नही है क्या?"

"पर आपके देश के पुरुष क्या कर रहे हैं, जो उनकी राजकुमारी को इतना कष्ट उठाना पड रहा है?"

"वे भी यहां हैं। और उनके पथप्रदर्शन और उत्साहवर्द्धन के लिए यहां चली आई हूँ। मुझको सूचना मिली थी कि देवताओं और गान्धारो में खुलकर युद्ध होने लगे हैं, इस कारण युद्ध करने वालो को

मार्गदर्शन के लिए किसी की आवश्यकता थी। सो मैं चली आई हूँ।"

सुमन का मन इन लोगो के भावी कार्य-क्रम को जानने के लिए व्याकुल हो उठा, परन्तु उत्सुकतावश वह समझ नही सकी कि क्या और कैसे पूछे। इस कारण वह देवयानी की वातो पर आश्चर्य कर रही थी। देवयानी ने उसके अनिश्चित मन को देख कहा—"सुमन वहिन ! वैठोगी नही क्या ? तुम चाहती हो हम उठकर चल दें ?"

"नही।" सुमन ने वैठते हुए कहा—"नही। मेरा यह अभिप्राय नही है। वास्तव में आपकी सव वातें मेरे लिए नई है। और मैं इनके अर्थ न समझ सकने से नही जानती कि मैं क्या कहूँ, अथवा क्या करूँ ?"

"देखो सुमन !" देवयानी ने कहा—"यदि तुम्हारे पति होते तो हम उनसे अपनी योजना में वहुत सहायता ले सकते थे। परन्तु घटना-वश वे यहाँ नही है। इस कारण वह सहायता, जिसकी हम आशा कर रहे थे, अव नही मिल सकती। परन्तु आपसे, जैसे अन्य देवताओ की स्त्रियो से भी, मैं मिल रही हूँ, और उन्हे समझा रही हूँ, कहती हूँ कि सव हमारी योजना से सहानुभूति रखें और समय पड़ने पर, जिस किसी प्रकार से भी हो सके, हमारी सहायता करें।"

"क्या सहायता कर सकती है हम ?"

"यह अभी नही वता सकती। समय आने पर प्रत्येक से कुछ न कुछ काम लिया ही जावेगा। अव आप लोगो के उद्धार का समय निकट आ गया है। आप सव स्त्री-पुरुष, दोनो को तैयार हो जाना चाहिए। जीवन से अधिक प्रिय मान की रक्षा के लिए कुछ करने का समय आ गया है। योजना के अन्य अग हम फिर वतायेंगे। इतना स्मरण रखना चाहिये कि मुक्ति का समय निकट ही है।"

इतना कह देवयानी विदा होने के लिए उठ पड़ी। इस समय सुमन ने पूछा—"मैंने तो देवर्षि से कई बातें पूछनी हैं। आप बैठिये न। आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ ?"

नारद ने कहा—"मैं कल किसी समय मिलकर तुम्हारे पति के विषय में कुछ बतलाऊँगा। इतना तुमको समझ लेना चाहिए कि किसी प्रकार की चिन्ता करने का कोई कारण नहीं है।"

"परन्तु मैं तो महारानी जी के विषय में जानना चाहती थी। आपने यह क्या किया है ? एक ओर तो देवलोक के उद्धार की बात करते हैं, दूसरी ओर महारानी को इस पशु की पत्नी बनाने का यत्न कर रहे हैं ? यह सब क्या है ? मैं तो यह विचार कर पागल हुई जाती हूँ।"

"तुम सत्य कहती हो। वास्तव में यह चिन्ता का विषय है, परन्तु तुम कल तक धैर्य नही कर सकती क्या ? करण के जाने का मुझको ज्ञान नही था। कल तक सब पता चल जावेगा। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि सब ठीक होगा। वैसा ही जैसा होना चाहिए।"

सुमन चुप कर गई। नारद और देवयानी, यह कह कि कल हम पुनः मिलेंगे, विदा हो गये।

देवयानी तथा नारद जब राजभवन से निकल आये तो विचार करने लगे कि करण का शची के लिए जाना ठीक हुआ है अथवा नहीं। नारद ने कहा—"मैं समझता हूँ कि करण के चले जाने से कोई हानि नही हुई। मलिन्द इतनी चतुर है कि जाबाल के स्थान पर करण के होने पर समझ जायेगी कि क्या बात करनी चाहिये। रहा उसके यहाँ होने से लाभ की बात ! यह सदिग्घ थी। वह हमारी योजना में सम्मिलित होता अथवा न होता कहा नहीं जा सकता था। अब उसकी अनुपस्थिति में सुमन से जो कार्य लेना है, सुगमता से लिया जा सकेगा।

द्युमन पर मुझको अधिक भरोसा है। मैं उससे कल मिलूंगा और सब बात स्पष्ट कर लूंगा।"

"अब सब बात इतनी निकट आ गई है कि इसमें तनिक सी भूल से सारा कार्य बिगड सकता है।"

"देखो देवी!" नारद ने कहा—"हम अपनी ओर से पूर्ण प्रयत्न और ध्यानपूर्वक कार्य करते रहे हैं। इस पर भी सफलता न मिली तो क्या किया जा सकता है? भगवान् को जैसा स्वीकार होगा, वही होगा।"

देवयानी नें अपने पुत्र को अपने माता-पिता के पास छोड दिया था। वह अब एक वर्ष का हो चुका था। स्वय अपने निश्चयानुसार नहुष को दड देने के लिये देवलोक में चली आई थी। उसको देवलोक में आये दो सप्ताह के लगभग हो गये थे और उसके आने पर काश्मीर-सैनिको का उत्साह दुगना हो गया था। इसके अतिरिक्त और सैनिक भी काश्मीर से आ पहुँचे थे जो अमरावती में भिन्न-भिन्न स्थानो पर छा चुके थे। इन सबके खाने-पीने का प्रबन्ध काश्मीर से आई दुकानें कर रही थी। खर्च काश्मीर राज्य दे रहा था।

प्राय: नित्य रात को गुप्त स्थानो पर सभायें होती थी जिनमें देवता और काश्मीर-सैनिक, जो देवलोक के उद्धार की योजना में सहयोग में दे रहे थे, आते थे और अपने नायको को कार्य के लिए तैयार कर रहे थे। देवताओ को बताया जा रहा था कि इन्द्राणी को नहुष विवश कर रहा है कि उससे विवाह करे। यह हम नही होने देंगे। इसमें देवताओ का अपमान है। काश्मीर-सैनिको को बताया जाता था कि कार्य अन्तिम स्थिति तक आ पहुँचा है और अब इनको समाप्त होने में दो-तीन सप्ताह से अधिक नही लगेगा।

सुमति और देवयानी देवलोक की स्त्रियो में घूम-घूम कर उनको गान्धार-सैनिकों से सम्बन्ध-विच्छेद करने के लिए आग्रह कर रही थीं। इस सब प्रचार का परिणाम यह हो रहा था कि कही गान्धार-सैनिको को अपनी देवपत्नियो से झगडा होने लगा था और कही-कहीं तो मार-कुटाई की नौबत आ जाती थी। एक-दो गान्धारो को तो उनकी पत्नियो ने मार ही डाला था।

इन सबकी सूचना नहुष के पास जाती थी, परन्तु वह शची की प्रतीक्षा में था। और ऐसे समय जब वह आने वाली थी, नगर में किसी प्रकार का झगडा खडा होने देना उचित नहीं मानता था। इस कारण दिन-प्रतिदिन देवताओ का साहस बढता ही जाता था और गान्धार उत्साहरहित होते जाते थे।

अगले दिन एक देवता सुमन के पास नारद का पत्र लाया। उसमें लिखा था—"बेटी सुमन! पत्रवाहक के साथ चली आओ तो तुमको अपने मन के सदेहों का उत्तर मिल जायेगा। मैंने इस समय तुम्हारे घर में आना उचित नही समझा। अपने बच्चो को लेती आना कल रात वे सो रहे थे। कोई उनसे मिलना चाहता है।"

सुमन अपने पति के विषय में पूर्ण सूचना चाहती थी। इस कारण पत्र पाते ही बच्चो को लेकर पत्रवाहक के साथ ही वह चल पडी। वह पत्रवाहक उसको अपने साथ नगर के एक देवता के मकान पर ले गया। वहाँ नारद, देवयानी और सुमति और अन्य कई महिलायें और पुरुष बैठे विचार कर रहे थे। सुमन को आया देख नारद उठकर उसको एक पृथक् आगार में ले गया। वहाँ सुमन को बिठाकर उसने कहा—"रात तुम अपने पति के विषय में समाचार प्राप्त करने की इच्छुक थी। मैंने आज पूर्ण समाचार प्राप्त कर लिया है। करण आज सायकाल तक इन्द्राणी के निवासस्थान पर पहुँच जायेगा। वहाँ पर जो वार्त्तालाप

होगा उसका समाचार यहाँ नहुष के पास आवेगा। तब महाराज नहुष इन्द्राणी को लिवाने के लिए स्वयं जावेंगे और पश्चात् दोनो का विवाह होगा। यह जावाल ऋषि ने मुझको बताया है।"

"पर देवर्षि ! पत्र तो आपने लिखा था कि महारानी नहुष से कुछ शर्तें करना चाहती है ?"

"हाँ, वह पत्र मैंने ही लिखा था, परन्तु जैसा महर्षि जावाल ने कहा था वैसा ही लिख दिया था। इस पर भी हमारा विचार है कि हम इस विवाह को रोकने में सफल होंगे।"

"पर यदि इन्द्राणी की ही विवाह की इच्छा हुई तो क्या होगा ?'

"सुमन ! तुम उसको मूर्ख समझती हो क्या ? तुमसे तो वह कई गुणा अधिक समझदार और अनुभवी है। मुझको उस पर विश्वास है।"

"तो माणिक्य के पिता जब महारानी के पास पहुँचेंगे और वहाँ आपका पत्र तथा महाराज नहुष का पत्र दिखायेंगे तो क्या होगा ?"

"वे मेरे पत्र पर विश्वास नही करेंगी क्योंकि मेरा असली पत्र भेजा नही गया। नहुष का पत्र पढ़कर उसके लिखने वाले को मूर्ख मानेंगी। इस पर भी महर्षि जावाल का कहना है कि महारानी मान जायेंगी।"

"तो !"

"तो बात स्पष्ट है कि पूर्व इसके कि कोई घटना घटे, हम नहुष के राज्य का ध्वंस कर देना चाहते हैं। उसी में तुम्हारी सहायता चाहते हैं।"

"क्या सहायता चाहते हैं आप मुझसे ?"

"समय आने पर बताऊँगा। तुम अपने मन को दृढ़ कर कार्य करने के लिये तैयार रहो।"

इन सब सूचनाओं से सुमन को शान्ति नही मिली। वह विचार कर रही थी कि जावाल ऋषि के कहने पर नारद ने पत्र भेजा है। नारद

इस पर मैंने उनको कहा कि विवाह के विना उनका अमरावती में रहना राजनीतिक विचार से उचित नही है। विवाह पहिले होगा और पीछे उनको अमरावती में रहने की सुविधा मिलेगी। इस पर बातचीत के उपरान्त हम निम्न शर्तों पर एकमत हुए हैं। यह एकमत भी अन्तिम नही है। आप जब तक स्वीकार नही करते, तब तक कुछ नहीं माना जायगा। मैं इसी स्थान पर हूँ। कारण यह कि महारानी जी के विचार परिवर्तित हो जाने का भय है।

यदि आपको शत स्वीकार हो तो आप तुरन्त यहाँ आ जायें। एक दूत पहिले भेज दें जिससे आपके सीमा पर पहुँचने की तिथि और समय का पता चल सके। हम आपको काश्मीर राज्य की सीमा पर मिलेंगे और वहाँ से आप महारानी जी के साथ अमरावती आ सकेंगे।

"शर्तें इस प्रकार हैं —

१ अमरावती की मान-मर्यादा के विचार से वे चाहती हैं कि आप उनको लेने के लिए स्वय आयें। आप वर के रूप में आवें न कि एक विजेता के रूप मे। अर्थात् सेना लेकर नही प्रत्युत अकेले आना चाहिए।

२. आप एक ऐसे रथ पर सवार होकर आयें, जैसा आज तक किसी भी देवता ने प्रयोग में न लाया हो।

३. वे यहाँ एक रथ तैयार करवा रही है और उसमें काश्मीर-सीमा तक आवेंगी। वहाँ आपसे भेंट होगी और पश्चात् उसी रथ में बैठकर आपके साथ अमरावती जावेंगी।

४ विवाह कराने के लिए ब्रह्मा जी आवेंगे और उनके आशीर्वाद से ही भविष्य में राज्य-कार्य होगा।

५. वे आपसे पृथक् एक भवन में रहेंगी और वहाँ वे आपसे मास में एक वार भेंट किया करेंगी।

कृपया तुरन्त सूचित कीजिये कि किस दिन आप सीमा पर पहुँच रहे है जिससे उसी दिन उचित समय पर हम भी वहाँ पहुँच सकें। आपका काश्मीर राज्य में आना उचित नही। यहाँ यह प्रवन्ध गुप्त रखा जा रहा है।"

नहुष इस पत्र के मिलने से अत्यन्त प्रसन्न था। उसने ऋषियो और मन्त्रीगण की तुरन्त एक वैठक वुलाई और उसमें पत्र पर विचार आरम्भ हुआ। सभा में सभी इस पत्र पर अत्यन्त प्रसन्न प्रतीत होते थे। सवका विचार था कि शची के देवलोक में आ जाने से और नहुष की पत्नी वनना स्वीकार करने से, देवताओ और गान्धारो में सघर्ष समाप्त हो जावेगा। शची से नहुप को पारद-रहस्य मिल जावेगा और देवताओ और गान्धारो से मिश्रित परिवार देवलोक मे शासक वन जावेगा।

नहुप को केवल एक शर्त पर आपत्ति थी। वह यह कि वह मास में केवल एक वार महारानी से भेंट कर सकेगा, परन्तु ऋषियो ने उसको समझाया। उन्होने वताया कि इस प्रकार की वातें विवाह से पूर्व नही की जाती। ये तो पति-पत्नी परस्पर एकान्त में निश्चित करते है।

सवसे कठिन प्रश्न वाहन का था। शर्तो में एक यह भी थी कि नहुष एक ऐसे वाहन पर सवार होकर आवे जैसा पहिले कभी भी किसी के द्वारा प्रयोग में न आया हो। देवतालोग अनेको प्रकार के वाहनो की सवारी करते थे। चूहों और चिड़ियो से लेकर सिहों तथा हाथियो तक को वे इस अर्थ प्रयोग में ला चुके थे। इस पर वहुत वाद-विवाद हुआ और अन्त में वाहन-निर्माताओ को वुलाया गया और उनको आज्ञा दी गई कि वे कोई ऐसे वाहन की योजना वनायें, जो महारानी जी को संतुष्टि कर सके।

नहुप ने करण को उसके पत्र का उत्तर दिया। इसमें उसने

लिखा—"मेरे बुद्धिमान् महामन्त्री ! तुम्हारे प्रयास की सफलता के लिये बधाई देता हूँ। महारानी जी की सब शर्तें स्वीकृत हैं और मैं एक-दो दिनो में यहाँ से चल दूंगा। वाहन तैयार किया जा रहा है। यह यत्न किया जा रहा है कि यह पूर्व रचित विमानो से सर्वथा भिन्न हो तथा सर्वथा विलक्षण हो। मेरे सीमा पर पहुँचने से दो दिन पूर्व आपको समय तथा दिन की सूचना मिल जायेगी।"

जो दूत पत्र लेकर आया था वही उत्तर लेकर चला गया और उसके जाने के उपरान्त वाहन की तैयारियाँ होने लगी। वाहन-विशेषज्ञो ने इस प्रश्न पर विचार-विनिमय आरम्भ कर दिया। रथ का स्वरूप और उसको ले जाने के लिये जानवरो पर विचार होने लगा। विशेषज्ञो में देवता कलाकार और कुछ गान्धार थे। ऋषियो में से इस गोष्ठी में जाबाल भी थे।

रथो के बहुत स्वरूप प्रस्तावित हुए परन्तु एक-एक कर सब ही अस्वीकृत हो गये। कुछ तो इस कारण कि उन पर सवारी करना सुखप्रद नही था। कुछ इस कारण कि वैसा वाहन किसी देवी-देवता का पहिले भी था। अन्त में एक कलाकार देवता ने एक अनुपम वाहन का स्वरूप चित्रित कर विचारार्थ रखा। यह सिंह के मुख वाला, अजगर के पेट वाला और छिपकली के समान दुम वाला जन्तु था। इसके दस पग थे। यह जन्तु लकडी, कपडा और धातु का बनना था और इस पर सागर के जन्तुओ का रग होना था। इस रथ को ले जाने के लिए यह प्रस्ताव था कि इसको मनुष्य उठायेंगे, परन्तु जाबाल ऋषि का कहना था कि मनुष्य तो राजाओ की पालकियाँ उठाते ही हैं। इस पर यह प्रस्ताव किया गया कि चूंकि पालकियाँ उठाने वाले प्राय. अनपढ और निर्धन लोग होते हैं, इस कारण इस रथ को ले जाने वाले विद्वान्, वेदवक्ता, ऋषि होने चाहिए। इस प्रस्ताव पर गान्धार अति प्रसन्न हुए। जाबाल मुख देखता रह गया और देवता चुप रहे। अक्रिध,

विवादोपरान्त जब अन्य कोई उपाय न सूझा तो इस बात का अंतिम निर्णय हो गया। महाराज के रथ को खींचने के लिये बीस ऋषि ढूंढे जाने लगे जो दस-दस की बारी से रथ ले जा सकें। इस खोज में यह यत्न किया गया कि वे योग्य से योग्य विद्वान् हों जो वेद-वेदांगों के ज्ञाता हों और जो वेदगान करते हुए वाहन को खींचें।

वाहन का निर्माण होने लगा तो नगर में समाचार फैल गया। शची के विषय में भी जनता के विचार प्रकट होने। लोग परस्पर काना-फूसी करने लगे और नारद के साथी लोगों को कहने लगे कि इस महापातकी कार्य के सम्पन्न होने के पूर्व ही इस राज्य का ध्वंस कर देना चाहिए।

जो लोग उतावले हो गए थे वे देवयानी से यह मांग करने लगे कि अब तो पानी नाक तक आ गया है। इससे अधिक प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। जिस राज्य में विद्वान् वेदवक्ता ऋषियों से कुलियों समान व्यवहार किया जाये, जहाँ सती-साध्वी स्त्रियाँ स्वेच्छा से पतिता बनने लगें, वहाँ रहना अधर्म है। देवयानी को बहुत कठिनाई प्रतीत हो रही थी कि किस प्रकार देवताओं को शान्त रखा जाये। उसका कहना था—"मैं यह सब कुछ देख रही हूँ। मैं भी अनुभव करती हूँ कि अब और सहन नहीं किया जा सकता। ऐसी दासता को दूर करते-करते मृत्यु भी हो जाये, तो हमको उसका स्वागत करना चाहिए।

"आप लोग विश्वास रखें कि हम उचित समय पर उचित कार्यावाही अवश्य करेंगे। आप अपने भाग का कार्य करने के लिए तत्पर रहें।"

वास्तव में नारद और देवयानी नहुष के जाने के कार्यक्रम की घोषणा की प्रतीक्षा कर रहे थे। रथ बनने में तीन दिन लग गए। सिंहमुखी अजगर बनाया गया। उसकी पीठ पर एक छत्र के नीचे नहुष

के बैठने के लिए आसन था। यह कृत्रिम जन्तु ऐसा बना कि देखने वाले इसके असली होने का विश्वास करने लगते थे। इस अजगर को खींचने के लिए बीस ऋषि, जो युवा, सुदृढ और मधुर स्वर में वेदपाठ कर सकते थे, चुन लिए गए। इनमें कश्यप, भृगु, पुलस्कर, अगस्त्य इत्यादि ऋषि भी सम्मिलित थे। इनमें से कश्यप देवताओं का गुरु था और उसके लिए देवताओं में भारी सम्मान था।

जब यान तैयार हो गया तो नगर के लोग इसको देखने गए। यह राजभवन के सम्मुख प्रदर्शनार्थ रखा हुआ था। देखने वाले कलाकारों की प्रशंसा किए बिना नहीं रहते थे। इस पर भी देवता इसको देख रक्ताश्रु बहाते थे। वह अब दो वर्ष के नारद और उसके साथियों के प्रचार से अपने मान-अपमान का अनुभव करने लगे थे।

जब इस यान को खींचकर चलने वाले ऋषियों के नाम घोषित किए गए, तो देवताओं के मन विषाद से भर गए। उसी रात काश्मीर-सैनिकों को बुलाकर यह आदेश दे दिया गया कि उनको अंतिम प्रयास के लिए तैयार रहना चाहिए। साथ ही साधारण देवताओं से कहा गया कि वे सहस्रों की संख्या में महाराज नहुष की सवारी में सम्मिलित हों और जब उनको संकेत किया जाये तो वे नहुष और उनके साथियों का काम तमाम कर दें।

सैनिकों को कहा गया कि वे सब नगर की मन्डी में सवारी के स्वागत के लिए एकत्रित हो जायें। वहाँ उनके नेता उपस्थित होंगे और वे आज्ञा करेंगे। देवताओं में से युवकों को कहा गया कि वे मन्डी में एकत्रित रहें और सवारी के समय नेतागणों के संकेत की प्रतीक्षा करें।

जिन ऋषियों ने यान को खींचना था वे एक दिन पहले अपने-अपने भवन से बुला लिये गये और उनको यान चलाने का और चलाते-चलाते

वेदगान करने का अभ्यास कराया गया। इस प्रकार अभ्यास कराकर उनका कार्य उनको समझा दिया गया और उनको उस रात भवन में रखा गया, जिससे उनमें से कोई भाग न जाये।

रात के समय सब ऋषि भवन के विशाल आगार मे रखे गये। जब रात के भोजन के पश्चात् आगार मे विश्राम के लिये गये तो वे अपने दुर्भाग्य और इस अपमानजनक कार्य पर विचार करने लगे। उनमें से प्रायः सभी अपने भगवान् को और अपने दुर्भाग्य को कोस रहे थे। कुछ तो उन ऋषियो को गालियाँ देते थे, जिन्होंने नहुष की सहायता का वचन दिया था और जिन्होंने ब्रह्मा से जीवित पारद दिलवाया था। इनमें प्रमुख अगस्त्य ऋषि था। उसने अपने ऊपर लगाये आरोपो का उत्तर दिया। उसने कहा—"विद्वद्वर ! हमने देवलोक मे बढ रहे अनाचार और दुराचार को रोकने का यत्न किया है। यह यत्न बिना नहुष की सहायता के नही हो सकता था। इस कारण जनता में चरित्र की स्थापना के लिये हमने नहुष की सहायता की और उसके राज्य में सुख और शान्ति के लिये ब्रह्मा से जीवित पारद दिलवाया। हमको विश्वास है कि हमारा कार्य शुद्ध हित की भावना से प्रेरित था।"

"पर श्रीमान् !" एक युवक ब्राह्मण ने कहा—"आपने शची से विवाह में सहायता क्यो की है ?"

"तो इससे हानि ही क्या हो गई है ? हमारी योजना में यह रथ की सम्मति नहीं थी।"

"शची से नहुष का विवाह पाप है और उस पाप में सहायता देने से ही यह अपमानजनक कार्य भगवान् ने आपको करने को दिया है।"

जब सब इस प्रकार का रोष एक-दूसरे पर प्रकट कर रहे थे, एक वेद-पाठी ब्राह्मण, जिसका नाम जनक था और जो सबकी बातें धैर्य से सुन रहा था, कहने लगा—"मैंने कल प्रातःकाल एक स्वप्न देखा था। मैंने

उस स्वप्न में अनुभव किया कि मैंने घोर पाप किये हैं और उनके कारण मुझे भारी कष्ट दिया जा रहा है। मेरी पीठ नगा कर मुझे कोडे लगाये जा रहे है। मैं चीखें मार रहा हूँ और 'अरी माँ !' 'अरी माँ !' कहकर पुकार रहा हूँ। मैं कह रहा हूँ कि मुझको बचाओ।

"मेरा करुण-क्रन्दन सुन मेरी माँ, जिसका देहान्त हुये चिरकाल हो चुका है, प्रकट हुई और उसने मुझे कुछ ऐसे पाप, जो मैंने किये थे, स्मरण कराये। मैंने उससे इस बार बचाने की प्रार्थना की और वचन दिया कि पुन: ऐसे पाप नही करूँगा। इस पर उसने मेरे लिये परमात्मा से प्रार्थना करने का वचन दिया। कुछ काल पश्चात्, उसने मेरे पास पुनः आकर कहा कि मै नगर की मन्डी में जाऊँ और वहाँ भगवान् साक्षात् आकर मेरी रक्षा करेंगे।

"इस आश्वासन पर मेरी नींद खुल गई और मै समझता हूँ कि हमारी इस अपमानजनक दासता से मुक्ति नगर की मन्डी में होगी। भगवान् साक्षात् वहाँ आकर हमें मुक्त करायेंगे।"

इस पर सब ब्राह्मण-देवता हँसने लगे। एक ने तो यहाँ तक कह दिया—"मन्डी में से तो सवारी जायेगी ही नही।"

"तो भगवान् मन्डी को ही उठाकर हमारे मार्ग में ले आवेंगे। जिससे जनक जी महाराज का उद्धार हो सके।" एक ने व्यग में कह दिया।

एक अन्य बोला—"जनक जी को मैं अन्य अनेको देवताओ से अधिक पवित्रात्मा नही मानता। उन सबका तो अभी तक उद्धार हुआ नही, फिर जनक जी के लिए ही भगवान् यह सब कष्ट क्यो करेंगें ?"

'भाई ! इनकी माँ की यह सिफारिश है। शायद वह देवताओ में सबसे अधिक धर्मात्मा रही होगी।"

इस प्रकार सर्वथा निराशापूर्ण बातचीत चल रही थी। जब वे सब

अपने-अपने स्थानो पर जा सोने लगे तो जनक भी चुप हो लेट गया। उसे नीद नही आ रही थी। जब बहुत रात बीतने तक भी वह सो नही सका तो उठकर आगार के बाहिर चला गया। आगार के बाहर प्रहरी खडा था। प्रहरी ने जनक से पूछा—"कहाँ जा रहे है ऋषि महाराज ?"

"भीतर मन तनिक चलायमान हो रहा था। इसको शान्त करने के लिए बाहर शीतल पवन में विचरने के लिए यहाँ आ गया हूँ।"

प्रहरी को दया आ गई। उसने कहा —"ऋषि महाराज, उस सामने पडी चौकी पर बैठकर ही पवन का सेवन कर लीजिये। दूर नही जाइये।"

"धन्यवाद" जनक ने कहा, और वह बाहर आँगन में चौकी पर बैठ गया। कुछ ही देर पश्चात् एक अन्य ऋषि, जिसका नाम कश्यप था, जनक के समीप आकर बैठ गया।

जनक ने पूछा—"तो आपको भी नीद नही आई ?"

"भला इस अपमानजनक अवस्था में भी नींद आ सकती है ? मैने इस दुष्ट को प्रजा के प्रकोप से बचाने का बहुत यत्न किया है परन्तु यह अपनी इच्छा की पूर्ति में दूसरो की भावनाओं का विचार ही नही करता।"

"भगवन् ! मुझको अपने स्वप्न पर विश्वास है। मेरे स्वप्न कभी निष्फल नही जाते। परन्तु एक बात मै जानता हूँ कि उचित समय पर यदि हम कुछ यत्न न करें तो भगवान् सहायता नही करेगा। मैने इस किवदन्ती का परीक्षण किया है, कि भगवान् उसकी सहायता करता है जो स्वय अपनी सहायता आप करते हैं।"

कश्यप को पिछले छः वर्षो के कष्टों का ध्यान कर भगवान् पर भरोसा नही रहा था। इस पर भी डूबते को तिनके के सहारे वाली

बात थी। उसने उत्सुकता से पूछा—"मान लिया भगवान् हमारी सहायता करेगा, परन्तु वह हमसे किस बात की आशा करता है ?"

जनक ने उत्साहित हो बताया—हम इस नहुष के अत्याचारो से पीडित हैं। और इन अत्याचारो से बचने के लिए ही परमात्मा से सहायता चाहते हैं। इस कारण जहाँ उसने सहायता करने का आश्वासन दिया, वहाँ उसी स्थान पर हम को इस आततायी का अत्याचार सहन करने से इन्कार कर देना चाहिए।"

"भरे बाजार में कोडो से पीटे जायेंगे।"

"अनेको अन्य लोग हमारी भाँति मिथ्या आरोपो पर पीटे जाते है। जहाँ सहस्रों अन्य पीटे गए हैं, वहाँ हम भी सही। इस पर भी मुझको विश्वास है कि परमात्मा का नाम लेकर, यदि हम सब इस अत्याचारी को उठाकर ले जाने से इन्कार कर दें, तो वह अवश्य हमारी सुने गा।"

"भाई, मैं तुम्हारे साथ हूँ। जैसा तुम कहोगे मैं वही करूँगा।"

"तब ठीक है। मैं और तुम सबसे आगे लगेंगे जिससे कि हमें कोडे खाते देखकर दूसरे भी उत्साहित हो हमारा अनुकरण करें।

(६)

विदा होने से पूर्व की रात नहुष के भव में भारी उत्सव मनाया गया। इस उत्सव में भाग लेने के लिए सैकडो नागरिक और गान्धार-सैनिक निमन्त्रित किए गये। रागरग, नृत्य और मद्यपान पर भारी जोर था। जब मद्य का प्रभाव उपस्थित लोगो पर होने लगा, तो हसी के फव्वारे छूटने लगे। भाँति-भाँति के व्यग महाराज और शची पर कसे जाने लगे।

प्रत्येक स्थान पर कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो अपना और जाति के मान-अपमान का ध्यान छोडकर राजा-महाराजा की ही खुशामद करते

हैं। ऐसे ही देवता इस उत्सव में बुलाये गये थे। इस पर भी जब अश्लीलता सीमा उल्लघन करने लगी, तो कुछ लोग मन में चचलता अनुभव करने लगे। उत्सव में ही परस्पर कानाफूसी होने लग गई। और देवता उत्सव को छोड जाने लगे। गान्धारो ने देवताओ को जाते देख लिया और उन्होने इसे अपने महाराज का अपमान माना। इस कारण वे मद्य के नशे में अपने भावो को दवा नही सके। एक नर्तकी का नाच समाप्त हुआ था कि एक गान्धार ने नहुप के सम्मुख निवेदन कर दिया—"महाराज ! ये देवता हमारे साले और स्वसुर वन गये हैं। इस कारण अपने समधियो के हंसी-ठट्ठे से इन्हे नाराज नही होना चाहिए।"

"हां ! हां !" नहुष ने प्रसन्नता से उन्मत्त हो कह दिया। "कौन है जो नाराज हो रहा है ?"

एक देवता उस समय द्वार से वाहिर निकल रहा था। उक्त निवेदन करने वाले ने उसकी ओर उंगली कर कह दिया—"वह देखिये महाराज ?"

"पकडो उस साले को। मत जाने दो।"

इस आज्ञा के मिलते ही गान्धार उसकी ओर लपके और उन्होने उसे पकड महाराज के सम्मुख खडा कर दिया। महाराज ने माथे पर त्योरी चढाकर पूछा—"क्यो वे ! क्या नाम है तुम्हारा ?"

"धीमत्, महाराज।"

"कहाँ चले जा रहे थे ?"

"घर।

"क्यो ?

यहाँ का नाच रग निरस हो रहा था।

"पीटो इस साले को। "नहुष ने क्रोधपूर्वक कहा।

किसी ने अपना भाला धीमत् के पेट मे घोप दिया। जब वह तड़प-तड़प कर मर गया तो उसका शव उठाकर भवन के फाटक के बाहर फेंकवा दिया।

देवताओं में से कुछ ने, जो नहुष का यान देखने आये हुए थे, उस शव को देख लिया। उन्होंने नगर में समाचार पहुँचाया, तो पता चल गया कि धीमत् उस रात उत्सव में सम्मिलित हुआ था और वही भाले से घायल कर मार डाला गया है। इससे पूर्ण नगर में प्रतिकार की भावना जाग उठी। बहुत कठिनाई से नारद और देवायनी ने लोगो के क्रोध को अगले दिन तक शात किया। नारद घूम-घूम कर देवताओं को कह रहा था—"कल मन्डी में एकत्रित हो जाओ। सबके साथ हुए अत्याचारो का बदला लिया जावेगा।"

अगले दिन बहुत सबेरे नहुष उठ स्नानादि से निवृत्त हो अल्पाहार कर तैयार हो गया। इस समय महाराज की सवारी के अध्यक्ष ने वेदपाठी ऋषियो को खिला-पिला कर यान के समीप एकत्रित कर लिया और उनसे कहने लगा—

"आप लोगो को यह पुण्य कार्य करने को दिया जा रहा है जो आज से पूर्व किसी भी सभ्य देश के रहने वालों ने नहीं किया। अपने महाराज को अपने कन्धो पर बैठाकर उनके विवाह की सवारी ले जाने का सौभाग्य आपको मिल रहा है।

"एक समय में इस यान को दस लोग उठावेंगे और वे पाँच कोस तक इस यान को लेकर जावेंगे। पाँच कोस के पश्चात् दूसरे दस लोग उठावेंगे। इस प्रकार वे पाँच कोस तक लेकर चलेंगे। वे दस, जो यान को उठाकर चल नही रहे होंगे, वे आगे जाकर नियत स्थान पर अपनी बारी की प्रतीक्षा करेंगे। अतएव तुममें से कौन पहले दस इस महान् कार्य के लिये आगे आते है?"

अध्यक्ष का विचार था कि नगरके भीतर यान को उठाने के लिए

कोई भी तैयार नहो होगा, परन्तु उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा तव जनक और कश्यप ने सवसे प्रथम आगे वढकर कहा—"हम इस कार्य को पहिले करेंगे।" इन दोनो के इस प्रकार अपने आपको सेवा के लिए उपस्थित करते देख पांच अन्य ऋषि और आगे वढ आये। अभी तीन और चाहिएँ थे और शेष ऋषियो में से तीन निकल नही रहे थे। विवश तीन ऋषियो को ज़वरदस्ती निकाला गया। शेष दस को सैनिक सरक्षको की देखरेख में पांच कोस के अन्तर पर पहिले ही पहुँचने के लिए रवाना कर दिया गया।

जव महाराज नहुष सवारी पर चढने के लिये तैयार हो पहुँचे तो उस समय सहस्रो गान्धार भवन के सम्मुख महाराज को विदा करने के लिए एकत्रित हो गए। गान्धार आज वहुत प्रसन्न थे। सवके मन में यही भावना थी कि शची के महारानी वनकर वहाँ आ जाने से गान्धारो का राज्य देवलोक में स्थिर हो जावेगा। पश्चात् देवताओ में पतन आरम्भ हो जावेगा और वे अन्य गान्धारो को लाकर वहाँ वसा सकेंगे। सवसे वडी वात यह थी कि आग्नेय अस्त्र इत्यादि युद्ध करनें के लिए उनको मिल जावेंगे। और तव वे विश्व-विजय कर सकेंगे।

"महाराज नहुष की जय हो", "महाराज नहुप की जय हो", इन जयघोषणाओं के साथ नहुष यान पर सवार हो गया। जनक तथा कश्यप यान उठाने वालों में सवसे आगे थे। सवारी का अध्यक्ष यानवाहक, जिसके हाथ में कोडा था, उस सिंहमुखी अजगर की गर्दन पर वैठ गया। पीछे पीठ पर नहुष का आसन था जिस पर स्वर्ण का मणि-माणिक्य से जडित छत्र छाया कर रहा था।

सवारी भवन से चली तो अध्यक्ष ने आज्ञा दी। "वेदगान हो।" और ऋषियो ने वेदगान आरम्भ कर दिया। "ओम् विश्वानि देव" इत्यादि।

सवारी भयन में से निकली तो नगर में से घूमकर जाने लगी। मार्ग के दोनो ओर सहस्रो लोग एकत्रित थे। वे इस सवारी के वैभव को देखने आये थे। पुरुष मार्ग के दोनों किनारो पर पक्तियो में खडे थे। घरो की छतो पर और छज्जो पर स्त्रियाँ, वालक और वृद्ध खडे थे। कुछ लोग सवारी पर पुष्पवर्षा भी कर रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि पूर्ण नगर ही उस मार्ग पर आ एकत्रित हुआ है और महाराज नहुष को सम्मानित कर रहा है। सवारी चल रही थी और वेदगान हो रहा था—"ओम् प्रजापते नत्वदेतानन्यो विश्वा ·।" इतनी भीड थी कि देवताओ में वृद्ध भी कहते थे कि ऐसा समारोह उन्होंने अपने जीवन में पहिले कभी नही देखा था।

सवारी धीरे-धीरे चल रही थी और प्रवन्धको का विचार था कि महाराज नहुष का प्रभाव जनता के मन में अकित कर दिया जाये। प्रत्येक वात इसी विचार से की जा रही थी।

जव यान ने नगर में प्रवेश किया तो भीड अधिक होती जाती थी। एक वात में अन्तर वरावर पड रहा था। महाराज नहुष की जयघोषणा करने वालो की सख्या भीड में कम होती जाती थी। जयघोष करने वालो ने जव देखा कि उनकी आवाज़ के साथ आवाज़ मिलाने वाले कम होते जाते हैं, तो उन्होने भी जयघोप कम कर दी। साथ चलने वाली भीड में भी गान्धारों की सख्या कम होती जाती थी। देवता धक्के दे-दे कर उनको महाराज के यान से दूर करते जाते थे। देवता जयघोष में सम्मिलित नही हो रहे थे। इस चुप्पी के कारण वेदपाठियो का वेदगान और भी स्पष्ट और भयानक प्रतीत होने लगा था।

जनक और कश्यप, जो सवसे आगे थे, इस चुप्पी में अशकुन रूपी वेदगान का शब्द सुन, विस्मय करने लगे थे। कश्यप ने जनक से धीरे से पूछा—"मित्र, यह क्या हो रहा है ? यहाँ श्मशान की-सी चुप्पी क्यो ?"

"ऐसा प्रतीत हो रहा है कि परमात्मा इनके कानों में कह रहा है कि वे ठीक नहीं कर रहे।"

"ईश्वर को कुछ और अधिक करना चाहिये। हमको कहाँ इस अपमान का विरोध करना चाहिये ?"

"यहाँ नहीं। यह वह स्थान नहीं जहाँ का मुझको स्वप्न आया था। विरोध का स्थान मन्डी के बीच का होना चाहिये।"

इस समय अजगर की गर्दन पर बैठे यानवाहक ने झट से कोडा लगाते हुये कहा—"वेदगान करो। बातें मत करो।"

इस पर जनक और कश्यप ने पुन. वेदगान प्रारम्भ कर दिया।

कश्यप ऋषि देख रहा था कि दर्शकों में देवताओं की सख्या अधिक है। काश्मीर सैनिक यान को चारो ओर से घेरे हुए हैं। इससे उसका मन निर्भयता अनुभव करने लग गया। उसने पुनः साहस पकड़ जनक से कहा—"जनक ?"

"हाँ।"

"मुझको इन दर्शको के हृदय में भगवान् बैठा प्रतीत हो रहा।"

"सत्य ?"

"हाँ !"

"परन्तु देखिये। देखिये मेरा विचार है कि भगवान् उनकी सहायता करता है, जो स्वय अपनी सहायता आप करते हैं। हमको अपनी अवस्था से स्वयं असन्तोष प्रकट करना चाहिए।"

इस समय वाहक ने पुनः जनक को कोड़े लगाते हुए कहा—"बात मत करो। वेदगान करो।"

जनक पुन. अपने साथियो के साथ स्वर में स्वर मिलाकर गान करने लगा। मन्त्रो का शब्द ऊँचा और ऊँचा सुनाई देने लगा।

इस समय तो नहुष को भी जनता की चुप्पी अखरने लगी। उसने यानवाहक को कहा—"जयघोष करो।" वाहक ने ऊँचे स्वर में आवाज की—"महाराज नहुष की......" घोषणा की पूर्ति में किसी ने भी 'जय हो' का शब्द नहीं किया।

इस पर वाहक ने यान की चारो ओर देखा । वह देवताओं से घिरा हुआ था । उसने जब देवताओ को चुप-चाप साथ चलते हुए देखा, तो कहा—"बोलते क्यो नही सालो ?"

इस पर भी देवता चुप रहे और केवल मात्र एक-दूसरे का मुख देखते रहे । इस समय सवारी मडी के चौमुखे पर पहुँच गई थी । जनक ने देखा कि सामने घर के एक छज्जे पर नारद खडा है । उसने अवसर पा अपने साथी से कहा—"स्थान आ गया है । आओ हम यत्न करें ।"

दोनो ठहर गए । वाहक ने समझा कि वे थक गए हैं । उसने उनको विश्राम लेने का अवसर देने के लिए घोषणा की—"महाराज नहुष की·· " केवल एक गान्धार जो सामने के मकान की छत पर खडा था, चिल्लाया—"जय हो ।" और इस शब्द के निकलते ही किसी ने उसे उसकी ग्रीवा से पकडकर छत से नीचे धकेल दिया । वह चीख मारता हुआ नीचे आ पडा । यानवाहक ने यह देखा । नहुष ने भी यह देखा । वाहक ने अपना कोडा जनता पर जो यान के चारो ओर खडी थी चलाते हुए कहा—"बोलो गान्धारो के सालो ! बोलो ।

यानवाहक ने जनक और कश्यप को लात से प्रहार कर कहा—"चलो । बढो आगे ।"

शट, शट कोडे चारो ओर बरसाये जा रहे थे । इन पर देवयानी जो नारद के साथ ही छज्जे पर खडी थी, तीव्र स्वर से बोली—"ठहरो ! यह दुष्टता अब और नही चलेगी ।" वाहक और नहुष दोनो ने उस बोलने वाली की ओर देखा । नहुष ने पहिचान लिया । उसके मुख से निकल गया, "देवयानी .... ।"

इससे अधिक वह कुछ कह नही सका । देवयानी ने एकत्रित जनता को सबोधन कर कहा—"पकड लो इस दुष्ट को । इस पापी को दड देने का समय आ गया है ।"

दर्शक पहले से ही इस संकेत की प्रतीक्षा में थे। सकेत पाते ही सबके सब नहुष की ओर लपके। इक्का-दुक्का गान्धार, जो अभी भी यान के साथ थे, नहुष की रक्षा के लिए अपनी तलवारें निकालने लगे, परन्तु उनके निकालने के पूर्व ही जनता ने उन पर आक्रमण कर दिया। दो-दो हाथ से अधिक नही हुए। यान उलट गया। वाहक का सिर सब से पहिले घड़ से अलग आ। यान के साथ ही नहुष भी भीड में लुडक गया। लोगो ने उसे लातो-घूंसो से प्रहार करना और नाखूनो से नोचना आरम्भ कर दिया। कुछ क्षण में ही नहुष के शरीर के टुकडे-टुकडे हो गए और वे भी कही दिखाई नही दिये। टुकडो का भी पांव तले आकर कचूमर निकल गया।

सवारी के पीछे कुछ गान्धार थे। इन्हें देवताओ ने धक्के दे-दे कर पीछे कर दिया था। उन्होंने भी देवताओ को नहुष पर प्रहार करते देख-कर अपनी तलवारें निकाल ली और भीड पर आक्रमण आरम्भ कर दिया। काश्मीर सैनिक अभी तक मार्गतट पर ही खडे थे। उन्होने भी गान्धारो को जनता पर आक्रमण करते देखा तो उनसे लडने के लिए अपने खड्ग निकाल लिए। देवता और काश्मीर-सैनिको की भारी सख्या देख गान्धार घबड़ा उठे और लड़ना छोड राजभवन की ओर भाग खड़े हुए।

इस समय देवयानी ने पुन. आदेश दिया। उसने कहा—"ठहरो बहादुर वीरो ! ठहरो!" सब चुप हो सुनने लगे। देवयानी ने शान्ति होने पर अपना कथन सुनाया—"वीर देवताओ तथा मेरे सैनिको ! आततायी समाप्त हो चुका है। उसके साथ ही उसका राज्य भी समाप्त हो गया है। इस समय देवराज इन्द्र यहां नहीं है। न ही महारानी शची यहां उपस्थित है। उनकी अनुपस्थिति में मै काश्मीर की राजकुमारी देवयानी यहां का राज्य अपने अधिकार में लेती हूं। मै काश्मीर से आये

सैनिको को और उन देवताओ को, जिन्होंने मेरी आज्ञा पालन करने की शपथ ली है, आज्ञा देती हूँ कि तुरन्त इन्द्रभवन पर आक्रमण कर उसको अपने अधिकार में कर लें। यहाँ मडी में न तो समय व्यर्थ गँवाना है और न ही यहाँ रक्तपात अधिक करना उचित है। हमें राजभवन की ओर चलना चाहिए। चलो। बढ चलो।"

: १० :

सुमन ने यथासमय सुन लिया था कि करण का पत्र आया है,जिसमें उसनें लिखा है कि इन्द्राणी ने नहुष से विवाह करना स्वीकार कर लिया है। इस समाचार से उसका मस्तिष्क घूमने लगा था। वह चाहती थी कि नारद से मिलकर अपने पति की रक्षा का आश्वासन ले परन्तु वह नही जानती थी कि उसको कहाँ मिल सकेगी।

नहुष के विदा होने से पूर्व की रात, जब नहुप के भवन में उत्सव मनाया जा रहा था नारद सुमन से मिलने आया। सुमन ने उसको देखा तो एक प्रकार से सात्वना अनुभव की। उसने पूछा—"देवर्षि! यह क्या हो रहा है?"

"वेटी सुमन!" नारद ने आसन ग्रहण करते हुए कहा—"आज नहुष के जीवन की अन्तिम रात्रि है। उसके पापो का घडा भर चुका है। अव वह डवे बिना नही रह सकता। तुमने राजकुमारी देवयानी के सम्मुख वचन दिया था, कि तुम अपने भाग का कार्य करोगी। सो कल, जव नहुप की सवारी भवन से निकल जाय, यंत्रागार में चली जाना और उसको भीतर से वन्द कर लेना जिससे कोई भी उन यन्त्रो को हानि न पहुँचा सके।"

सुमन विस्मय में नारद का मुख देखती रह गई। नारद कहता गया—"समझ लिया सुमन! सवारी यहाँ से नगर में एक घड़ी में

पहुँचेगी। तुमने उस घडी के भीतर ही भीतर यंत्रों पर अधिकार कर लेना है। पश्चात् हम शीघ्रातिशीघ्र यहाँ पहुँचने का यत्न करेंगे।"

"पर देवर्षि ! मैं तो परा के पिता का समाचार जानना चाहती हूँ।"

"वे कल रात तुमको मिल जायेंगे।"

"कहाँ हैं वे ?

"समीप ही है।"

"और शची महारानी.........।"

"देखो बेटी ! अब समय नही। सब बातें सबके जानने की नहीं होती। यदि तुमने अपना कार्य कुशलता से कर लिया, तो निस्सन्देह जानो कि पाँच-छः दिवस मे इन्द्राणी यहाँ इन्द्र महाराज की महारानी के रूप में पुन. स्थापित हो जायेंगी।"

सुमन अभी भी इस सबका अर्थ नही समझी थी। नारद उठा और सुमन के सिर पर हाथ फेर और आशीर्वाद देकर चला गया।

सुमन को रातभर नीद नहीं आई। वह प्रातः उठी तो उसको ऐसा अनुभव हुआ कि आकाश और सूर्य देवलोक पर खिलखिलाकर हँस रहे हों। स्वच्छ धूप अमरावती की ऊँची-ऊँची अटारियो पर अपनी मृदु मुस्कान में अपने मोती समान दाँतो का प्रदर्शन कर रही है।

सुमन का चित्त हलका था। उसका मन कह रहा था कि नारद का प्रयास अवश्य सफल होगा। उसने बच्चों को उठाया। स्नानादि करवा कलेवा दिया। जब वे खा-पी चुके, तो उनको नवीन वस्त्र पहिना दिए। माणिक्य ने पूछा—"माँ हम कहाँ जा रहे हैं ?"

"तुम्हारे पिता के पास।"

"कहाँ हैं वे ?"

"हम उनके पास जायगे।"

"तो जल्दी करो।"

"बस ये महाराज की सवारी निकल जाये, तो हम भी चल देंगे।"

"महाराज कहाँ जा रहे है ?"

"एक नया विवाह करने।"

"कहाँ।"

"एक दूर देश में।"

"हम भी साथ चलेंगे क्या ?"

"नही। हम तुम्हारे पिता जी के पास जावेंगे।"

"विवाह कराने ?"

सुमन की हँसी निकल गई। माणिक्य और परा माँ का मुख देखते रहे।

इस समय बाजे बजने लगे। शख, भेरी और दुदुभी के घोर नाद ने यह घोषणा की कि महाराज की सवारी तैयार हो गई है।

सुमन बच्चो को ले अपने आगारो के सम्मुख चबूतरे पर सवारी का दृश्य देखने लगी। यान की सजावट, उसका रूप, गान्धारो का जमघट और बहुत भारी भीड एक भव्य दृश्य उपस्थित कर रहे थे। इस समय महाराज यान पर सवार हुए और यान को ऋषियो ने उठाया। जब वे वेदगान करने लगे तो सुमन ने दाँतो तले उँगली दबा ली। यह क्या ? उसने विचार किया। अगस्त्य ऋषि को वह पहिचानती थी। उसको एक अन्य ऋषि के साथ "ओम् विश्वानि देव. ...." गाते हुए देख क्रोध तथा दुःख से उसकी आँखो से आँसू निकल आये। इस समय उसको नारद के कथन का अर्थ समझ में आ गया। उसे वह कर्त्तव्य भी स्मरण आ गया, जो नारद ने उसके लिए नियत किया था। इससे वह अपने कार्य पर विचार करने लगी।

नहुष की सवारी भवन से निकल गई, तो वह यन्त्रो की रक्षा अपना कर्त्तव्य मान उस ओर चल पडी। माणिक्य और परा उसके साथ थे। जब वह यंत्रालय के बाहिर पहुँची तो कुछ गान्धारो को तलवार लिए उसकी रक्षा करते देख चकित रह गई।

एक गान्धार सैनिक ने उससे पूछा—"क्या चाहती हैं आप ?"

'मै सप्ताह में एक बार यन्त्रो को देखने और झाडने फूंकने आया करता हूँ।"

"अब आपको यह करने की आवश्यकता नही रहेगी। महारानी स्वय आ रही है। वे इनका प्रबन्ध करेंगी।"

सुमन डर गई और लौट आई। वह सैनिको से झगडा करना नही चाहती थी। वह उनके पैशाचिक कृत्य को, जो उन्होने अमरावती पर अधिकार करते समय किया था, भूली नही थी। इस कारण लौटकर अपने आगार के बाहिर चबूतरे पर आ खडी हुई।

इस समय भवन-अध्यक्ष सुमन को वहाँ खडा देख, हाथ जोड और नमस्कार कर बोला—"महाराज की आज्ञा से यन्त्रालय पर मैंने सैनिक बिठा दिये हैं। वे अब किसी अन्य का हस्तक्षेप उसमें नही चाहते।"

"ठीक है। मैं वहाँ अब नही जाऊँगी।"

"सवारी देखी है देवी !"

"हाँ।"

"कैसी थी ?"

"बहुत ही सुन्दर दृश्य था।"

"आपने तो महारानी को देखा होगा ?"

"हाँ, वे मुझसे बहुत प्यार करती थी।"

"तब तो उनके आने पर आपको बहुत प्रसन्नता होगी ?"

"इसमें भी सदेह है क्या ?"

"हम उनके पास जायगे।"

"तो जल्दी करो।"

"बस ये महाराज की सवारी निकल जाये, तो हम भी चल देंगे।"

"महाराज कहाँ जा रहे हैं?"

"एक नया विवाह करने।"

"कहाँ।"

"एक दूर देश में।"

"हम भी साथ चलेंगे क्या?"

"नही। हम तुम्हारे पिता जी के पास जावेंगे।"

"विवाह कराने?"

सुमन की हँसी निकल गई। माणिक्य और परा माँ का मुख देखते रहे।

इस समय बाजे बजने लगे। शख, भेरी और दुदुमी के घोर नाद ने यह घोषणा की कि महाराज की सवारी तैयार हो गई है।

सुमन बच्चो को ले अपने आगारो के सम्मुख चबूतरे पर सवारी का दृश्य देखने लगी। यान की सजावट, उसका रूप, गान्धारो का जमघट और बहुत भारी भीड एक भव्य दृश्य उपस्थित कर रहे थे। इस समय महाराज यान पर सवार हुए और यान को ऋषियो ने उठाया। जब वे वेदगान करने लगे तो सुमन ने दाँतो तले उँगली दबा ली। यह क्या? उसने विचार किया। अगस्त्य ऋषि को वह पहिचानती थी। उसको एक अन्य ऋषि के साथ "ओम् विश्वानि देव. ..." गाते हुए देख क्रोध तथा दु ख से उसकी आँखो से आँसू निकल आये। इस समय उसको नारद के कथन का अर्थ समझ में आ गया। उसे वह कर्त्तव्य भी स्मरण आ गया, जो नारद ने उसके लिए नियत किया था। इससे वह अपने कार्य पर विचार करने लगी।

नहुष की सवारी भवन से निकल गई, तो वह यन्त्रो की रक्षा अपना कर्त्तव्य मान उस ओर चल पडी। माणिक्य और परा उसके साथ थे। जब वह यंत्रालय के बाहिर पहुँची तो कुछ गान्धारो को तलवार लिए उसकी रक्षा करते देख चकित रह गई।

एक गान्धार सैनिक ने उससे पूछा—"क्या चाहती है आप ?"

"मैं सप्ताह में एक बार यन्त्रो को देखने और झाडने फूंकने आया करता हूँ।"

"अब आपको यह करने की आवश्यकता नही रहेगी। महारानी स्वय आ रही है। वे इनका प्रबन्ध करेंगी।"

सुमन डर गई और लौट आई। वह सैनिको से झगडा करना नही चाहती थी। वह उनके पैशाचिक कृत्य को, जो उन्होने अमरावती पर अधिकार करते समय किया था, भूली नही थी। इस कारण लौटकर अपने आगार के बाहिर चबूतरे पर आ खडी हुई।

इस समय भवन-अध्यक्ष सुमन को वहाँ खडा देख, हाथ जोड और नमस्कार कर बोला—"महाराज की आज्ञा से यन्त्रालय पर मैंने सैनिक बिठा दिये है। वे अब किसी अन्य का हस्तक्षेप उसमें नही चाहते।"

"ठीक है। मैं वहाँ अब नही जाऊँगी।"

"सवारी देखी है देवी !"

"हाँ।"

"कैसी थी ?"

"बहुत ही सुन्दर दृश्य था।"

"आपने तो महारानी को देखा होगा ?"

"हाँ, वे मुझसे बहुत प्यार करती थी।"

"तब तो उनके आने पर आपको बहुत प्रसन्नता होगी ?"

"इसमें भी संदेह है क्या ?"

"कुछ देवता बहुत बुरा मना रहे है ।"

"वे मूर्ख है ।"

अभी ये बातें चल ही रही थी कि नगर की ओर से भारी कोलाहल सुनाई दिया । भवनाध्यक्ष पांव के पजो पर खडा हो उस ओर देखने लगा । जब कुछ नहीं देख सका, तो बोला—"भवन की छत पर चढ़कर देखता हूँ कि कैसा कोलाहल है ।"

इतना कह वह सुमन को वही उसी स्थल पर छोड भवन की सीढियो की ओर चल पडा । सुमन अपने मन में कौतूहल अनुभव कर रही थी कि किस प्रकार यन्त्रालय में जा सके ।

इतने में वह कोलाहल भवन की ओर बढ़ता हुआ प्रतीत होने लगा । और कुछ ही क्षणों में गान्धार भागते हुए भवन की ओर आते दिखाई दिये । सहस्रो की सख्या में गान्धार भवन के बाहर अपनी तलवारें निकाल लडने के लिए तैयार खडे हो गये ।

अगले ही क्षण देवता और काश्मीर सैनिक भी अपने हाथों में खड्ग लिए भवन के द्वार की ओर बढ आये । देवताओं को भवन पर आक्रमण करने आया देख सुमन को समझ आ गया कि यन्त्रों की रक्षा आवश्यक है । वह पुन यन्त्रालय की ओर जाने के लिये घूमी । इसी समय भवनाध्यक्ष हांफता हुआ वहाँ उसके समीप चबूतरे पर आ पहुँचा। उसने सुमन से कहा—"देवी ! बदमाश देवताओ ने महाराज को अकेले पा उनकी हत्या कर दी है और अब इस भवन पर आक्रमण कर दिया है। पर गान्धार भी इन कायरो से डरने वाले नही ।"

वह कुछ और भी कहना चाहता था, कि देवताओ में से एक, जो छ हाथ ऊँचा हृष्ट-पुष्ट विशालकाय पुरुष था, एक ऊँचे स्थान से सिंह की भांति नाद कर बोला—"गान्धार-सैनिको ! तुम्हारा राजा मारा गया है । तुम यदि चाहो तो भवन में मार डाले जाओगे । इस पर भी

में महारानी देवयानी, राजकुमारी काश्मीर की आज्ञा से सूचना देता हूँ कि देवलोक का राज्य उन्होंने अपने आधीन कर लिया है। उनकी आज्ञा है कि जो गान्धार अपने शस्त्र डाल दे, उसे क्षमा प्रदान की जाये। दूसरों को मौत के घाट उतार दिया जाये।

"इस कारण मैं चौथाई घड़ी भर का समय देता हूँ। इस काल में जो गान्धार शस्त्र डाल अपने को हमारे आधीन कर देगा, उसके अपराधों की क्षमा प्रदान कर दी जायेगी। इस काल के पश्चात् किसी पर भी दया नहीं की जायेगी।"

इस घोषणा के पश्चात् काश्मीर-सैनिकों और देवताओं ने घोषणा की—"महारानी देवयानी की जय हो। भास्कर देवता की जय हो।"

गान्धारों को चेतावनी देने वाला भास्कर ही था, जो ब्रह्मावर्त से लौटकर काश्मीर आ गया था, और वहाँ यह सूचना पाकर कि मलिन्द और देवयानी देवलोक में है, यहाँ चला आया था। वह इस विप्लव से एक दिन पूर्व ही पहुँचा था।

गान्धारों ने जल्दी-जल्दी मन्त्रणा की। भवनाध्यक्ष ने भास्कर का कथन सुना था। उसने सुमन से कहा—"देवी! यदि हम इन काश्मीर के कुत्तों को परास्त कर सकें, तो निस्सन्देह देवलोक का राज्य करण महामन्त्री के हाथ जा सकेगा। इस कारण तुम कहो तो मैं इसके लिए यत्न करूँ।"

"मैं इन बातों को नहीं समझ सकती।"

इसको स्वीकृति मान भवनाध्यक्ष ने गान्धार सैनिकों को चबूतरे पर से आज्ञा दी।" मैं नहुष के उपरान्त महामन्त्री करण को यहाँ का राजा समझता हूँ। और उनके नाम पर आज्ञा देता हूँ कि इन काश्मीरी लुटेरों को भवन में घुसने नहीं देना है और इनको देवलोक से भगा देना है।"

इस प्रकार से दोनों ओर से युद्ध का शखनाद हो गया। भास्कर देवताओ के आगे-आगे चलता अपने हाथ में चार हाथ लम्बी खड्ग लिए हुए गान्धारो पर कूद पडा। गान्धार भास्कर की तलवार के सम्मुख ऐसे उडने लगे जैसे घुनिये की धुनकी के आगे रुई उड़ती है। खटाखट तलवार चल रही थी और रुड मुंडो से पृथक हो रहे थे।

भास्कर एक हाथ से तलवार चलाता था आर दूसरे हाथ से गान्धारो को मूंडो से पकड-पकड कर ऐसे आकाश में फेंक रहा था मानो मार्ग से ककड उठाकर एक ओर हटा रहा हो।

गान्धार भास्कर की विनाशकारी खड्ग की चमक के सममुख भयभीत हो भागने लगे। भास्कर की तलवार लम्बी थी इसकी मार के भीतर कोई आ नही पाता था। यदि कोई आ भी गया तो भास्कर बाजू से उसका मूंड या ग्रीवा पकडकर आकाश में उछाल देता था और वह काश्मीर-सैनिकों में जा गिरने से पूर्व ही किसी की खड्ग का ग्रास बन जाता था।

भवनाध्यक्ष ने देखा कि देवताओ का भवन पर अधिकार हुए बिना नही रहेगा तो उसने सुमन से कहा—"देवी एक बात करो। यन्त्रालय में चली जाओ। जब ये लोग भवन में आने लगें तो इन पर आग्नेय अस्त्र चला दो। उससे सब झुलसकर मर जायेंगे।"

सुमन आग्नेय अस्त्र चलाना नहीं जानती था। उसने इसको यन्त्रालय में पडा हुआ देखा था। इस समय यन्त्रालय में जाने का अवसर पा वह भवनाध्यक्ष की बात मानने को तैयार हो गई। सुमन, माणिक्य और परा को साथ ले भवनाध्यक्ष के पीछे-पीछे यन्त्रालय में जा पहुँची। भवनाध्यक्ष ने वहाँ खडे सैनिको को कह दिया कि आग्नेय अस्त्र चलने वाला है। पूर्ण भवन भस्म हो जायेगा। ज्यों ही सुमन यन्त्रालय में प्रविष्ट हुई कि भवनाध्यक्ष और सैनिक भवन से दूर जाने के लिए

भवन के पिछवाड़े से निकल भागे।

सुमन ने भीतर से द्वार बन्द कर लिया और वहाँ रखी एक चौकी पर बैठ गई। माणिक्य, जो भास्कर की कुशलता को देख चुका था, यहाँ अपने को सुरक्षित पा माँ से पूछने लगा—"माँ वह कौन था जो देवों की भाँति लड रहा था ?"

"एक देवता था।"

"हम पिता जी के पास कब चलेंगे ?"

"ये जो लड रहे हैं, चले जायेंगे तब।"

"वे यहाँ भी आयेंगे ?"

"नहीं। मैंने द्वार बन्द कर लिए हैं।"

परा बहुत सहमी हुई थी और काँप रही थी। इस कारण सुमन ने उसको उठाकर उसका मुख चूम गले से लगा लिया।

भवन पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने में एक पहर लग गया। जब पूर्ण अधिकार हो गया तो नारद, देवयानी तथा अन्य देवता भवन में आ गए। देवयानी ऊँचे स्थान पर खडी हो गई। भास्कर उसके समीप खडा था। उसने जयघोष की—"महारानी देवयानी की जय हो ?"

सब उपस्थित देवताओं ने जयघोष की। पश्चा देवयानी ने सबको हाथ के संकेत से चुप कराकर, भास्कर को कहा कि वह घोषणा कर दे। भास्कर ने वही घोषणा दुहरा दी जो देवयानी ने मण्डी में की थी। उसके पश्चात् उसने कहा—"महारानी जी ने यह भी कहा है कि वे महारानी शची को यहाँ शीघ्रातिशीघ्र बुलायेंगी और देवलोक का राज्य उनके हाथों सौंप देंगी। अब वह चाहती हैं कि आप देवलोक के उद्धार के उपलक्ष्य में आनन्दोत्सव मनायें। सब अपने-अपने निवास-स्थानों में जायें और रात्रि को दीपमाला का आयोजन करें।

"गान्धार सैनिक अपने शस्त्र भवन में दे दें। यदि किसी गान्धार के पास खड्ग देखी गई तो उसको तुरन्त मार डालने की आज्ञा दी जाती है। निश्शस्त्र गान्धारों को क्षमा दी गई माननी चाहिये।"

इस मुक्ति पर देवता आनन्द से भरे हुए नाचते-गाते नगर की ओर चले गए। भस्कर को भवन की रक्षा का कार्य सौंप दिया गया और और एक सहस्त्र काश्मीर-सैनिक उसके आधीन कर दिये गये।

इस समय देवयानी और नारद यन्त्रालय से सुमन को निकालने के लिए वहाँ पहुँच गये। यन्त्रालय का द्वार खटखटाया गया तो सकेत पा सुमन ने द्वार खोल दिया और स्वय वाहिर निकल आई। देवयानी ने उसे गले से लगाया। परा को गोदी में उठाकर उसका मुख चूमा। पश्चात् सब लोग भवन के एक आगार में आ एकत्रित हुए। सुमन ने जाते मार्ग में करण की याद दिलाई। नारद ने कहा—"सुमन, मुझे ध्यान है। तुम स्वय उनके पास जाओगी या उनको यहाँ वुलाऊँ ?"

"मै स्वय जाना चाहती हूँ।"

"तो ठीक है। अभी भास्कर और दो सैनिक तुम्हारे साथ जायेंगे। सायकाल तक तुम वहाँ पहुँच जाओगी। कल प्रात.काल लौट आ सकती हो।"

भास्कर को वुलाकर देवयानी ने आज्ञा दी—"भास्कर देवता, इस देवी को साथ लेकर दो सरक्षको के साथ जाओ। वे तुमको एक स्थान पर ले जायेंगे, वहाँ इस देवी के पति करणदेव हैं। उनको यहाँ आदर सहित ले आवो।"

"महारानी जी, एक निवेदन मेरा भी है। मलिन्द दिखाई नहीं दे रही।" इतना कहते-कहते भास्कर ने माथे पर त्योरी चढा कर नारद की ओर देखा।

देवयानी ने मुस्कराकर कहा—"देवता ! पहिले कार्य समाप्त करो। जब यह कार्य कर आवोगे तो मलिन्द के विषय में प्रार्थना पत्र देना। विचार किया जायेगा।"

भास्कर ने झुककर प्रणाम किया और सरक्षको के साथ जाने को तैयार हो गया। उनके जाने से पूर्व देवयानी ने सुमन से कहा—"सुमन वहिन, हमारी यह उत्कट इच्छा है कि करणदेव हमारे राज्य में रहे और अपने उपयुक्त कोई राज्य-कार्य करें। हम उनका इस राज्य में स्वागत करेंगे और उनको उनके योग्य कोई सम्मानित कार्य देंगे। हम आशा करते हैं कि वे हमारे इस निमन्त्रण को स्वीकार करेंगे।"

(११)

मलिन्द तथा करण को गुफापार वाले गृह में रहते हुए एक सप्ताह हो चुका था। स्थान एक वादी में था जो चारो ओर से पहाड़ो से घिरी हुई थी। इस वादी में आने का मार्ग केवल वह गुफा थी जिसमें से लांघकर आना होता था। घर वादी के मध्य में वना था।

इसमें कई आगार थे। इस घर का सरक्षक वीस प्रहरियो सहित वहाँ रहता था। एक आगार में करण के रहने का प्रवन्ध किया गया था और दूसरे आगार में मलिन्द के रहने का। प्रहरी दोनो की देखभाल करते थे। घर के सामने एक छोटी-सी वावडी थी। उसमें एक झरने से जल गिरता था। यह जल स्नानादि के लिए उस घर के निवासियों के लिए प्रयोग में आता था।

पहली रात तो ये सव वहुत देरी से पहुँचे थे। मलिन्द अपने आगार में गई तो जाते ही सो गई और अगले दिन देरी तक सोई रही। करण के मन में इतनी वेचैनी थी कि उसको न तो नीद आई और न ही वह किसी ओर अपना ध्यान लगा सका। सूर्योदय होते ही वह आगार से

बाहिर आकर बावडी के समीप खडा हो झरने से झरझर करते जल को देखता रहा। उसने प्रकाश होने पर वादी के दृश्य को देखा। वह समझता था कि उसको वहाँ से भाग जाना चाहिए। इस कारण वह बावडी में उतर गया। ठडे जल से आँखो को छींटे मारकर सचेत हो वादी के एक ओर मार्ग ढूंढने चल पडा। वह अभी बीस पग भी नहीं बढा था कि दो खड्गधारी एक झाडी के पीछे से निकल आये और करण के साथ-साथ चल पडे।

कुछ दूर तक करण गया और वे उसके साथ-साथ ही गये। इससे करण को भारी खीज आई। वह खडा हो गया और उनसे पूछने लगा—"तुम मेरे साथ-साथ क्यो आते हो ?"

"हमें ऐसा करने की आज्ञा है।"

"किसकी आज्ञा है ?"

"अपने स्वमी की।"

"क्या करता है तुम्हारा स्वामी ?"

"आप जैसे श्रीमानो को पकडकर उनके सम्बन्धियों से धन प्राप्त करता है।"

"तो तुम लुटेरे हो ?"

"हाँ, श्रीमान् !"

"कितना रुपया तुमको चाहिए ?"

"स्वामी एक दो दिन में आयेंगे और आपसे बातचीत करेंगे।"

"आज क्यो नही ? मुझे आवश्यक कार्य है और मुझको आज ही छोडने से अधिक मूल्य मिलेगा।"

"यह सूचना अपने स्वामी के पास भेज दूंगा।"

"तुम मुझको छोडने के लिए कितना धन चाहते हो ?"

"मैं आपको छोड नहीं सकता। इस वादी का द्वार मेरे आधीन नही है।"

"किसके आधीन है ?"

"हमारे नायक हैं ।"

"उनसे पूछकर अभी बताओ ।"

"वे आपसे कुछ कालोपरान्त स्वय मिलेंगे ।"

"मैं अभी बाहिर अपने कार्य पर तुरन्त जाना चाहता हूँ ।"

"सब कार्य अपनी इच्छानुसार नहो हो सकते ।"

विवश करण वापिस लौट आया । मलिन्द अभी भी सोकर नहीं उठी थी । करण ने साथ साथ आ रहे प्रहरी से पूछा—"मेरे साथ जो स्त्री आई थी, वह कहाँ है ?"

"सो रही है ।"

"उसे जगाओ ।"

"हम स्त्रियो के आगार में नहीं जाते ।"

"तो वहाँ कौन जाता है ?"

"कोई भी नही । यहाँ कोई स्त्री नही है ।"

"तो फिर क्या होगा ?"

"वे अपने आप जागेगी, तो बाहिर आ जावेंगी ।"

करण झरने के समीप बैठ अपने मन में उठ रहे उद्गारो को भीतर ही भीतर पीने का यत्न करता रहा ।

सूर्य पहाड़ो से ऊपर उठ आया था और चारो ओर उसका प्रकाश फैल चुका था । पक्षीगण अपने-अपने घोसले से निकल अपने आहार की खोज में निकल गए थे । कुछ साथ के वृक्ष पर बैठे चहचहा रहे थे । कुछ अपने साथियो को बुलाने के लिए सीटियाँ बजा रहे थे । इस सब चहल-पहल में करण शोकग्रस्त बैठा था। इस समय एक प्रहरी उसके समीप आकर बोला—"श्रीमान् शौचादि से निवृत्त हो जाएँ तो अल्पाहार का प्रबन्ध किया जाये ।"

"वह स्त्री जागी है अथवा नहीं ?"

"नही। अभी सो रही है।"

"जन्म-जन्मान्तर की थकावट दूर कर रही प्रतीत होती है।"

प्रहरी चुप रहा। इस पर करण ने पूछा—"आपका नायक कब आवेगा ?"

"जब आप अल्पाहार पर बैठेंगे।"

"पहिले नहीं।"

"जी नही, वह आपको खिलाकर स्वय कुछ खायेगा।"

"तब तो तैयार हो जाना चाहिये।"

"हाँ श्रीमान् !"

मलिन्द मध्यान्ह से कुछ पहिले स्नानादि से निपट तैयार हो सकी। करण अल्पाहार कर चुका था, वह अत्यन्त ही असन्तुष्ट अवस्था में था। मलिन्द घर के बाहिर धूप में सूर्यकिरणो की ऊष्मा प्राप्त करने खडी थी। इसी समय करण उसके पास आकर बोला—"श्रीमती जी को पता चला है कि ये कौन लोग हैं ?"

"नही।"

"लुटेरे है।"

"बहुत दुष्ट होगे तब तो।" मलिन्द ने चिन्ता प्रकट करते हुए कहा

"केवल इतना ही नही। वे कहते हैं कि उनका स्वामी तीन दिन के पीछे आवेगा। तब वह हमारे घर वालो का पता पूछेगा और फिर उनको लिखेगा कि इतना धन भेज दो। जब वे धन भेज देंगे तब हमें छोडा जावेगा।"

"सत्य !"

"हाँ। मैने स्वय इनके नायक से पता किया है।"

"चलो छुट्टी हुई।"

"क्यों ?"

" न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी । न हम जायेंगे न आपके महा-राज का विवाह होगा ।"

"तो तुम इससे प्रसन्न हो ?"

"ईश्वर को यही स्वीकार प्रतीत होता है ।"

"तुम क्या चाहती हो ?"

"मेरे चाहने अथवा न चाहनें का प्रश्न ही नही । न वह कभी था, न अब है । मैं पहिले महारानी की सेवा में उनकी नाम की सखी थी । अब मैं इन लुटेरो के वश में हूँ ।"

"मान लो," करण ने उत्सुकतापूर्वक पूछा—"तुमसे तुम्हारी स्वतन्त्र सम्मति मांगी जाये तो तुम क्या कहोगी ?"

मलिन्द ने कुछ विचार कर कहा—"मैं एक बात पूछूं ?"

"हां।"

"मैं पैसठ वर्ष की आयु रखती हूँ । क्या कोई बीस वर्ष का युवक मुझसे विवाह करेगा ?"

"तो क्या महारानी शची भी इस आयु की है ?"

"वह एक सौ पचास वर्ष से ऊपर की आयु की हैं ।"

"देखने में तो इतनी आयु की प्रतीत नहीं होती । मेरा विचार था कि तीस-पैतीस वर्ष की होगी ।"

मलिन्द हँस पडी । करण को उसके कहने पर सन्देह हो गया । इस पर उसने पुन पूछा—"मुझसे हँसी कर रहो हैं आप ?"

"नही । आप लोग देवताओं की बहुत-सी बातो से अनभिज्ञ है । उनमें यह आयु-रहस्य के ज्ञान की भी एक बात है । हम जीना जानते है । हमारे यहां स्वाभाविक आयु दो सौ वर्ष की होती है । इस पर भी कई लोग है, जो और भी अधिक काल तक जीवित रहते हैं । कुछ विशेष

व्यक्ति तो सहस्रो वर्षों तक जीवन का भोग करते हैं। उनमें से ब्रह्मा एक हैं।"

करण को इससे आश्चर्य हुआ। उसने विस्मय से पूछा—"इन्द्र की कितनी आयु होगी ?"

"आप क्या समझते हैं ?"

"मैं उनको पैंतालीस वर्ष का मानता था।"

"वास्तव में उनकी आयु का ज्ञान किमी को नही। ब्रह्मा उनसे बडी आयु के है। वे ही ठीक-ठीक बता सकते हैं। हमारा अनुमान है कि उनकी आयु कई सहस्र वर्ष अवश्य है।"

करण इसको मनघडत बात मान, हँस पडा। उसने कहा—"मैं समझता हूँ कि आप एक चतुर स्त्री हैं और मुझको मूर्ख बना रही हैं। इस पर भी मैं समझता हूँ कि इस विषय पर विवाद करने की आवश्यकता नही। बात यह है कि यदि शची डेढ सौ वर्ष की आयु की होने पर भी युवती प्रतीत होती हैं तो उनतीस वर्ष के युवा पुरुष को विवाह करने में क्या आपत्ति हो सकती है ?"

"परन्तु जो अनुभव और ज्ञान एक डेढ़ सौ वर्ष की आयु के मनुष्य को हो सकता है, उससे कोई तीस वर्ष का युवा पुरुष विवाह क्यो करेगा ? दोनो के ज्ञान में अन्तर है। इससे दोनो में निभ नहीं सकती।"

"तो तुम्हारा विचार है कि यह विवाह नही होना चाहिए था ?"

"आप क्या समझे है ?"

"तो तुम इसे वन्दी बनाये जाने पर प्रसन्न हो ?"

"वन्दी होने के परिणाम से तो सतोप होता है, परन्तु आपके सुमन से वियोग पर तो सतोप नही हो सकता।" इतना कह वह हँस पडी।

उन लोगो का स्वामी करण से मिलने नही आया । इससे करण के मन में चिन्ता दिन प्रतिदिन बढती गई । इस प्रकार असन्तोष की अवस्था में एक सप्ताह व्यतीत हो गया । आठवें दिन तो करण उतावला हो रहा था । प्रात: के अल्पाहार के समय प्रहरियो का नायक आया तो करण उससे लडने-सा लगा—"कहाँ मर गया है तुम्हारा स्वामी ? उसने हमें क्यो वन्दी वना रखा है ?"

नायक ने कहा—"श्रीमान् ! मुझसे क्रोध करने की आवश्यकता नही । मैं आपके साथ जितना कुछ करने में स्वतत्र हूँ, उतनी वात के विषय में वताइये कि उस में मैंने क्या अपराध किया है ? जिस वात पर मेरा अधिकार नही, उसके लिए मुझ पर क्रोध करना आपके लिए उचित नही ।"

करण इससे लज्जित हुआ । इस पर भी उसने कहा—"पर मैं तो तुमको ही जानता हूँ । मेरा सवन्ध तुमसे है । इससे तुम्हे ही तो कह सकता हूं । मुझे छोड़ दो, अन्यथा वीर पुरुषो की भाँति एक खड्ग मुझको दो और मुझसे युद्ध कर लो ।"

नायक मुस्कराया और वोला—"मै श्रीमान् जी से युद्ध करनें की क्षमता नही रखता । मैं तो आपके सेवको के तुल्य हूँ ।"

"मैं यहाँ से जाना चाहता हूँ ?"

इस समय मलिन्द अपने आगार में से अल्पाहार करने के लिए निकल आई । उसने करण की अन्तिम वात सुनी, तो कह दिया—"देखिये करण जी, मैं कहती हूँ कि आज आप छूट जायेंगे ।"

"देखो मलिन्ददेवी ! मुझसे हँसी-ठट्ठा न करो । मेरे मन में आज विष भर रहा है । आज इच्छा हो रही है किसी को काट डालूं । यहाँ पेड़-पौधो की भाँति स्थावर जीवन व्यतीत करते करते मैं ऊब गया हूँ ।"

"मुझको आपसे पूर्ण सहानुभूति है और मै हँसी नही कर रही। मै तो यह कह रही हूँ कि आप आज अवश्य मुक्त हो जायेंगे। आपको मुक्त कराने के लिए आपकी पत्नी सुमन ही यहाँ आने का कष्ट कर रही है।"

"तुमने ज्योतिष लगाया है क्या ?"

"नही। मुझको स्वप्न मे पता चला है और प्रात.काल इस सामने के पेड़ पर कागा बैठा काँय-काँय कर रहा था।"

"मुझको इन बातो पर विश्वास नहीं होता।"

"परन्तु मुझे तो पूर्ण विश्वास है। देखिए आपकी श्रीमती जी के साथ मेरे देवता भी आ रहे प्रतीत होते है। ऐसा लगता है कि उनके स्वामी ने हमारा नाम-धाम आपके सैनिको से पता कर, हमारे सबन्धियो से हमारा मूल्य प्राप्त कर लिया है और वे आ रहे है।"

"मै महाराज के सम्मुख इनके विरुद्ध अभियोग उपस्थित करूँगा और सेना लाकर इस वादी को आग लगा दूंगा।"

"इस वादी ने क्या अपराध किया है ? परन्तु एक बात और है। मैंने स्वप्न में देखा है कि महाराज नहुष विमान में बैठ, स्वर्गारोहण कर गए है।"

मलिन्द की बात सुन करण गभीर हो गया। वह इस औरत के रहस्य को समझने में सफल नही हुआ था। वह अल्पाहार करने के लिए बैठने लगा तो मलिन्द ने कहा—"मै एक बात कहूँ आपसे ?"

"हाँ।"

"मेरा मन कह रहा है कि मेरे पतिदेव आ रहे है इससे मै उनकी प्रतीक्षा करना चाहती हूँ। जब वे आवेंगे तो उनके साथ ही आहार कर लूंगी। आपकी धर्मपत्नी भी आ रही है। आप भी प्रतीक्षा कर लें तो उचित नही होगा क्या ?"

करण विस्मय में मलिन्द का मुख देखता रह गया। उसको सुमन की याद आ गई। पहले वह बैठ हुआ था, अब खड़ा हो गया और नायक से बोला—"ये कहती है कि हमारे घर के लोग आ रहे हैं। तो उनके आने पर ही भोजन होगा।"

दोनो उस आगार से बाहिर निकल आये। बाहिर आने पर करण की ृष्टि जब पूर्व की ओर गई तो उसे उस ओर से कुछ घोड़ो पर सवार आते दिखाई दिए। अश्वारोहियो में एक पालकी भी थी। मलिन्द पूर्व की ओर पीठ किये ए खडी थी और करण उससे बात करता हुआ पूर्व की ओर देख रहा था। इस कारण उसकी दृष्टि उन आने वालो पर पहिले पडी। इस पर करण विस्मय करते हुए कहने लगा—"देखो कौन आ रहे है ?"

मलिन्द ने घूमकर देखा तो बोली—"और चाहे कोई हो या न हो, पर मेरे देवता तो आ ही रहे है। वह जो सबसे ऊँचे दिखाई देते हैं, वही हैं।"

"तो तुम्हारा स्वप्न सत्य सिद्ध हुआ है। साथ एक पालकी भी तो है।"

"उसमें आपकी श्रीमती हो सकती है।"

आने वालो की वे दोनो उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे। आधी घड़ी में सब सवार पालकी सहित आ पहुँचे। पालकी में बैठी सुमन को करण ने देख लिया था। इससे वह अपने स्थान से उठ उसकी ओर भागा और पालकी के भूमि पर रखने से पूर्व ही, उसने उसे भुजाओ से उठा लिया और गले लगा लिया। सुमन ने लज्जा अनुभव करते हुए कहा—"देखिए ! सब लोग देख रहे हैं।"

करण को समझ आ गई और उसने सुमन को भूमि पर खड़ा कर बच्चो को गोदी में ले लिया। इस समय उसकी दृष्टि मलिन्द पर पड़ी।

"मुझको आपसे पूर्ण सहानुभूति है और मैं हँसी नही कर रही मैं तो यह कह रही हूँ कि आप आज अवश्य मुक्त हो जायेंगे। आपको मुक्त कराने के लिए आपकी पत्नी सुमन हीं यहाँ आने का कष्ट कर रही हैं।"

"तुमने ज्योतिष लगाया है क्या ?"

"नही। मुझको स्वप्न में पता चला है और प्रातकाल इस सामने के पेड पर कागा बैठा काँय-काँय कर रहा था।"

"मुझको इन बातो पर विश्वास नहीं होता।"

"परन्तु मुझे तो पूर्ण विश्वास है। देखिए आपकी श्रीमती जी के साथ मेरे देवता भी आ रहे प्रतीत होते हैं। ऐसा लगता है कि उनके स्वामी ने हमारा नाम-धाम आपके सैनिको से पता कर, हमारे सबन्धियों से हमारा मूल्य प्राप्त कर लिया है और वे आ रहे हैं।"

"मैं महाराज के सम्मुख इनके विरुद्ध अभियोग उपस्थित करूँगा और सेना लाकर इस वादी को आग लगा दूँगा।"

"इस वादी ने क्या अपराध किया है ? परन्तु एक बात और है मैंने स्वप्न में देखा है कि महाराज नहुष विमान में बैठ, स्वर्गारोहण कर गए हैं।"

मलिन्द की बात सुन करण गंभीर हो गया। वह इस औरत के रहस्य को समझने में सफल नही हुआ था। वह अल्पाहार करने के लिए बैठने लगा तो मलिन्द ने कहा—"मैं एक बात कहूँ आपसे ?"

"हाँ।"

"मेरा मन कह रहा है कि मेरे पतिदेव आ रहे हैं इससे मैं उनकी प्रतीक्षा करना चाहती हूँ। जब वे आवेंगे तो उनके साथ ही आहार कर लूँगी। आपकी धर्मपत्नी भी आ रही हैं। आप भी प्रतीक्षा कर लें तो उचित नही होगा क्या ?"

करण विस्मय में मलिन्द का मुख देखता रह गया। उसको सुमन की याद आ गई। पहले वह बैठ हुआ था, अब खड़ा हो गया और नायक से बोला—"ये कहती है कि हमारे घर के लोग आ रहे हैं। तो उनके आने पर ही भोजन होगा।"

दोनो उस आगार से बाहिर निकल आये। बाहिर आने पर करण की दृष्टि जब पूर्व की ओर गई तो उसे उस ओर से कुछ घोडो पर सवार आते दिखाई दिए। अश्वारोहियो में एक पालकी भी थी। मलिन्द पूर्व की ओर पीठ किये हुए खडी थी और करण उससे बात करता हुआ पूर्व की ओर देख रहा था। इस कारण उसकी दृष्टि उन आने वालो पर पहिले पड़ी। इस पर करण विस्मय करते हुए कहने लगा—"देखो कौन आ रहे हैं?"

मलिन्द ने घूमकर देखा तो बोली—"और चाहे कोई हो या न हो, पर मेरे देवता तो आ ही रहे हैं। वह जो सबसे ऊँचे दिखाई देते हैं, वही हैं।"

"तो तुम्हारा स्वप्न सत्य सिद्ध हुआ है। साथ एक पालकी भी तो है।"

"उसमें आपकी श्रीमती हो सकती हैं।"

आने वालो की वे दोनो उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे। आधी घडी में सब सवार पालकी सहित आ पहुँचे। पालकी में बैठी सुमन को करण ने देख लिया था। इससे वह अपने स्थान से उठ उसकी ओर भागा और पालकी के भूमि पर रखने से पूर्व ही, उसने उसे भुजाओ से उठा लिया और गले लगा लिया। सुमन ने लज्जा अनुभव करते हुए कहा—"देखिए! सब लोग देख रहे हैं।"

करण को समझ आ गई और उसने सुमन को भूमि पर खड़ा कर बच्चो को गोदी में ले लिया। इस समय उसकी दृष्टि मलिन्द पर पड़ी।

वह भास्कर को पहिचान गया। एक बार उसने उसकी जान नहुष से बचाई थी। मलिन्द भास्कर के पाँव छू, हाथ जोड उसके सम्मुख खड़ी थी और भास्कर अवाक् मख उसे देख रहा था । इस पर करण बच्चो का गोदी में लिए हुए, भास्कर के समीप आकर बोला—"पहलवान ! पहिचाना है मुझको ?"

इस आह्वान को सुन भास्कर का ध्यान टूटा और उसने घूमकर करण की ओर देखा। वह पहिचान गया। "तो महाराज भी यहाँ हैं। मेरी स्त्री आपके पास कैसे आ गई है, यही सोच रहा था।"

"यह आपकी स्त्री हैं क्या ? ये तो कहती थीं कि ये महारानी शची की सखी हैं।"

"यह नारद महाधूर्त है। न जाने क्या-क्या षड्यन्त्र करता रहता है ! अब मुझको यहाँ भेजते समय बताया तक नही कि ये श्रीमती जी यहाँ विद्यमान होंगी।

"अच्छी बात है ! रानी देवयानी के सम्मुख बात करूँगा।"

करण ने मलिन्द के मुख की ओर देखा। वह मुस्करा रही थी और उसका मुख प्रसन्नता से देदीप्यमान हो रहा था।

देवोद्धार

: १ :

यह समाचार विद्युत् की भाँति पूर्ण देवलोक में फैल गया कि काश्मीरनरेश देवनाम की लडकी देवयानी ने अपने सैनिको की सहायता से देवलोक में विप्लव कर दिया है। यह भी विख्यात हो गया कि वह देवलोक का राज्य चला रही है और वह तव तक वहाँ राज्य करेगी जव तक काश्मीर से महारानी शची आ नही जाती। देवताओ को इस वात के जानने में विलम्ब नही हुआ कि शची के विवाह की वात तो केवल नहुष को भवन से निकालकर, नगर में लाने का वहाना-मात्र था।

इससे देवता अति प्रसन्न थे। देवयानी के लिए उनके मन में आदर था। इसका विशेष कारण यह था कि वे देवलोक में काश्मीर-राज्य की स्थापना के लिए नही आई थी, प्रत्युत देवलोक में देवताओ का राज्य चलाना चाहती थी।

नहुष की मृत्यु के दो दिन पश्चात्, राज्य के प्रमुख व्यक्ति देवयानी के प्रति अपनी भक्ति और आदर प्रकट करने आये। देवयानी ने उनसे भेंट की और उनसे कहा—"वीर देवताओ के सहयोग से मैं देवलोक के उद्धार करने में सफल हो सकी हूँ। इसमें मेरा उद्देश्य केवल अपने पडोसी राज्य को सुख-समृद्धि-सम्पन्न और सम्मान से रहते देखना है।

मने यहाँ के कुछ लोगो को काश्मीर में महारानी शची को लिवा लाने के लिए भेजा है। आशा करती हूँ कि वे पन्द्रह दिवस में महारानी को साथ लेकर आवेंगे। उनके आते ही यह राज्यभार उनको सौपकर, यहाँ से चली जाऊँगी।

"तब भी, एक कार्य रह जायेगा। यह सुरराज को बन्दीगृह से छुडाने का है। मै समझती हूँ कि महारानी जी के यहाँ आ जाने पर यह बात अति सुगम हो जायेगी।"

इसके पश्चात् देवयानी ने गान्धारो के विषय में अपना निर्णय दे दिया—"गान्धारो को यहाँ से तुरन्त चल देना चाहिये। जो जो यहाँ से अकेले जाना चाहते हैं, उनको यहाँ से जाने में देरी नहीं करनी चाहिए और जो अपनी देवता-पत्नियो को साथ ले जाना चाहते हैं, उनको राज्य-कार्यालय में इस विषय का प्रार्थनापत्र देना चाहिए। उनकी पत्नियो से पूछा जायेगा। यदि उनकी जाने की इच्छा हुई तो वे जा सकेंगी, चाहे देवस्त्रियाँ जायें अथवा न जायें उनकी सन्तान उनके पास ही रहेगी।

"जो देवस्त्रियाँ नही जाना चाहेंगी और जिनके गान्धारो से सन्तान उत्पन्न हो चुकी है, उनकी समस्या विचाराधीन है। इस समस्या का सुझाव उनकी सख्या जानने पर निश्चित किया जायेगा।"

इस घोषणा से तो गान्धारो के परिवारो में हलचल मच गई। सहस्रो परिवारो में गान्धारो और उनकी देवपत्नियो में झगडे आरम्भ हो गए। अपने पतियो के साथ देवलोक छोडकर जाने वाली केवल तीन-चार स्त्रियाँ थी। उनको जाने की स्वीकृति दे दी गई। प्राय: अन्य गान्धार नित्य सहस्रो की सख्या में अमरावती से चुपचाप जाने लगे।

तीसरे दिन सुमन और करण आ पहुँचे। देवयानी ने करण के सम्मुख अपना प्रस्ताव रखा—"आप जैसे योग्य व्यक्ति के लिए किसी

भी राज्य में स्थान मिल सकता है। अब आप देवलोक में हैं, तो आपको ाहाँ ही रहने के लिए अवसर सब से प्रथम मिलना चाहिए। यहाँ ापकी कार्य करने की रुचि न हो अथवा यहाँ के भावी राज्याधिकारी ापको यहाँ कार्य न दें तो उस अवस्था में काश्मीर में कार्य करने का स्ताव मैं आपके सम्मुख रखती हूँ।"

करण का उत्तर था—"इस विषय में मैंने अपनी पत्नी सुमन से ाय की है और हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि हम देवलोक में ो रहेंगे। यदि यहाँ के महाराजा और महारानी हमको रखने के लिए यार न होंगे तो हम काश्मीर में रहना पसन्द करेंगे।"

इस प्रकार करण का प्रश्न शची के आने तक अनिश्चित रहा। ुमन की उत्कट इच्छा थी कि उसका पति देवलोक में रह सके; परन्तु ाची की अनुपस्थिति में अन्तिम निर्णय नहीं हो सका। तब तक करण ो गान्धारों को विदा करने का कार्य सौंपा गया।

भास्कर बंदीगृह से मलिन्द को लाया तो वह मार्गभर में चिन्तित ौर शोकग्रस्त रहा। मार्ग में मलिन्द ने पूछा भी—"देवता! इतने ाभीर क्यों हैं आप? क्या कोई अनिष्ट हो गया है?"

"महारानी देवयानी के सम्मुख निर्णय करूँगा।"

"क्या निर्णय करेंगे?"

"तुमको अपने घर में रखूँ अथवा न?"

"अर्थात् आप मेरे घर रहें या न?"

"क्या?"

"घर तो स्त्रियों का होता है। कार्यक्षेत्र पुरुषों का है।"

"महारानी सीता भी यही कहती, तो वनवास में राम को जाना पड़ता, महारानी सीता को नहीं।"

"न आप महाराज हैं, और न मैं महारानी। इस कारण यह उपमा ठीक नहीं बैठी। देखिये, मैं बताती हूँ। देवलोक में सबको भोजन-

वस्त्र राज्य की ओर से नि शुल्क मिलता है। इस कारण म आपकी कमाई पर आश्रित नही। आप मेरे साथ रहें या न रहें, भोजन-वस्त्र तो मिलेगा ही। रही सेवा-शुश्रूषा, वह घर में तो मै ही करती थी और श्रीमान् आवेंगे तो मैं ही करूंगी। अब बताइये आप मेरे घर आयेंगे अथवा नही ?"

भास्कर ने विस्मय में पूछा—"तो तुम मेरा त्याग करोगी ?"

"मैने यह कब कहा है ? मेरा कहने का अभिप्राय यह है कि आप मेरे घर में आया करेंगे अथवा नई वधू के घर जायेंगे ? देवर्षि आपके लिए नई वधू का प्रबन्ध कर रहे हैं।"

भास्कर मार्ग में तो इससे अधिक बात नही कर सका। जब वह अमरावती पहुँचा तो थोडा विश्राम करके, मलिन्द को साथ ले देवयानी की सेवा में जा पहुँचा।

उस समय देवयानी करुण से बात करके हटी थी। भास्कर और मलिन्द को आया देख बोली—"भास्कर देवता ! हम आपका बहुत धन्यवाद करते है। आपने यहाँ देवलोक और ब्रह्मावर्त में हमारी बहुत सहायता की है। ब्रह्मावर्त से महाराज का पत्र आया है। उन्होने आपके शौर्य और बुद्धिमत्ता की भारी प्रशसा की है। वे स्वय शीघ्र यहाँ आने वाले है। हमारा यह प्रस्ताव है कि भास्कर देवता को एक दिन सार्वजनिक उत्सव मनाकर, सम्मानित किया जाये। देवता के साथ देवी मलिन्द को भी सम्मानित किया जायेगा। श्रीमती मलिन्द ने जिस चतुराई से देवताओ में साहस और आत्माभिमान की भावना जागृत की है, उसका पुरस्कार तो देवराज इन्द्र ही देंगे, हम तो केवल उसको सम्मानित ही कर सकते हैं। ब्रह्मावर्त से महाराज के आते ही आपको सम्मानित करने का उत्सव किया जायेगा।"

भास्कर इस समाचार से इतना प्रसन्न हुआ कि जिस बात को कहने के लिए वह आया था, वह भूल ही गया। उसने केवल इतना कहा—"महारानी जी ! मैंने तो केवलमात्र अपना कर्त्तव्य निभाया है। ऐसा कार्य तो जब-जब महाराजा विक्रम और महारानी जी आज्ञा करेंगे, मैं करने के लिए सदैव उद्यत रहूंगा।"

पश्चात् देवयानी ने एक थैली स्वर्णमुद्राओं की भास्कर को पारितोषिक के रूप में दी और उनको विदा होने का संकेत कर दिया।

भास्कर लौटकर जब अपने निवासस्थान पर पहुंचा, तो विस्मय में मलिन्द का मुख देखता रह गया। मलिन्द ने उसके मुख पर विस्मय की रेखा देख पूछा—'देवता ! क्या हो रहा है ? आप मन में क्या मेरे घर में रहने अथवा न रहने के विषय पर विचार कर रहे हैं ?"

"मैं कितना मूर्ख हूं कि जिस प्रयोजन के लिए वहां गया था, उसे भूल ही गया। वहां मुख से यह बात निकली ही नहीं।"

"तो किस बात के लिए आप वहां गये थे ?"

"तुम्हारे देवर्षि से सम्बन्ध पर विचार करने के लिए और पूछ-ताछ करने की इच्छा से।"

"तो अब फिर चले जाइये। अपने मन को सन्तोष तो हो जावेगा।"

"वह तो करूंगा ही, परन्तु मुझको हो क्या गया है कि मैं वहां बात भी नहीं कर सका ?"

"कुछ बात होती तो आपके मुख से निकलती ! मन का भ्रममात्र ही तो है, जो किसी श्रेष्ठ व्यक्ति के सम्मुख स्वयमेव छिन्न-भिन्न हो जाता है।"

(२)

देवलोक से राजदूत एक सैनिकदल के साथ महारानी शची को

लेने गया। जब ये लोग शची के पास पहुँचे तो उसने दिव्य यंत्र द्वारा देवराज से परामर्श किया। समाचार बताने के पश्चात् शची का प्रश्न था—"आपको मुक्त कराने का क्या उपाय किया जाये ?"

"यदि तुम अपने भवन में जा पहुँचो, तो दो उपाय हो सकते हैं। एक तो गान्धार देश पर आक्रमण कर दिया जाये। यह अब सभव है। भवन के भूगर्भ-आगारो में बहुत से अग्नेय अस्त्र तैयार पड़े है। उनकी सहायता से गान्धार तो कुछ नही, चाहो तो पूर्ण ससार पर विजय प्राप्त कर सकती हो, परन्तु इससे सुलभ एक और उपाय है। एक समय भगवान् विष्णु की पत्नी लक्ष्मी ने अपना हस नाम का वायुयान भेंट किया था। एक-दो बार हम उसमें भ्रमण के लिए निकल चुके हैं और तुम उसे चलाना भी जानती हो। उसमें तुम यहाँ चली आओ। मेरा आगार यहाँ दुर्ग के ऊपर की छत पर है। वहाँ हस उतर सकता है। जब मैं तुम्हें आता देखूंगा तो उस छत पर आने वाली सीढ़ियो का द्वार बद कर लूंगा। तुम्हारे उतरते ही मैं उसमें सवार हो चल दूंगा। इस विधि से युद्ध के द्वारा विनाश की आवश्यकता नहीं रहेगी और कार्य भी सुगमतापूर्वक हो सकेगा।"

इन बातों को समझ शची अमरावती के लिए चल पड़ी। उसके पहुँचने की तिथि अग्रिम ही वहाँ पहुँचा दी गई थी और उस दिन निश्चित समय पर पूर्ण नगर महारानी के स्वागत के लिए सजाया गया था। सब लोग, नर-नारी, बाल-वृद्ध, नए-नए वस्त्र पहिने मार्ग पर आ खड़े हुये। मार्ग के मकानो के छज्जे और छतें दर्शकों से खचाखच भर गईं।

नगर से दूर मार्ग पर एक सुसज्जित रथ महारानी के स्वागत के लिए भेजा गया। देवयानी, करण, नारद और नगर के सभी प्रतिष्ठित जन, उस रथ के साथ वहाँ स्वागत के लिए गए। महारानी का सबने बहुत सम्मान के साथ स्वागत किया और सुन्दर महारानी को उस भूपित रथ में बैठाकर सवारी निकाली गई। शची ने देवयानी को रथ

में अपने साथ बैठा लिया। रथ, जिसके आगे-पीछे काश्मीर और देवलोक की सेना थी, अमरावती के मुख्य मार्गों से होता हुआ भवन पहुँचा। मार्ग में नागरिकों ने पुष्पवर्षा की और अनेकों प्रकार की भेंटें दीं।

इन्द्रभवन में महारानी को अपने आगारों में ठहराया गया। उन आगारों को वैसा ही सजाया गया था जैसा कि वे पहिले सजे रहते थे। जब सब निश्चिन्त हो बैठे तो इन्द्राणी ने महाराज इन्द्र को मुक्त कराने की योजना रखी। परिणामस्वरूप हंस नाम का विमान निकाला गया। उसे झाड-फूंक कर साफ किया गया और जीवित पारद उसमें डालकर चालू किया गया।

दिव्यदृष्टि यन्त्र से इन्द्र के साथ सम्पर्क स्थापित कर उसे बताया गया कि अमुक दिन शची उस यान में कमल-सर दुर्ग को आ रही है। निश्चित तिथि को शची विमान में बैठ चलाने लगी और हंस वायु में उडने लगा। कुछ ही क्षणों में नगर के ऊपर विमान आकाश में मँडराने लगा। नारद की इच्छा थी कि विमान में शची के साथ और भी लोग जायें, परन्तु उसमें दो से अधिक के लिए स्थान नहीं था। इस कारण नारद की इच्छा पूर्ण न हो सकी।

जब अमरावती के लोगों ने छः वर्ष के उपरान्त वायु में पुनः विमान देखा, तो अपने-अपने घरों की छतों पर आ खडे हुए और महारानी की जयघोष करने लगे। नगर के ऊपर एक-दो चक्कर लगाकर विमान पश्चिम की ओर चल पडा।

नारद और देवयानी दिव्यदृष्टि यन्त्र के, जिसे शची भवन में छोड़ गई थी, सम्मुख खडे हो इन्द्र से वार्त्तालाप करने लगे। इन्द्र अपने यंत्र में शची के विमान को आते देख रहा था। उसने नारद आदि लोगों से कहा—"आप चिन्ता न करें। मैं उसको आते देख रहा हूँ। हम दोनों रात होने से पूर्व अमरावती में पहुँच जावेंगे।"

इन्द्र से देवयानी का परिचय कराया गया। सुमन ने शक्तिप्रसारक यन्त्रों के विषय में सूचना दी। इस प्रकार वार्त्ता चलती रही।

मध्यान्ह के समय इन्द्र ने सूचना दी—"शची का विमान आकाश में दिखाई देने लग गया है। इस कारण मैं यन्त्र को बन्द कर रहा हूँ। मैं तैयार रहना चाहता हूँ, जिससे बिना विलम्ब किए हम इस विमान को भूमि पर से उठा सकें।"

इस समय नारद आदि को यन्त्र में से इन्द्र दिखाई देने बन्द हो गए। और वे अब उनके लौटने की प्रतीक्षा करने लगे। तीन घंटे व्यतीत हो गए तो सब लोग छत पर जाकर आकाश में पश्चिम की ओर आँखें फाड-फाड कर देखने लगे। विमान अभी दिखाई नही दे रहा था। घण्टो के पश्चात् घण्टे व्यतीत होने लगे और विमान दिखाई नही दिया। ज्यो-ज्यो समय व्यतीत होता गया, सबके मुख विवर्ण होते गये। रात हो गई और सब गम्भीर मुख चिन्तित मन लिए छत से नीचे उतर आये। सब किसी भयानक दुर्घटना की सम्भावना पर मन ही मन विचार कर रहे थे।

अगले दिन भी इन्द्र और शची की प्रतीक्षा की गई और जब विमान नही आया, तो परिस्थिति पर विचार करने के लिए देवलोक के मुख्य-मुख्य अधिकारियो की गोष्ठी बुलाई गई और उसमें देवयानी ने वस्तुस्थिति समझा दी। नारद ने अपना अनुमान बताया कि विमान इन्द्र के पास दुर्ग में तो पहुँचा है, परन्तु वहाँ इसको कोई हानि पहुँची है। या तो किसी दुर्घटना के कारण अथवा दुर्ग के सरक्षको के कारण उनके लौटने में बाधा पड गई है। यदि वे वहाँ दुर्ग में होते और स्वतन्त्र होते तो दिव्यदृष्टि यन्त्र द्वारा यहाँ सूचना भेजते कि उनके न आने का क्या कारण है।

इस अनुमान को सुनने पर देवयानी ने कहा—"अब ता हमारे लिए करने के लिए एक ही बात रह गई है। वह यह कि हम उनको ढूँढने

का यत्न करें। इसके लिए मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि कोई कसर नही छोडी जायेगी। इस खोज का कार्य पूर्ण अधिकारो के साथ मैं करणदेव को सौंपती हूँ।

"मैं अभी कुछ काल तक यही रहूँगी। महाराज इन्द्र और महारानी शची की खोज के परिणामो तक, हमको धैर्य करना चाहिए। पीछे जैसी स्थिति होगी विचार किया जायेगा।"

करण ने उसी दिन से इस विषय में प्रयास आरम्भ कर दिया। वह स्वयं भी इन्द्र के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए कमल-सर दुर्ग जाने के लिए तैयार हो गया। उसकी उत्कट इच्छा थी कि वह अपनी माता से मिलने जावे, अतएव इस समय एक पथ दो काज होते देख सुमन और बच्चो सहित जाने की तैयारी करने लगा।

देवलोक में पितामह ब्रह्मा की कृपा से कुछ और जीवित पारद मिल गया और उसके देश का जीवन चल रहा था। इस पर भी यन्त्रो में कुछ दोष आता जाता था, जिससे कार्य पूर्ण देश में और पूरे बल से नही हो पाता था। इस कारण देवयानी ने उन ऋषियो की समिति बुलाई, जिन्होने ब्रह्मा से पहिले पारद प्राप्त किया था। उसने ऋषियो को कहा कि वे ब्रह्मा के पास जावें और उनसे कहें कि अब वर्तमान परिस्थिति में उनको अमरावती में आ जाना चाहिए और यहाँ जनता की रक्षा में सहयोग देना चाहिये।

ऋषियो का शिष्टमण्डल ब्रह्मा से मिलने गया। इधर देवयानी ने समाज के पुनर्गठन के लिए आचार्यो की एक समिति बुलाई। इस समिति के सम्मुख गान्धारो के वहाँ आ जाने से जनसमूह में जो वृद्धि हुई थी, स्त्रियो के सतीत्व का हनन हुआ था, वर्णसंकर बालको की उत्पत्ति हुई थी और गान्धारो की सन्तान—इन सबके लिए समाज में स्थान पर विचार करने के लिए प्रश्न उपस्थित हुआ। इस समिति को यह विचार करने के लिए आदेश दिया गया कि उन युवा पत्नियों

का, जो गान्धारो के जाने के पश्चात् देवलोक मे रह गई है, और जिनके सन्तानें भी हो चुकी हैं, क्या प्रबन्ध किया जाये ।

इसी प्रकार एक और समिति बनाई गई, जिसमें यह ब्रत विचारार्थ रखी गई कि भविष्य में देवलोक ससार के अन्य देशों से पूर्ववत् असम्बद्ध रहे, अर्थात् व्यापार, विचारो का आदान-प्रदान और विदेशों में तथा विदेशियों के देश में आने-जाने में सुविधा दी जाये अथवा न ।

इस प्रकार देश में एक नवीन उत्साह और देश के हित में विचारने की रुचि उत्पन्न कर दी गई । पूर्ण जनता यह समझने लगी कि वे ही देश का कल्याण कर सकती हैं ।

ब्रह्मा ने ऋषियो द्वारा भेजे निमन्त्रण का अस्वीकार कर दिया । इससे देवयानी को बहुत दुःख हुआ । नारद नें देवयानी से कहा—"मेरे विचार में बात यह है कि वे देवताओ से रुष्ट हैं । इस कारण उनसें हमारी बात न मानी जानी एक स्वाभाविक बात है । यदि आप समझती हैं कि ब्रह्मा जी को लाना ही चाहिए, तो स्वय जाकर उनसे निवेदन करिये । शायद वे मान जायें ।"

देवयानी समझती थी कि इन्द्र के लापता होने से और देवलोक के लोगो के उसके पास स्वयं जाने से पितामह का आ जाना चाहिए था । उनको देश के लिए थोडा कष्ट उठाने म न नही करनी चाहिए थी । ब्रह्मा के न करने से उसे बहुत दु ख हुआ था । इस पर भी नारद के कहने पर वह चलने को तैयार हो गई ।

इस समय एकाएक विक्रम अपने लडके नागराज सहित अमरावती में आ गया । देवलोक में नहुष की हत्या का समाचार उसको सिन्धु नदी पर दुर्ग निर्माण करते हुए मिला था । भास्कर को तो उसने बहुत पहिले ही देवलोक में देवयानी की रक्षार्थ और सहायतार्थ भेज दिया था । अब यह समाचार पाते ही कि नहुष की मृत्यु देवलोक की जनता के हाथ से हो गई है और देवलोक में देवयानी राज्य कर रही है, वह

देवयानी से मिलने के लिए व्याकुल हो उठा। उसने ब्रह्मावर्त के गणपति के हाथ शेष कार्य सौंप दिया और स्वय चक्रधरपुर के लिए चल पडा।

चक्रधरपुर में डेढ़ वर्ष के नागराज को देख, उसका मन उसको साथ ले चलने के लिए व्याकुल हो उठा। महाराज देवनाम और महारानी की स्वीकृति से बालक को साथ ले, वह देवलोक की ओर चल पडा। शची के अमरावती में पहुँचने और फिर इन्द्र को निकालने के लिए विमान में जाने और वहाँ से लापता हो जाने का समाचार (करण) को चक्रधरपुर में ही मिल गया था और मार्गभर वह यही विचार करता आ रहा था कि अब देवलोक का क्या होगा ? वह स्वयं अमरावती की अवस्था देखकर निर्णय करना चाहता था कि इस शीतप्रधान देश का क्या किया जा सकता है।

देवयानी ब्रह्मा के पास जाने की तैयारी कर ही रही थी कि विक्रम आ पहुँचा। बिना सूचना के विक्रम को आया देख, वह चकाचौंध रह गई। दोनो मिले, मानो दो नदियो के जल इस प्रकार मिल गए हो, जैसे वे अपना स्वत्व ही खो बैठी हो।

नागराज अभी एक वर्ष का ही था, जब देवयानी देवलोक आई थी। अब उसे आये छः मास व्यतीत हो चुके थे। डेढ वर्ष का बालक तोतली बातें करता था और सबको अति प्रिय लगता था। पिता पुत्र की रूप-रेखा पर मुग्ध था। वह समझता था कि बालक अपने काल का एक विशेष व्यक्ति होगा। इन्द्रभवन में इस बालक की धूम मची रहती थी।

विक्रम के आ जाने से, देवयानी के ब्रह्मा से मिलने के लिए जाने में देरी हो गई। अंत में ब्रह्मा के पास जाने का जब निर्णय हुआ, तो विक्रम ने भी इस वृद्ध देवता के दर्शन करने के लिए जाने का विचार कर लिया। नारद तो पहिले ही तैयार था।

: ३ :

सुमति को देवलोक में आये दो वर्ष हो चुके थे। नारद से उसकी भेंट प्राय नित्य होती थी, परन्तु विवाह-सम्बन्धी चर्चा उस स्तर से आगे नही चली थी, जिस पर चक्रधरपुर में पहुँची थी। सुमति की इच्छा थी कि नारद स्वय इस विषय में चर्चा करे, परन्तु या तो देवलोक में विप्लव कराने में व्यस्त होने के कारण या किसी अन्य कारण से देवलोक में आकर एक बार भी सुमति से विवाह की बात नही चली।

जब देवलोक में देवयानी का राज्य स्थापित हो गया और शची और इन्द्र किसी दुर्घटना के कारण लापता हो गए, तो सुमति ने समझा कि अब उसके भविष्य का निर्णय होना चाहिए। इस कारण जब नारद, देवयानी और विक्रम ब्रह्मा से मिलने के लिए तैयार थे, तब वह नारद से मिलने के लिए उसके आगार में जा पहुँची। नारद वहाँ बैठा वीणा बजा रहा था। आगार के द्वार पर बाहर खडी वीणा की झकार सुन वह ठहर गई। देवलोक के एक अद्वितीय सगीतज्ञ की वीणा-वादन कला को उसने पहिली बार ही सुना था। आज आगार में से स्वरलहरी बहते सुन, स्तब्ध रह गई। यह क्या राग था अथवा कौन-सी ताल थी, वह समझती नहीं थी। परन्तु उसके माधुर्य को वह अनुभव कर रही थी। कितनी ही देर तक वह मन्त्रमुग्ध नारद की वीणा पर तानालाप सुनती रही। अन्त में वीणा बन्द हुई और उसको ज्ञान हुआ कि वह किस प्रयोजन से वहाँ आई है। अतएव सुमति ने द्वार के बाहर से ही आवाज़ दे, भीतर आने की स्वीकृति माँगी। नारद आवाज़ सुन स्वय बाहर चला आया—"ओह सुमतिदेवी! आज इस घुमक्कड देवता के निवासस्थान को पवित्र करने का क्या प्रयोजन है?" नारद ने मुस्कराते हुए पूछा।

"यही खडी-खडी ही बताऊँ क्या? आपके आगार में घर आये अतिथि को बैठाने के लिए स्थान भी नही है ?"

"क्षमा करो देवी ! मै भूल ही गया था कि मुझे आपका स्वागत करना चाहिए। आइये ! पधारिये !" इतना कह वह सुमति को आगार में ले गया और एक आसन पर बैठने को कह, स्वयं अपनी वीणा के सम्मुख बैठ गया। एक हाथ उसका वीणा की तारो पर जा पडा। हाथ के वहाँ जाते ही षड्ज का तार झनझना उठा। इस पर सुमति ने कहा—"देवता ! इस झंकार को कुछ काल के लिए बन्द करिये। इसकी मधुर ध्वनि मेरे मस्तष्क में ऐसी हलचल उत्पन्न करती है कि मैं अपनी सुधबुध ही भूल जाती हूँ। मैं आपसे अपना वचन पूरा करने के लिए कहने आई हूँ।"

"क्या वचन था। मुझको ठीक याद नही पड रहा।"

सुमति को भारी क्रोध चढ आया, परन्तु वह आज इस विषय में अन्तिम निर्णय करने आई थी। इस कारण बोली—"आपने मुझसे विवाह के लिए वचन दिया था। इसे तीन वर्ष से ऊपर हो गए हैं। आज मैं उस वचन को पूरा करने के लिए कहने आई हूँ।"

"मैंने वचन नही दिया था। जहाँ तक मुझको स्मरण है, मैंने कहा था, आप जैसी सुन्दरी से विवाह कर अपना सौभाग्य मानूंगा; परन्तु देवी, विवा तो भाग्य के बिना नही होता। शायद मेरे भाग्य में विवाह है ही नही।"

"आपके भाग्य ने कौन-सी बाधा खडी कर दी है, क्या मै जान सकती हूँ ?"

"मेरी इच्छा पृथ्वीभ्रमण की हो गई है और इसमें विवाह बाधा उपस्थित करेगा।"

"जब विवाह करेंगे, तब आपको अपनी इच्छाओं को कुछ सीमा तक सीमित करना ही पड़ेगा। यही तो पारिवारिक आयोजन का रहस्य है।"

"देखो सुमतिदेवी ! इस बात को हुए तीन व व्यतीत हो चुके हैं। तब म और आज में भारी अन्तर पड़ गया है। मैं तीन वर्ष अधिक वृद्धावस्था को प्राप्त कर चुका हूँ। तुम तीन वर्ष अधिक युवावस्था को प्राप्त कर चुकी हो। इस कारण पूर्ण परिस्थिति पर पुनः विचार करने का अवसर आ गया है।"

"विचित्र व्यक्ति हैं आप ! मैं आपके पीछे-पीछे यहाँ आई हूँ किन्तु आपकी बातों ने मेरी सुध-बुध ही भुला दी है।"

"मेरा विचार है कि तुम भी हमारे साथ पितामह के दर्शन को चलो। वे त्रिकालज्ञ हैं। यदि मेरा और आपका विवाह लिखा होगा, तो वे बता देंगे। तब मैं भ्रमणार्थ जाने से पूर्व विवाह कर लूँगा। या तुम मेरे वापिस आने तक प्रतीक्षा कर लोगी।"

"मैं आपकी इस आनाकानी को समझ नहीं सकी। मैं ब्रह्मा जी का इसमें हस्तक्षेप नहीं चाहती। आपने मुझे विवाह की आशा दिलाकर अच्छा नहीं किया था।"

"वह तो मैंने अच्छा ही किया था। उस आशा में आप देवलोक में आईं और यहाँ जागृति उत्पन्न करने में भारी सहायता दी। उसके लिए पूर्ण देवलोक आपका कृतज्ञ रहेगा। रही मेरे विवाह की बात। मैं तो तैयार हूँ, परन्तु क्या मेरे भाग्य में ऐसा लिखा है ? मुझको इसमें सन्देह है। चलो पितामह जी से इस विषय में परामर्श कर लें। यदि मेरा और तुम्हारा विवाह होना ही है, तो वे बता देंगे, अन्यथा भाग्य से झगड़ा करने की क्या आवश्यकता है।"

सुमति को इससे सन्तोष नहीं हुआ। वह देवयानी के पास नारद के

विरुद्ध आरोप लेकर गई। देवयानी उसकी वात सुनी और देवर्षि को बुला भेजा और आने पर उसको सुमति का अभियोग सुना दिया।

नारद का कहना था—"देवयानी ! तुमको हम देवताओ ने अपनी महारानी माना है। इस कारण यदि तुम आज्ञा करोगी तो उसका मैं उल्लंघन नही करूँगा। परन्तु मेरा कहना है कि मुझको कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा है कि यह विवाह होगा नही। मेरे भाग्य में विवाह लिखा नही। इस पर भी पितामह ब्रह्मा से, जो त्रिकालज्ञ है, इस विषय में परामर्श कर लें तो उचित नही होगा क्या ?"

देवयानी को इस प्रस्ताव में कुछ भी आपत्ति नही हुई। इस कारण सुमति को भी चलने के लिए कहा गया।

इस प्रकार पितामह ब्रह्मा के पास देवयानी दल-बल-सहित जा पहुँची। वह अपने साथ काश्मीर की अनेको बहुमूल्य वस्तुएं भेंटस्वरूप लाई थी। ब्रह्मलोक में पहुँच पितामह से भेंट के लिए निवेदन किया गया। पितामह इस प्रकार अपनी शान्ति भंग किए जाने को पसन्द नही करता था। जव उसको वताया गया कि काश्मीर की राजकुमारी देवयानी, जिसने देवलोक का नहुष से उद्धार किया है, आई है, तो झूँझलाकर वोला—"मेरा देवलोक से क्या सम्बन्ध है ? मुझसे किसी प्रकार की आशा न रखें।"

देवयानी ने कहला भेजा—"मै अपने लिए कुछ मांगने नही आई। न ही देवलोक के लिए कुछ कहने आई हुं। मै एक विशेप उद्देश्य से सेवा में उपस्थित हुई हूँ, वह सुन लें। विना सुने और समझे भेंट अस्वीकार कर देना आप जैसे ज्ञानी के लिए शोभायुक्त नही। साथ ही मैं समझती हूँ कि मेरा अधिकार है कि आपसे सहायता मांगूं। इसी कारण आई हूं। यदि मेरी वात सुने विना न कर दी गई, तो मैं कल से द्वार पर उपवास कर वैठ जाऊँगी, और वृद्ध, पूजा-योग्य, देवता का हठ तुडवाने के लिए प्राणत्याग कर दूंगी।"

जब ब्रह्मा ने यह निश्चय सुना तो बहुत प्रभावित हुआ और मिलने के लिए तैयार हो गया। उसने सन्देश लाने वाले के हाथ कहला भेजा—"मैं मिलूंगा, परन्तु बात मानने का वचन नहीं देता। बात की युक्ति सुनकर उसे मानने अथवा न मानने की कहूँगा।"

देवयानी यही चाहती थी। भेंट का समय निश्चित हो गया। नारद ने कहा—"मैं तो डर गया था कि देवयानी की धमकी से पितामह और अधिक रुष्ट न हो जायें, परन्तु इसका चमत्कारिक प्रभाव हुआ है। धन्य हो देवयानी!"

देवयानी ने केवल यह कहा—"इसमें एक रहस्य है, जो आप नहीं समझते।"

"क्या रहस्य है?"

"समझने का यत्न करिये।"

अगले दिन भेंट हुई। सब लोग पितामह के आगार में गए तो बारी-बारी सबने चरण-स्पर्श किए। देवयानी ने जब स्पर्श करने के लिए हाथ बढाये, तो ब्रह्मा बोल उठा—"ठहरो।"

देवयानी हाथ जोड सामने खडी हो गई। पितामह ब्रह्मा ने उसकी आँखो में एक क्षण तक देखा, पश्चात् मुस्करा दिया। देवयानी ने हाथ जोडे-जोडे ही कह दिया—"दादा! क्या आज्ञा है?"

"तुम्हारे पति कहाँ हैं?"

विक्रम पीछे खडा था। वह आगे आकर चरण-स्पर्श करने लगा तो ब्रह्मा ने उसे भी रोक दिया। ब्रह्मा न कहा—"मेरे चरण-स्पर्श मत करो। यह भारी पाप हो जायेगा। बताओ क्या चाहते हो?"

देवयानी ने कहा—"देवलोक की रक्षा के लिए आपकी सहायता चाहते हैं।"

"ये लोग घोर पतन में गिर चुके हैं।"

"मेरा इन लोगो से कोई सरोकार नहीं। मै देवलोक की रक्षा, आर्य धर्म और वेद-वेदात की रक्षा के लिए चाहती हूँ।"

"यह कैसे हो सकेगा ?"

"तुखार से उठी म्लेच्छो की आंधी, जो ब्रह्मावर्त और आर्यावर्त को अधकार में ढप देने वाली है, उसका दमन देवलोक की रक्षा पर निर्भर है।"

"देखो `वी !" ब्रह्मा ने कहा—"देश तो नदी, पहाड़ और मैदानो के समूहमात्र होते है। इनकी रक्षा बिना उसमें रहने वाले मनुष्यो का विचार किए, कुछ अर्थ नही रखती। इस कारण देवताओ के उद्धार के बिना देवलोक की रक्षा निरर्थक होगी। देवताओ के मन मलिन हो चुके है और वे उचित मार्ग का अवलम्बन करने में सबल नही।"

"बाबा ! दुर्ग, पत्थर और चूने के बने होने पर भी रक्षा में साधन होते हैं। इसी प्रकार देश, पहाड, नदी इत्यादि होने पर भी भारी मूल्य की वस्तु हैं। हमारा प्रयास यह है कि हम वेद-वेदागो से अनभिज्ञ म्लेच्छो को कामभोज के पीछे धकेल दें। इसके लिए हमने इनको ब्रह्मावर्त से निकाल बाहर कर दिया है। काश्मीर को इनके आक्रमण से सुरक्षित कर दिया है। देवलोक से भी इनको निकालने में सफल हो गए हैं। अब और आगे गान्धार और कामभोज को भी इनसे खाली करना है। इस प्रयत्न के लिए काश्मीर, ब्रह्मावर्त और दवलोक के राज्य सुदृढ़ होने चाहिएँ। देवलोक की दृढ़ता वहाँ के शक्ति-प्रसारक यत्रो पर निर्भर है। उनके लिए आपकी सहायता चाहिए।"

"देवी ! तुम्हारी वाणी में बल, युक्ति और शुद्ध भावना प्रतीत होती है, परन्तु उसमें भविष्य का ज्ञान सम्मिलित नही। मैं बताता हूँ कि क्या होने वाला है। तुम अल्पज्ञ प्राणी इसको नहीं जानते। इसी कारण यह सब कुछ हो रहा है।

"सुनो ! मैं अपने योगबल से जाने भविष्य को बताता हूँ। देवलोक में दो वर्ष के भीतर इन्द्र लौट आयगा। वह पुन इसको वैसा ही सुखसम्पन्न बनावेगा, जैसा यह पहिले था। इन्द्र इस समय कामभाज में अंधी-कुई नामक ग्राम में बन्दी है। बन्दी करने वाला नहुष का श्वसुर जुष्क है। नहुष मर गया है, परन्तु उसका विवाह अपने देश में जुष्क की लडकी से हो चुका था और उस पत्नी से उसका एक पुत्र भी है जिसका नाम ययाति है। यह ययाति अपनी जाति के एक विद्वान् की लडकी से विवाह करेगा और उससे एक बलशाली वश की स्थापना होगी। यद्यपि इस बलशाली देश में बड -बड पराक्रमी राजा-महाराजा होंगे, परन्तु इनमें अपने पूर्वजो का असस्कृत चलन और विचार चलता रहेगा। इस चेष्टा की काली-घटायें पूर्ण देश में छा जायेगी और इन्द्र इस वश की सहायता करेगा, और यह वश ब्रह्मावर्त, वाहुक और आर्यावर्त पर चिरकाल तक निष्कटक राज्य करेगा।

"ययाति एक आर्य कन्या से भी विवाह करेगा और उससे एक कन्या-वश की स्थापना होगी। उस वश में एक महापुरुष का जन्म होगा, जो ययाति के अनार्य कन्या से उत्पन्न वश के अनाचार से उत्पीडित होकर देश के आकाश को, इन घटाओ से मुक्त कराएगा। वह इस वश का सर्वनाश करने में साधन बनेगा। यह महापुरुष भगवान् विष्णु का अवतार माना जायेगा। वह इस देश में, जो ययाति के वश में उत्पन्न एक अर्द्ध-देवता के नाम पर भारत कहायेगा, पुन: वेद-वेदाग, उपनिषद् और स्मृतियो की महिमा गायेगा और उनका मान स्थापित करेगा। तुम लोग जो कुछ करोगे वह विफल जायेगा।"

इस निराशाजनक भविष्यवाणी से सब चुप कर गए। देवयानी का मुख भी उतर गया। इस समय विक्रम ने कहा—"भगवन् ! आपकी भविष्य वाणी पर किंचित्‌मात्र भी सदेह न करते हुए, मैं यह निवेदन

करना चाहता हूँ कि भविष्य के अनिश्चितपन से भयभीत मनुष्य अपना कर्त्तव्यपालन नही छोड सकते। इस ेवी ने वहुत सुन्दर शब्दो में अपना कार्यक्रम वता दिया है। आपकी समझ में आवे तो हमारी सहायता करिए। यदि आप समझते है कि आपका इस ओर प्रयास करना अनावश्यक है तो आप अपने कार्य के स्वय स्वामी है। हमने निवेदन कर दिया है, अब आप आज्ञा कीजिए।"

"मैंने अभी न नही कही। मैंने तो इस देवी को, क्या होने वाला है, इसका निर्देश किया है। एक बात जो अब कहता हूँ, उसको ध्यान से सुनो और समझो। तुम्हारी इस देवी की बात का मै उल्लघन नही कर सकता और मैंने तुम लोगो को देखते ही निश्चय कर लिया था कि मुझको अमरावती जाना ही होगा।"

इस पर 'धन्य हो ! धन्य हो' सवके मुख से निकल गया। देवयानी ने जब पुन: चरण-स्पर्श करना चाहा, तो ब्रह्मा ने अपने पाँव पीछे कर लिए और कहा—"यह मत करो।"

यह सव कुछ सुन और देख नारद से नही रहा गया। उसने कह ही दिया—"पितामह ! आपका निर्णय सुन तो हृदय अति प्रसन्न हुआ है, परन्तु उससे मन में कुछ सन्देह उत्पन्न हो गया है। इसके निवारण की तीव्र उत्कण्ठा भी जागृत हो गई है। क्या मैं जान सकता हूँ कि आपके इस कथन का क्या अर्थ है ?"

"यह समय वतायेगा। सगीताचार्य ! तुम अपनी वात वताओ।" सुमति की ओर सकेत कर ब्रह्मा ने कहा—"वेचारी वालिका को क्यो खराव कर रहे हो ? तुम जो विवाह के योग्य हो ही नही, क्यो उसको अपने साथ-साथ लिए घूमते हो ? देखो सुमति !" ब्रह्मा ने उसकी ओर देखकर कहा—"तुम्हारा इस वेपैंदी के लोटे से विवाह नही होगा और न होना ही चाहिए। तुम अपने पिता के पास लौट जाओ। तुम्हारा होने वाला पति तुम्हारी वहाँ प्रतीक्षा कर रहा है।"

: ४ :

ब्रह्मा अमरावती में आया तो कार्य और भी प्रगति करने लगा। ब्रह्मा का कहना था कि देश की अस्तव्यस्त अवस्था को सुधारने के लिए आवश्यकता है कि इसकी जनसख्या सीमित की जाय और फिर उसमें पुरुष-स्त्रियों का उचित अनुपात किया जाय और तदनन्तर पुरुषो और स्त्रियो में अधिक से अधिक लोगो को सबल तथा गुणवान बनाया जाये। इसके लिये योजना बनाने के लिये जनगणना होनी भी आवश्यक बताई गई।

इन्द्र और शची की खोज में करण के अतिरिक्त कई दल भिन्न-भिन्न दिशाओं में भेजे गये थे। अभी तक कोई परिणाम नहीं निकला था। कुछ दल असफल हो लौट आये थे। ब्रह्मा ने देवयानी को बतलाया कि इन्द्र कामभोज में नहुष के श्वसुर जुष्क के दुर्ग अघी-कुई में बदी है। उसको वहाँ से छुडाने के लिए योग्य व्यक्ति को भेजना चाहिये। यह निश्चय हुआ कि कुछ लोग वहाँ भेजे जावें, जो इन्द्र और शची को छुडाकर भगा लाने का षडयत्र कर सकें। यदि यह न हो सका तो कामभोज पर आक्रमण किया जाये।

इस कार्य के लिये विक्रम के एक मित्र वरुण को काश्मीर से बुलाया गया। वह चतुर, बुद्धिमान् और साहसी व्यक्ति था। उसको पूर्ण परिस्थिति का ज्ञान कराकर, इस विषय में योजना बनाने का आदेश दे दिया गया।

वरुण विक्रम के अपने गाँव का रहने वाला था। उसका बाल-सहपाठी था और उस पर विक्रम को बहुत विश्वास था। इस कारण धन और जन उसे दे दिये गये और उसको शीघ्रातिशीघ्र इन्द्र और इन्द्राणी को छुडाने के लिये यत्न आरम्भ करने के लिए कहा

गया। वरुण ने पहिले, केवल दो साथियो को साथ लेकर जाने का विचार किया।

अधी-कुई कामभोज में काश्मीर से पचास कोस पश्चिम की ओर एक छोटा-सा कसवा था। इस कसवे का सर्दार जुष्क नाम का एक व्यक्ति था। नहुष से जुष्क की लडकी कामिनी का विवाह हुआ था, परन्तु पीछे पति-पत्नी में वैमनस्य हो जाने के कारण कामिनी अपने पिता के घर चली आई। उस समय उसका एक वर्ष का लड़का उसके साथ था। इस लडके का नाम ययाति रखा गया। पीछे नहुष देवलोक को विजय करने का स्वप्न देखता हुआ वहाँ से चला गया।

ययाति दस वर्ष की आयु का था, जब गान्धार-अधिपति काकूष की ओर से आज्ञा आई कि देवराज इन्द्र और उसकी पत्नी शची को नहुष के सम्बन्धियो ने वंदी बना रखा है, वह उनको वहाँ से ले आये और अपने यहाँ रखे। जुष्क इन्द्र और शची को ले आया और उसने उनको अपने दुर्ग में एक तीन छत के घर की सबसे ऊपर वाली छत में बंद कर दिया।

इस घटना को हुए छः मास व्यतीत हो चुके थे। इन्द्र तथा शची को वहाँ शारीरिक दृष्टि से प्रत्येक सुविधा थी। बढिया खाना, जो इस देश में उपलब्ध हो सकता था, दास-दासियाँ सेवा के लिए, अच्छे और स्वच्छ वस्त्र पहिनने के लिए, मिल जाते थे। असुविधा थी तो केवल घर के अन्दर बन्द रहने की।

घर की भूमि के आगारो और ड्योढी में तीस सैनिक रहते थे। एक सैनिको का नायक था। सब लोग भूमि पर ही पहरा देते और भूमि पर ही रहते थे। बीच की छत पर आठ दासियाँ रहती थी, जो इन्द्र और शची की सेवा के लिए थीं। सबसे ऊपर की छत पर इन्द्र और शची स्वयं रहते थे। इस छत पर पाँच आगार थे। इन्द्र तथा शची पाँचो में रहते-बैठते थे। भ्रमण के लिए मकान की छत पर जा, खुली हवा

में घूमा जा सकता था और इन्द्र तथा शची नियमपूर्वक सायकाल सूर्यास्त से दो घडी पहिले वहाँ चले जाते थे और घूमते थे।

मकान इतना ऊँचा था कि ऊपर की छत दुर्ग के बाहिर खडे व्यक्ति को दिखाई देती थी और उस पर घूम रहे बदी भी बाहिर के व्यक्ति को दिखाई पडते थे। मकान दुर्ग की प्राचीर के साथ-साथ ही था। इस कारण दुर्ग के बाहिर के लोग प्राय: सायकाल बदियो को घर की छत पर घूमते देखते रहते थे।

दुर्ग की प्राचीर के साथ एक सडक थी और सडक के पार अघी-कुई ग्राम की बस्ती थी। कुछ घर तो सडक के किनारे पर ही थे।

शची का सौन्दर्य और इन्द्र की भव्य रूपरेखा ऐसी थी कि देखने वालो का मन देखकर भरता नही था। इस कारण दुर्ग के बाहर प्राचीर के समीप, जहाँ से मकान की छत दिखाई देती थी, सायंकाल इन्द्र तथा शची के दर्शन करने वालो की भीड लग जाती थी।

इन्द्र और शची से ययाति प्राय मिलने जाया करता था। ययाति की माँ भी इन्द्राणी से सबन्ध रखे हुए थी। इनका बन्दियो से व्यवहार अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण था। परन्तु वे इनको बदी रखने में अपनी विव-शता प्रकट करते थे।

इस समय सर्दार जुष्क के पास एक सभ्य युवक सेवाकार्य के लिए उपस्थित हुआ। यह करण था। वह अपनी पत्नी और बच्चो के साथ अघी-कुंई के पथागार में आकर ठहरा हुआ था। जुष्क अपने नित्यप्रति के स्वभावानुसार मध्याह्नोत्तर, जब नगर में और नगर के बाहर जगल में भ्रमण के लिए निकला तो करण ने झुककर प्रणाम किया और कहा—"कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।"

सर्दार ने उसको सिर से पाँव तक देखा और पूछा—"कौन हो ?"

"मैं नहुष महाराज का, जब वे देवलोक में थे, महामन्त्री था। मेरा

नाम करणदेव है। मै आपके देश का ही रहने वाला हूँ।"

जुष्क ने कुछ विचार किया और कहा—"हम तुमसे पृथक् मे बात करेंगे। कल प्रात:काल हमारे यहाँ चले आना।"

करण यही चाहता था। अगले दिन वह दुर्ग के द्वार पर आ उपस्थित हुआ। उसकी सूचना अन्दर भेजी गई। सूचना पाते ही करण को सर्दार के प्रासाद में बुला लिया गया। दुर्ग भीतर से बहुत बड़ा था। एक कोने में सर्दार का प्रासाद था। उससे दूसरे कोने में वह घर था, जहाँ इन्द्र और शची बदी थे। एक कोने में सैनिको के घर थे और चौथे कोने में दास-दासियो के लिए निवासस्थान थे।

करण जब प्रासाद के बड़े आगार में पहुँचा तो उसने सर्दार की स्त्री और लड़की तथा ययाति को सर्दार के साथ बैठा पाया। उससे सर्दार ने सबका परिचय कराया और पश्चात् बैठने का आदेश दिया। करण से उसका परिचय पूछा गया तो उसने बताया—"यहाँ से पूर्व की ओर दस कोस के अन्तर पर डुग्गी गाँव का रहने वाला हूँ। मेरे पिता व्यापारी थे। उनका जब देहान्त हुआ तो मै बालक ही था। मेरी माता ने मुझको विद्या ग्रहण करने के लिए लवपुर भेजा। वहाँ शिक्षा प्राप्त कर नहुष महाराज के पिता के पास कार्य करने लगा था। नहुष महाराज को मेरा कार्य पसन्द आया तो उनके देवलोक पर आक्रमण के लिए सेना का सगठन मेरे हाथ में सौंपा गया। पश्चात् जब मैं देव-लोक में पहुँचा तो मुझको महामात्य का पद मिला। महाराज की हत्या के पश्चात् मैं ब्रह्मावर्त चला गया था और वहाँ से अपनी वृद्ध माता से मिलने के पश्चात् किसी भले पुरुष की सेवा प्राप्त करने का यत्न कर रहा हूँ। इस कारण आपके यहाँ कार्य मिल जाये तो अपना सौभाग्य मानूँगा।"

"क्या कार्य कर सकोगे ?"

" जो भी सत्य और न्याय के आश्रय पर किया जा सके, कर सकूंगा ।

"क्या वेतन चाहोगे ?"

"जिससे मेरी पत्नी और दो बच्चो का भरण-पोषण हो सके ।"

"नहुष के साथ जो घटना हुई है, उसके विषय में तुम क्या समझते हो ?"

"मैं उस समय धोखे से देवताओं द्वारा बन्दी बना लिया गया था ?"

"क्या यह सत्य है कि नहुष इन्द्राणी से विवाह करना चाहता था ?"

"सत्य है ।"

"बलपूर्वक ?"

"यदि वे न मानती तो नहुष बलपूर्वक भी यत्न करना चाहता था । उसने काश्मीर-नरेश की लड़की देवयानी का बलपूर्वक अपहरण करना चाहता था ।"

"वह तो कुंआरी लड़की थी । हमारी धर्मनीति में विवाहित का अपहरण अपराध माना है ।"

करण चुप रहा । इस पर जुष्क ने पूछा—"तुमने उसको इस बात से मना नही किया था ?"

"किया था । परन्तु वे माने नही ।"

"तो तुमने उसकी सेवा छोड क्यो नहीं दी थी ?"

"छोड दी थी और मैं लौटकर घर जाना चाहता था, परन्तु मुझ को बन्दी बना लिया गया । पश्चात् नहुष महाराज को एक सूचना मिली कि महारानी उससे विवाह करने के लिए तैयार है । यह सूचना मिथ्या थी । इसके सम्बन्ध मे मैं बन्दी बना लिया गया और फिर महाराज की हत्या कर डाली गई ।"

"देखो करणदेव ! नहुष मेरा दामाद था। उसने मेरी लडकी से बहुत बुरा व्यवहार किया था और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र ययाति को राज्यगद्दी मिलनी चाहिए थी। वह अपने पुत्र को उस राज्य में ले ही नही गया। अब वह लडका ही मेरी सन्तान है। मेरा अपना लडका कोई नही। मै चाहता हूँ कि इसका कोई प्रबन्ध कर दूँ। तुम पढे-लिखे विद्वान् हो। तुम अपने सत्य हृदय से इसके लिये कुछ करो। इसमें ही तुम्हारी योग्यता की परीक्षा होगी।"

"मै अपनी ओर से पूर्ण यत्न करूँगा। आगे इस बालक का भाग्य है।"

"मैने आचार्य जी से इसका भविष्य पढाया है। उनका कहना है कि यह स्वतत्र साम्राज्य स्थापित करेगा। इसके वश में चक्रवर्ती राजा होगे। यह सब ठीक है, पर बिना प्रयत्न किये कुछ हो नही सकेगा।"

"श्रीमान् का कहना ठीक है। मुझ पर विश्वास कर आप मुझको यत्न करने दीजिये।"

करण जुष्क के पास कार्य करने लगा। सबसे पहिली बात करण ने यह की कि ययाति को आचार्य शुक्राचार्य के पास पढने को भेज दिया। वहाँ इसकी शिक्षा राजपुत्रो के समान होने लगी। दूसरी ओर उसने जुष्क के इलाके में एक सेना तैयार करनी आरम्भ कर दी। सेना के लिये धन की आवश्यकता थी। इस निमित्त उसने वहाँ व्यापार की वृद्धि के लिये यत्न आरम्भ कर दिया।

नगर के व्यापारियों को बुलाकर उसने सर्दार की आवश्यकता उनके सामने रख दी। उसने यह बात स्पष्ट कर दी कि इसके लिये सर्दार उनके व्यपार में वृद्धि चाहता है। उनकी आय बढ जाने से वह अधिक कर प्राप्त कर सकेगा।

उस गाँव में एक ऊन का नवीन व्यापारी आया था। उसका नाम

चरण था। इस व्यापारी की योजना सबसे शीघ्र फल लाने वाल
प्रतीत हुई। वह मान ली गयी। इस योजना के अनुसार उसको उ
इलाके की सब ऊन बाहर भेजने का एकाकी अधिकार दे दिया गया
उसका विचार था कि वह किसानो से सब ऊन खरीद लेगा और उसक
छँटवाकर, साफ करवाकर, भिन्न-भिन्न रग और प्रकार की भिन्न-भिन्न
गाँठों में बाँधकर बेचने के लिये बाहर भेजेगा। इससे ऊन का दाम
वहुत अधिक प्राप्त होने लगेगा और सर्दार को कर भी वहुत मिल
लगेगा। वह स्वय प्रति गाँठ दस रजत अपनी मजदूरी ले लेता था
इस योजना पर कार्य करने से एक तो सैकडो नर नारियो को काम
करने को मिल गया और दूसरे राज्य को अधिक कर मिलने लगा।

सर्दार की आय बढने लगी तो करण सेना बढ़ाने लगा। इससे
करण की महिमा सर्दार के मन में बैठ गयी। उसको भी एक घर दुर्ग
के अन्दर मिल गया। सुमन कभी-कभी सर्दार की पत्नी से मिलने जाया
करती थी।

एक दिन सुमन ने कामिनी को बताया कि वह देवलोक की रहने
वाली है और वहाँ पर करणदेव से उसका विवाह हुआ था। सुमन ने
यह भी बताया कि उसका परिचय शची महारानी से है। वह महारानी
की गोदी में खेली है। इस पर कामिनी ने पूछा—"तब तो तुम्हारा चित्त
उनसे मिलने को करता होगा ?"

"करता तो बहुत है, पर क्या जाने सर्दार पसन्द करेंगे या नहीं,
इससे कहने का साहस नही कर सकी।"

"हम तो इसमें कोई हानि नही समझते। यदि चाहो तो अभी चल
सकते हैं। इस समय वे मिलती भी हैं। महारानी बहुत ही अच्छी हैं।
कभी किसी प्रकार से भी हमारा वहाँ जाना बुरा नहीं मानती।"

"तो चलिये, यदि यही आपकी इच्छा है।"

उस दिन सुमन की भेंट इन्द्राणी से हुई। इन्द्राणी ने पहिचाना तो आश्चर्य करने लगी। "तुम कैसे आयी हो यहाँ ?' उसनें पूछा।

"मैंने एक गान्धार से विवाह कर लिया था। आप उनको जानती हैं, वे आपके पास नहुष का कुछ संदेश लेकर काश्मीर गये थे।"

"ओह ! स्मरण आ गया है। करणदेव नाम था उनका। उस समय वे देवलोक के महामात्य थे। बहुत ही भले पुरुष प्रतीत हुए थे मुझको।"

"हाँ ! वही हैं। अब वे यहाँ के सर्दार, इसके पिता की सेवा में हैं।"

"तब हम सर्दार को कहेंगे, कि कभी उन्हें हमें मिलाने को लावें।" इसके पश्चात् देवलोक की और इधर-उधर की बातें होने लगी।

विदा होने के समय शची ने कामिनी से कहा—"आप अपनी माता जी से कहकर इनको हमसे मिलने आने की स्वीकृति दिलवा दें।"

इसके पश्चात् करण और सुमन दोनों को इन्द्र और इन्द्राणी से मिलन का अवसर मिलने लगा।

(५)

वरुण ने दुर्ग के बाहर सडक के पार एक घर भाड़े पर ले लिया था। वह घर दुर्ग के उस भाग के समीप था, जिसमें इन्द्र बंदी था। वरुण ने उस घर में एक दूकान रख ली और घर के पिछले भाग में ऊन का गोदाम बनाया। उसनें अपने कारोबार को चलाने के लिये पचास के लगभग नौकर रखे हुए थे, जो सबके सब काश्मीर-सैनिक थे।

वरुण ने अपने घर से दुर्ग की प्राचीर तक का अन्तर नाप लिया। पश्चात् उसने दुर्ग की प्राचीर की चौड़ाई जान ली। अब उसके लिये

दीवार के भीतर से बंदीगृह का अंतर जानना शेष था। यह अंतर जानना उसकी योजना का प्रथम चरण था।

इसके लिये उसने फल तथा फूलों की दूकान निकाल ली। ये फल और फूल कुछ तो वह अधी-कुई में ही पैदा करने लगा था और कुछ वह काश्मीर से मँगवाता था। एक दिन कुछ पुष्प-मालायें इन्द्र तक पहुँचाने के लिये उसने शची की एक सेविका को ढूंढ निकाला। वह बाजार में अपने लिये कुछ खरीदने आयी थी। वरुण ने उसको दुर्ग में आते-जाते देखा था। वह जब दूकान के आगे से गुजर रही थी तो वरुण ने उसके समीप जाकर धीरे से कहा—"आप महारानी इन्द्राणी की सेवा में हैं न ?"

"हाँ ! क्यों ?"

"कुछ फूल हैं, जो महारानी जी को भेजने हैं।"

"फूल ? वे तो महारानी जी को बहुत पसन्द है।"

"तो ले जाओगी ?"

"मैं आगे से जरा अपने लिये सामान ले आऊँ। लौटते समय लेती जाऊँगी।"

"ठीक है। मैं यहाँ प्रतीक्षा करूंगा।"

वह लौटी तो वरुण ने उसको दो गुलाब के फूलों की मालायें पत्तों के दूनों में रखकर दीं। बड़े-बड़े गुलाब के सघन गुंथे हुए फूल देखकर, सेविका की आँखें ललचा आयीं। वरुण ने देखा और समझ गया। उसने उसको कहा—"ठहरो।"

वह ठहर गयी तो वरुण दूकान के भीतर से एक बड़ा-सा गुलाब का फूल ले आया और उससे बोला—"इसे तुम अपने लिये लेती जाओ।"

"नहीं, नहीं ! कुछ आवश्यकता नहीं।"

"देखो...क्या नाम है तुम्हारा ?"

"मुझको कमल कहते हैं।"

"हाँ, देखो कमल ! यह गुलाब का फूल यहाँ की सर्दार की पत्नी को भी नहीं मिल सकता और यह मैं तुमको दे रहा हूँ । ये इस देश में होते ही नही। मैंने काश्मीर से मँगवाकर लगवाये हैं।"

अब भी कमल ने वह स्वीकार नही किया। इस पर वरुण ने कहा—"तो इसको मैं तुम्हारी वेणी में टाँक देता हूँ।"

वह टाँकने लगा तो उसने अपने हाथ में पकड लिया। अगले दिन फिर कमल बाजार में आयी तो वरुण ने फिर उसको दो मालायें दी और एक फूल उसके अपने लिये दिया। आज फूल लेने में उसने आना-कानी नही की। इतना उसने कहा—"महारानी ने आपको धन्यवाद दिया है।"

"ये फूल ले जाने में किसी ने आपत्ति तो नही की ?"

"नही ! जो कुछ वस्तु हम बाहर से ले जाती हैं प्रहरियों का नायक उनका निरीक्षण करता है। कल पुष्पमालायें देख उसके मन में लोभ आ गया। तब मैंने अपना फूल उसका दे दिया। इससे वह प्रसन्न हो गया।"

"उसका विवाह हुआ है क्या ?"

"नहीं ! परन्तु उसकी एक प्रेमिका अवश्य है।"

"तो आज मैं एक फूल उसके लिये पृथक् देता हूँ। और उससे कहना कि तुम्हारा फूल तुम्हारे पास रहने दे और दूसरा अपनी प्रेमिका को दे दे।"

कमल खिलखिलाकर हँस पड़ी। वरुण विस्मय में उसका मुख देखता रह गया। वह केवल एक ही लेकर चल दी।

अगले दिन वरुण ने फिर उसको मालायें दीं और साथ में दो सुन्दर फूल देते हुए कहा—

"एक तुम्हारे लिये और एक तुम्हारे नायक की प्रेमिका के लिये।"

कमल की फिर हँसी निकल गयी। वरुण ने पूछा—"क्या तुम्हारे नायक की प्रेमिका कुरूप है, जो तुम यह फूल उसके योग्य नहीं समझती ?"

"नही यह बात नहीं। नायक तो अपनी प्रेमिका को महाराना शची से भी अधिक सुन्दर मानता है।"

"तो कल तुम उसके लिये फूल ले क्यो नही गयी ?"

"उसको तो फूल मिल ही जाता है। वह तो अपनी प्रेमिका को वह फूल दे ही देता है।"

"तो तुम अपने फूल से वचित हो जाती होगी। यह मुझको पसन्द नही। इसी कारण आज फिर ये दो फूल दे रहा हूँ। एक तुम्हारे लिये और एक उनकी प्रेमिका के लिये।"

"मैं शायद ऐसे सुन्दर फूलो के योग्य नही हूँ ?"

"किसने कहा है तुमको यह झूठ ?"

"मेरा मन कहता है।"

"तुम मेरे सामने झूठ कह रही हो। ससार में कोई स्त्री अभी उत्पन्न नही हुई, जो अपने को कुरूप मानती हो। साथ ही रूप का अनुमान कोई अपने आप नही लगा सकता। इसके लिये दूसरे ही पारखी हो सकते हैं।"

"मैं दूसरों की वात ही कह रही हूँ।"

"तो वे मूर्ख हैं। देखो कमल, मैं तुमको इन गुलाव के फ्लो के योग्य ही समझकर यह दे रहा हूँ।"

"तव तो मेरे पास दो फूल हो जावेंगे ?"

"सत्य ?"

कमल विना उत्तर दिए मालायें और फूल लेकर चल दी।

कुछ दिन तक ऐसा ही चलता रहा। गुलाव के फूल गए तो मोतिया की ऋतु आ गई। कमल और वरुण में कुछ अधिक मेलजोल वढ़ा, तो

वह उसकी दुकान के भीतर आने लगी और उससे अधिक अंतरंग बातें करने लगी। वरुण भी कमल में अधिक और अधिक रुचि लेने लगा। एक दिन कमल आई तो वरुण की दुकान बन्द थी। उसने ओस-पड़ोस वालों से पूछ-ताछ की, तो उसको पता चला कि वरुण बीमार है। इससे वह उसके घर आ पहुँची। वरुण ने मालायें और फूल मँगवा रखे थे। जब वह आई तो उसने उसका बहुत धन्यवाद किया और कहा—"मैं यही आशा करता था।"

"क्यों ?"

"इसको बताने की भी आवश्यकता है क्या ? एक स्त्री क्यों किसी पुरुष की बीमारी की सूचना पा उसको देखने जाती है, और एक पुरुष क्यों किसी स्त्री को फूल भेंट करता है ?"

कमल ने टेढी दृष्टि से वरुण को देखा और पूछा—"तो आप ये मालायें महारानी जी को क्यों भेजते हैं ?"

"इसलिए कि मैं उनसे अपनी माता समान प्रेम करता हूँ।"

"और ये फूल मुझे किस लिए देते हैं ?"

"इसलिए कि मैं तुम्हारे प्रेम का भिखारी हूँ।"

इस कथन से कमल का मुख रक्तिम हो गया और आँखें नीचे झुक गईं। वरुण ने कहा—"और तुम क्यों आई हो ? क्या यह भी मैं ही बता दूं ?"

"नहीं, बताने की आवश्यकता नहीं। हाँ, महारानी जी ने कहा है कि नित्य इतने सुन्दर तथा सुगन्धित पुष्पों को भेजने वाले के वे दर्शन करना चाहती हैं। मैंने अपने नायक से कहकर आपकी भेंट का प्रबन्ध करवा दिया है। पहिले तो यह विचार था कि सर्दार से पूछ लें, परन्तु पीछे मैंने नायक से ही निश्चय कर लिया है। आप आज मध्यान्होत्तर दुर्ग के भीतर सर्दार के प्रासाद के दक्षिण पार्श्व में आ जाइयेगा। वहाँ से मैं आपको महारानी इन्द्राणी के पास ले चलूंगी।"

"वहुत अच्छी वात है, परन्तु जो मैंने आज तुमको अपने मन के भाव बतालाये हैं, इसका मैं उत्तर चाहता हूँ। क्या मैं ठीक समझ रहा हूँ ?"

"तो क्या सब वातें आज ही इसी समय हो जावेंगी ?"

"नही ! तुम अवसर देखकर वता सकती हो।"

उसी दिन तीसरे पहर वरुण जब दुर्ग के भीतर सर्दार के प्रासाद के दक्षिण पार्श्व में पहुँचा, तो कमल प्रासाद के भीतर से आती दिखाई दी। वह वरुण के समीप आकर बोली—"चलो।"

दोनों चल पडे। इन्द्र के बन्दीगृह पर पहुँचे तो नायक ड्योढी में स्वय खडा था। वह इनको देख घवराया। कारण पूछने पर नायक ने वतलाया कि सर्दार और करणदेव दोनो बन्दी से मिलने आये हुए हैं। या तो इनको फिर लाना, अन्यथा इनको मकान के पिछवाडे में ले जाकर खडा कर दो। जव वे चले जावेंगे तो तुम्हें बुलवा लूंगा।

वरुण इसी के लिए योजना वना रहा था। उसका विचार था कि इन्द्र तथा शची से भेंट के पश्चात् वह नायक से कमल के विषय में बात करने लगेगा और मकान की ड्योढी से दुर्ग के प्राचीर तक का अतर कदमो से नाप लेगा। अव ऐसी सुविधा स्वयमेव प्राप्त हो गई। और साथ ही साथ कमल से वातें करने का अवसर भी मिल गया। नायक के कहने पर वरुण ने कमल की ओर देखा तो वह मुस्करा दी। दोनो बन्दीगृह के पिछवाडे में चले गए और मकान के मध्य भाग से लेकर दुर्ग के प्राचीर तक टहलते हुए वातें करने लगे। इस मध्य भाग के ठीक दूसरी ओर ड्योढी थी।

वरुण जव वहाँ पहुँचा, तो दो प्रहरी वहाँ भी देखभाल कर रहे थे। उन्होंने पूछा—"कमल ! क्या है ?"

"ये महाशय सर्दार की स्वीकृति से वन्दियो मे मिलने आये है, और उनको अभी अवकाश नही।"

इस प्रकार प्रहरियो का समाधान कर वे पुन: टहलने लगे। टहलते हुए वरुण ने पूछा—"कमल ! यह वह नायक है, जिसकी तुम प्रेमिका हो ?"

"हां, जो मुझसे प्रेम करता है।"

"यह तो काफी वडी आयु का है ?"

"तो फिर मेरा क्या वस है इसमें ?"

"तुम्हारा प्रेम क्या तुम्हारे वस की वात नही ?"

"है; और मै इससे प्रेम नही करती।"

"तो फिर क्या होता है ?"

"होता है सिर तुम्हारा। तुम हो लाल वुझक्कड़।" वरुण इस पहेला को सुन विस्मय में कमल का मुख देखता रह गया। इस पर कमल ने अपने मन की वात वता दी—"मै नायक के ग्राम की रहने वाली हूँ। मेरे माता-पिता नही हैं। पेट भरने के लिए अँधी-कुई में आकर इनके घर ठहरी। तव इनकी वीवी जीवित थी। मुझको नायक की पत्नी की सेवा का कार्य मिल गया। अपनी वीवी के मरने के पश्चात् नायक मुझसे विवाह करने की इच्छा करने लगा है। मैंने कभी न नही की, परन्तु मै जानती हूँ कि विना विवाह के मुझको छुवा नही जा सकता। नायक महाराज मुझ पर इतनी कृपादृष्टि रखते हैं कि वह वात किसी से छुपी नही और यहां सव लोग समझते हैं कि मेरा उससे विवाह होने वाला है। आपके दिए फूलों ने तो यह चर्चा और भी वढ़ा दी है। वह नित्य आपके फूल मेरी वेणी में लगाता है।

"हम सेविकायें मध्य की छत पर रहती हैं। ये नायक महोदय रात को कभी मेरे आगार में आने का असफल यत्न करते हैं, घरभर के

लोग हँसी करते हैं। मुझसे लोग पूछते है कि मैं उससे विवाह क्यों नही कर लेता ? तो मैं कह देती हूँ, हो जायेगा। अभी जल्दी क्या है ?"

"तब तो मैं आशा कर सकता हूँ।"

"किस बात की ?"

"एक अस्पृश्य कुमारी से विवाह कर सकने की।"

"क्या ससार में ऐसी कुमारियाँ नही हैं ?"

"हमारे देश में तो हैं, परन्तु यहाँ इस देश में सुना है कि सतीत्व की महिमा कुछ अधिक नही।"

"सतीत्व के क्या अर्थ हैं ? मैं नही समझी।"

"अपने विवाहित पति के अतिरिक्त किसी दूसरे पुरुष के सम्पर्क में न आने को सतीत्व कहते हैं।"

"यदि ऐसा हो जाये तो हानि क्या है ?"

"कमल, यह एक गम्भीर विषय है। इस पर विवाद मेरे बस की बात नही। मैं अभी तक यह समझता रहा हूँ कि तुम नायक की अविवाहिता पत्नी हो। इस कारण मैं तुमसे प्रेम करता हुआ भी तुम्हारे साथ विवाह नही कर सकता था। मेरी सतान की माँ वह नही हो सकती, जो सती-साध्वी न हो। यह मेरी और हमारे देश के प्रत्येक युवक की भावना है। अब मुझको ऐसा प्रतीत हुआ है कि मैं तुमसे विवाह के लिए भी कह सकता हूँ। मै यही जानना चाहता हूँ कि क्या मैं ऐसा कर सकता हूँ ?"

इसी समय नायक आ गया और उनको साथ ले चला गया।

वरुण ने इतने काल में वदीगृह के मध्य के दुर्ग की प्राचीर तक कई चक्कर काट लिए थे। उसने नाप लिया था कि यह अन्तर एक सौ पग का है। उसकी योजना का एक अग पूर्ण हुआ और दूसरे अग के विषय में वह कार्य आरम्भ करने के लिए तैयार था।

(६)

करण ने छ मास में दस सहस्र सेना एकत्रित कर ली थी। उसके इस कार्य में वरुण की योजनायें विशेष सहायक हो रही थी। ऊन का उसके कहे अनुसार प्रबन्ध होने से, जहां किसानो को धन तुरन्त मिलता था, वहां राज्य को प्रति गाँठ दस से बीस रजत तक मिल जाता था। चुन-बिनकर भेजी हुई ऊन पुरुषपुर में बहुत अधिक दाम पर बिकती थी। इस प्रकार छ मास में सर्दार की आय में लाखो रजत मासिक की उन्नति हो गयी।

इसका एक प्रभाव यह हुआ कि पुरुषपुर के व्यापारियो को भारी हानि होने लगी थी। पहिले वे स्वयं वदी-कुई जाते थे और स्वय माल खरीद कर लाते थे और स्वयं चुन-बिनकर पुरुषपुर की मंडी में ले जाकर बेचते थे। उनका यह सब काम बंद हो गया। उन्होंने काकूप के पास इस प्रथा की निन्दा की और ऐसा प्रकट किया कि काकूप के राज्य की आय कम हो रही है।

अत. काकूप ने एक पत्र द्वारा जुष्क को आज्ञा भेजी कि वह ऊन पर कर प्राप्त नहीं कर सकता। इसके उत्तर में करण ने सर्दार की ओर से काकूप को एक पत्र लिखा और उसमें काकूप की आज्ञा मान ली और लिखा—"मेरी प्रजा के अतिरिक्त, जो कोई भी यहां से आकर ऊन खरीदकर ले जायेगा, उससे कर नही लिया जायेगा। अपनी प्रजा से कर लेने का मेरा अधिकार है।"

इसके साथ ही किसानो को आज्ञा दे दी कि सर्दार स्वय सबकी ऊन खरीदेगा और नकद दाम देगा। जब पुरुषपुर के व्यापारी माल नही खरीद सके, तो वे पुन. काकूप के पास गये। काकूप ने पुनः जुष्क को लिखा।

करण ने समझ लिया कि अब झगड़ा होगा। इस कारण उसने

सर्दार से सब बात वर्णन कर दी। जुष्क का प्रश्न था—"इस झगडे से लाभ क्या होगा ?"

"आपका चक्रवर्ती राज्य स्थापित हो जावेगा।"

"युद्ध में हम जीत सकते है क्या ?"

"यदि आप एक बात कर सकें तो अवश्य हमारी जीत हो सकती है। आप अपनी प्रजा को सन्तुष्ट रखेंगे, तो जीत हमारी होगी।"

"काकूष के पास पाँच लाख सेना है। हमारे पास दस सहस्र है।"

"सेना तो छ मास में तैयार हो सकेगी। इस समय भी हमारी सेना अपनी शिक्षा से, नियन्त्रण से, और अस्त्र-शस्त्र के विचार से काकूष की एक लाख सेना के बराबर है। मै अगले छः महीने में सेना की सख्या पाँच लाख कर सकता हूँ, परन्तु इतने अस्त्र-शस्त्र इतने काल में तैयार नही हो सकते।

"एक बात और है। आप काश्मीर और देवलोक से गुप्त सधि कर सकते है। परिणाम यह होगा कि काकूष यदि कुछ भी झगडा करेगा, तो इन राज्यों की सहायता से आप उसको हरा सकते है।"

"ठीक ! इन राज्यो से सधि कैसे हो सकती है ?"

"इसकी कुजी आपके हाथ में है। इन्द्र से बातचीत करिये। वह आपकी सहायता पर तैयार हो जावेगा।"

"वह मेरा वन्दी है। मुझको इसकी आशा नही।'

"मुझको उनसे बातचीत करने की आज्ञा दीजिये, आशा करता हूँ कि मै इसमें सफल हूँगा।"

"तो करो।"

इस प्रकार करण इन्द्र से अधिकारसहित बात करने लगा। उसने इन्द्र से मिलकर गान्धार पर अपना प्रभाव उत्पन्न करने का उपाय वर्णन किया। उसने कहा—"जुष्क और काकूष का झगडा होने वाला है। इस झगडे से लाभ उठाना चाहिये। आप यदि जुष्क की सहायता करने का

वचन दें, तो न केवल आप स्वतन्त्र किये जा सकते है, प्रत्युत गान्धार ऐसे राजा के आधीन हो जावेगा, जो अपना मित्र होगा।"

इन्द्र उसकी योजना सुनकर हँस पड़ा और करण से कहने लगा— "तो यहाँ भी आप राजदूत बनकर आ गये है। नहुप गया तो अब जुष्क आ गया है ?"

"नही महाराज! मैं देवलोक की वर्तमान महारानी देवयानी की ओर से आपको छुडाने के लिये आया हुआ हूँ। जब देवलोक की महारानी शची जी आपको लिवाने के लिये आयी और वहाँ से नही लौटी तो काश्मीर की राजकुमारी देवयानी राज्य करने लगी है। मैंने उनकी सेवा कर ली है और उनकी आज्ञानुसार, मैं यहाँ गुप्त रूप से आया हुआ हूँ। राजकुमारी जी की यह इच्छा है कि यदि युद्ध के बिना आपको छुड़ाया जा सके तो बहुत अच्छा है। इस कारण मैंने यहाँ जुष्क की नौकरी कर, यहाँ की नीति को ऐसे ढंग से चलाया है कि जुष्क और काकूप के भीतर युद्ध छिडने ही वाला है। मैंने जुष्क के मन में यह बात बिठा दी है कि यदि आपसे उसकी मैत्री हो जावेगी, तो आप उसकी काकूप के विरुद्ध सहायता करेंगे।"

"म क्या सहायता कर सकता हूँ और फिर क्यो करूंगा ?"

"आप सहायता कर सकते है। आपके पास आग्नेय अस्त्र है। आप वह जुष्क को देकर गान्धार का राज्य पलट सकते है। ऐसा करने से सबसे बड़ा लाभ तो काकूप का राज्य, जो अवैदिक सस्कृति का प्रसार कर रहा है, विध्वस कर सकेंगे।"

"मैं आग्नेय अस्त्र किसी को नही दूंगा।"

"इसके बिना आपका छूट सकना भी असम्भव है। काश्मीर ने ब्रह्मावर्त के उद्धार में इतना धन और जन का व्यय किया है कि तुरन्त ही एक और युद्ध करना और उसमें सफलता प्राप्त करना उनके लिए

असम्भव है। आप यदि छूंगे नहीं तो देवलोक उजड जावेगा। इससे काश्मीर और ब्रह्मावर्त की स्थिति भी दुर्बल हो जावेगी। इस प्रकार अपनी वैदिक संस्कृति भूतल से विलुप्त हो जावेगी।"

इन्द्र इससे गम्भीर हो गया। अभी भी उसको विश्वास नहीं आ रहा था कि करण सत्य ही देवयानी की ओर से कह रहा है। इस कारण उसने कहा—"करण जी, अपके पास क्या प्रमाण है कि आप मुझको धोखा नहीं दे रहे ?"

"इस समय तो मेरे पास सिवाय सौगंधपूर्वक कहने के और कोई प्रमाण नहीं है। हाँ, यदि आप दो मास की बंदीगृह में और प्रतीक्षा करने के लिये तैयार हों तो मैं नारद जी का पत्र मंगवाकर दिखा सकता हूं।"

"तो ठीक है। आप यह पत्र मंगवा दीजिये या अपने स्वामी से कहिये कि मुझको छोड दें और मुझको देवलोक चले जाने दें। वहाँ जाकर मैं वहाँ की परिस्थिति देखकर सहायता भेज दूंगा।"

"यह भी हो सकता तो किया जा सकता था। आप जैसे श्रीमान् के वचन का प्रमाण न मानना अपनी बुद्धि पर अविश्वास करना है, परन्तु यह सम्भव नहीं। इस कारण कि ज्यों ही काकूष को पता चलेगा कि आपको छोड दिया गया है, वह अपनी पाँच लाख सेना से आक्रमण कर देगा और यहां की ईंट से ईंट बजा देगा। इस समय हमारी इतनी शक्ति नहीं, कि हम उसकी पाँच लाख सेना का विरोध कर सकें। हाँ, यदि आप अपने आग्नेय अस्त्रों को हमें दे दें, तो हम गान्धारों को परास्त कर सकेंगे।"

"मैं वह आग्नेय अस्त्र एक म्लेच्छ को नहीं दूंगा। यदि यह अस्त्र उसके पास चला गया तो वह पूर्ण संसार पर म्लेच्छ राज्य स्थापित कर देगा।"

'आप के पास भी तो यह चिरकाल से रखा है, रन्तु आपने तो ससार में अपना साम्राज्य स्थापित नही किया ?"

"परन्तु जो महत्वाकाक्षा तुमने उसमें उत्पन्न कर दी है, वह मुझमें किसी ने उत्पन्न नही की।"

"वह महत्वाकाक्षा तो आपके हित में है। जब गान्धार पराजित होगा और वहाँ पर उस राजा का राज्य स्थापित होगा, जो आपके अहसान के नीचे दबा होगा, तो हम सबको लाभ होगा। ययाति, जो जुष्क का नाती है, आज शुक्राचार्य से पढ रहा है। पढ-लिख कर वह म्लेच्छ नही रहेगा और वह कामभोज और गान्धार का अधिपति होगा। यह मानवहित की बात होगी।"

"इस पर भी इतनी भारी विनाशकारी शक्ति उक्त अपरिचित और अपरीक्षित व्यक्ति के हाथ में देने के लिए मुझको बहुत विचार करना पड़ेगा। तुमको पता होना चाहिए कि जब वह विमान, जिसमें शची कमल-सर-दुर्ग पर पहुँची और उसकी थोडी-सी भूल के कारण उसका पैंदा टूट गया, तो हमने यह विचार करके कि कही वह नहुष के सम्बन्धियो के हाथ न लग जाये, जला दिया।"

करण को यह एक दूषित मनोवृत्ति-सी लगी। उसके मन में आया कि ये लोग ज्ञान को ताले में बद कर रखना चाहते हैं। यही कारण है कि इनका पतन हुआ है। इस पर भी उसने इन्द्र को विचार करने का अवसर दे दिया।

"महाराज! हमारी योजना यह है कि यदि आप स्वीकार करें तो आपको मै चोरी-चोरी यहाँ से मुक्त कर अपने संरक्षको के साथ देवलोक में भेज सकता हूँ। वहाँ पहुँचकर आप जुष्क को अपनी रक्षा के लिए आग्नेय अस्त्र प्रदान करें। मैं भी आपके साथ चलूँगा। उस आग्नेय शस्त्र का प्रयोग बहुत सावधानी से किया जायेगा। अब आप इस बात पर विचार कर लें। जब आप निर्णय कर लें तो मुझे सूचित कर दें।

इसके अतिरिक्त भी मैं आपको छुडाने का यत्न करता रहूँगा। मैं आशा करता हूँ कि मैं सफल हो सकूंगा। परन्तु इस समय आपको बिना आपसे सहायता का आश्वासन लिए, छोड देने का अर्थ है पूर्ण कामभोज का विनाश।"

इन्द्र ने करुण की पूर्ण योजना शची को बताई। उसने तुरन्त कह दिया कि करुण पर विश्वास कर, अग्नेय अस्त्र दे देना चाहिये, परन्तु इन्द्र ने न तो न की और न ही हाँ।

(७)

वरुण ने जब पूर्ण अन्तर, अपने निवासस्थान और बदीगृह के बीच नाप लिया तो उसने घर के एक कमरे में से सुरग खोदनी आरम्भ करवा दी। अपने विश्वस्त बीस व्यक्ति एक-साथ काम पर लगा दिये। घर के भीतर के एक आगार में पहिले एक गढा लगभग बीस हाथ गहरा खोदा गया। उसमें उतरने के लिए सीढियाँ बनाई गईं। पश्चात् सुरग सीधी दीगृह की ओर खोदनी आरम्भ कर दी। जब सुरग दुर्ग की दीवार तक पहुँची तो उसको यह जान अचम्भा हुआ कि दीवार की नीव और भी अधिक गहरी है। इस कारण वहाँ पर सुरग और भी अधिक गहरी की गई। पश्चात् खुदाई दुर्ग के भीतर बदीगृह तक ले जाई गई।

इस खुदाई में एक मास से ऊपर लग गया। इस काल में वरुण ने, जहाँ तक बन सका, कमल से अपना सम्बन्ध घना बनाने के लिए उससे घर के भीतर मिलना आरम्भ कर दिया। साथ ही उसने प्रहरियों के नायक से भी मेल-जोल बढा दिया।

नायक प्राय नगर में दिल-बहलाने के लिए आता था। वरुण उसके आने की टोह में रहता था और उसके आने पर बहाना ढूँढ, उसके पास जा, उसको घर चलने का निमन्त्रण देता रहता था। घर ले जाकर

मठाई-फल आदि से उसका स्वागत करता था। ये दोनो वस्तुएँ नायक को पसन्द थी। इस कारण कुछ दिनो पश्चात् वह स्वयं ही उसके पास जाने लगा। इस पर भी उसके सत्कार में अन्तर नही पड़ा। अपना इतना हितेच्छु मान, नायक ने एक दिन वरुण से कह दिया कि आप तो मेरे मित्र हैं। मैं एक वात आपसे कह देना चाहता हूँ। मैं कमल से प्रेम करता हूँ। वह मेरे प्रेम को ठुकराती नही। परन्तु उसका फल अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। महारानी जा की जितनी भी सेविकायें है, वे सव किसी न किसी प्रहरी से प्रेम करती है। सव जानते है कि हम परस्पर प्रेम करते है। हम घटो बैठे वातें भी किया करते हैं; पर मेरे उसको छूते ही, वह भाग उठती है। यह कहती है कि अभी नही। धैर्य करूँ। अभी समय नही आया। एक वर्ष से ऊपर हो गया, जवसे वह मुझको टालती आ रही है। सुना है कि वह आपसे प्रम करने लगी है क्या यह ठीक है ? यदि नही तो मेरी उससे सिफारिश क दीजिये।"

"देखो नायक महोदय ! मेरा प्रेम एक और स्त्री से है। वह हमारे पड़ोस में रहती है और वह कमल से कहीं अधिक सुन्दर है। मेरे मन में कमल के लिए कुछ भी लगाव नही। वह आती है और महारानी के लिए फल-फूल ले जाया करती है। इससे अधिक मेरा उससे कोई सम्वन्ध नहीं। मै तुम्हारी इस विपय में सहायता कर सकता हूँ। पर तुम मुझे वताओ कि क्या तुम उससे विवाह कर लोगे ?"

"विवाह की वात तो कठिन है। मैं साठ वर्ष की आयु रखता हूँ। वह अभी सोलह-सत्रह वर्ष की है। हां, जव तक वह मुझे प्रसन्न करती रहेगी उसको मै अपना पूरा वेतन देता रहूँगा।''

वरुण ने मुस्कराकर कहा—"यह तो वहुत अच्छी वात है। इस प्रस्ताव को तो उसे मान जाना चाहिए।"

"हाँ ! भैया ! तुम समझाओगे तो वह समझ जावेगी। भगवान के नाम पर ऐसा कुछ करो कि वह मान जाये।"

अगले दिन जब कमल आई तो वरुण ने नायक की प्रार्थना का वर्णन कर दिया। इस पर कमल ने पूछा—"तो आप मुझको क्या कहते हैं ?"

"मैंने जो कहना था कह दिया है। मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। परन्तु मैं विवाह तो तभी कर सकूँगा, जब तुम सती-साध्वी बनकर मेरे पास रहना चाहोगी। मैं यह नहीं चाहता कि मेरी सन्तान को यह सन्देह हो कि उसका पिता कौन है ? उनको अपनी माता पर भरोसा और उसके चरित्र पर विश्वास होना चाहिए।'

"मैंने भी अपने मन में निश्चय कर लिया है कि विवाह करूँगी तो आपसे, नहीं तो किसी से भी नहीं करूँगी।"

"सत्य ! यह तो बहुत ही कठोर निश्चय है।"

"मेरा यह अन्तिम निश्चिय है। और कहो तो मैं आज ही सेवाकार्य छोड आपके पास आ सकती हूँ।"

"मैं एक दो महीनो के लिए अपने देश जाना चाहता हूँ। तुम क्या मेरे साथ चलोगी ?"

"हाँ ! मैं तैयार हूँ।"

"तो मेरा तुम्हारा विवाह वहाँ मेरे माता-पिता के सम्मुख होगा।"

"मुझको इससे बहुत प्रसन्नता है। मेरे माता-पिता नहीं हैं। वे तो उन्हें भी साथ ले चलती।"

"पर एक बात है।"

"क्या ?"

"तुम जानती हो कि मैं सर्दार की ओर से व्यापार करता हूँ।"

"हां।"

"इस कारण सर्दार नहीं चाहता कि मैं यहां से एक दिन के लिए भी जाऊँ। जाना आवश्यक है। इस कारण किसी दिन रात को चुपचाप यहां से चला जाऊँगा।"

"कैसे ?"

"वह तुमको बताऊँगा। मैं जाने की तैयारी कर लूँ। तब तक तुम किसी को कुछ मत कहना।"

कमल ने बात छुपाकर रखने का वचन दिया। इस दिन पहिली बार वरुण ने कमल को गले लगाकर आलिंगन किया और उसका मुख चूमा। कमल इससे अति प्रसन्न थी। और इस दिन वह अपने स्थान पर जाकर बीमारी का बहाना बनाकर लेटी रही।

इसके पीछे कई दिन तक वरुण नायक से बहाना बनाता रहा। आखिर एक दिन उसने कहा—"नायक ! वह मान तो गई है, परन्तु वह सन्तान होने से डरती है। इस कारण चाहती है कि विवाह हो जाये तो ठीक है।"

"कठिनाई मैंने बताई है। अगर वह एक साठ वर्ष के बूढ से बचना चाहती है तो मैं तैयार हूं।"

"आप उसकी क्यों चिन्ता करते हो ? जब वह बुद्धि की बात नहीं करना चाहती, तो आपको क्या ? जब तक चाँदनी है आनन्द-भोग करो। जब चाँद छुप जायगा तो जो जियेगा देख लेगा।"

"तुम ठीक कहते हो। मैं तैयार हूँ।"

"तो मैं विवाह की तिथि पूछकर निश्चय कर रखूंगा। देखो उससे कुछ कहना मत। उसे लज्जा लग जायेगी। तब तो वह मना भी कर सकती है।"

"आप निश्चिन्त रहिये मैं आपसे इतना प्रसन्न हूँ कि जैसा आप कहेंगे वैसा ही करूँगा।"

"ठीक है। शीघ्र ही तिथि निश्चित हो जायेगी। तब तक मैं विवाह का प्रबन्ध भी कर दूंगा।"

इस समय सुरग पूरी हो चुकी थी। गणना से सुरग का दूसरा किनारा बदीगृह की ड्योढी के नीचे पहुँच चुका था। पचीस हाथ की गहराई से सुरग ऊपर लाई गई और जब ड्योढी की भूमि से खुदाई चार हाथ रह गई तो बद कर दी गई।

इस पर वरुण ने योजना का तीसरा और अन्तिम चरण चलाया एक दिन निश्चय कर उसने दस खच्चरों पर ऊन लाद कर ले जाने का प्रबन्ध किया। नियमानुसार माल पर कर देना था और कर का बीचक बनवाकर जाना था। अँधी-कुईं के बाहर जाने के लिए यह बीचक द्वार पर दिखाना पडता था। प्राय माल लेकर खच्चरें प्रात काल सूर्योदय से दो-अढ़ाई मुहूर्त पहिले जाया करती थी।

एक दिन नियत कर उसने उस दिन खच्चरो पर माल लादकर ले जाने के लिए बीचक बनवा लिया। कर दे दिया। उस दिन उसने द्वारपाल को कह दिया कि वह माल शीघ्र ही भेजना चाहता है, इस कारण मध्यरात्रि से कुछ ही पीछे उसके आदमी जावेंगे।

यह स्वीकृति, जाने वाली रात्रि से पहिले दिन, मध्याह्न के समय मिल गई थी। इस पर उसने दस खच्चरो के स्थान पुष्ट तथा द्रुतगामी घोडे द्वार पर बँधवा लिए। दस सैनिक घुडसवार उसने मध्याह्न के समय ही गाँव से कुछ अन्तर पर भेज दिए। दस अश्व, जो द्वार पर थे, उन पर ऊन लादने के लिए गठरियाँ बाँध ली और साथ जाने के लिए केवल दो व्यक्ति तैयार किये।

जब यह प्रबन्ध हो गया तो तो उसने कमल को भी यह कह दिया कि वह मध्यरात्रि के समय उसको लेने आवेगा।

"कैसे?" कमल पूछ बैठी।

"यह मत पूछो। मैं निश्चय से कहता हूँ कि आवूंगा। तुम अपने

आगार में तैयार रहना। मेरे कहते ही चल पडना और मेरे पीछे-पीछे चली आना। रात को हम दुर्ग से और फिर नगरद्वार से निकल जायेंगे। सव प्रवन्ध है।"

"मुझको. कुछ समझ नही आ रहा।"

"देखो कमल ! वहुत सी वाते हैं, जिनको समझने का आवश्यकता नही होती। विश्वास कर लेना ही ठीक रहता है।"

"पर नायक का क्या होगा ?"

"उसका प्रवन्ध हो गया है। उससे मैंने कह दिया है कि ठीक मध्याह्न के समय, वह मेरे पडोस के मकान में आ जाये, जहां विवाह का प्रवन्ध रहेगा। वह दुर्ग-द्वार बन्द होने से पूर्व ही वहां से चला आवेगा।"

इस प्रकार सव कार्य याजनानुकूल कर लिया गया; परन्तु विधि ने कुछ और ही लिखा था।

: ८ :

करण इन्द्र से वातचीत कर वहुत निराश हुआ था। वह घर आया ता उसका मुख शोकग्रस्त देख सुमन से पूछा—"क्या हुआ है आज ?"

"मुझको जीवन की महानतम निराशा मिली है। मैंने इन्द्र से सर्दार जुष्क की सधि करानी चाही थी। इन्द्र ने स्वीकार नही किया।" करण ने वह सव वातचीत, जो इन्द्र से हुई थी, वतला दी। सुमन को भी विस्मय हुआ। इस पर उसने कहा—"मै जाकर महारानी शची से कहूंगी। सभव है कुछ कार्य वन सके।"

करण को आशा नही थी, परन्तु वह कर भी क्या सकता था ? वह इन्द्र तथा शची को छुड़ाना चाहता था, परन्तु वह समझता था कि यदि उनको चोरी-चोरी भगा दिया तो काकूप जुष्क के पूर्ण इलाके को

नष्ट-भ्रष्ट कर देगा। काकूष, इन्द्र और शची के वदले में ब्रह्मावर्त का वह भाग, जो सिंधु नदी और वितस्ता नदी के बीच में था, लेना चाहता था।

अगले दिन सुमन शची से मिलने गयी। उसने भी वताया कि उसका पति उनको छुडाने के लिये वहाँ ठहरे हुए है। और वर्तमान परि-स्थिति में तो जुष्क से संधि कर लेनी ही ठीक प्रतीत होती है।

शची ने उसको कहा—"सुरेश को अभी करणदेव पर विश्वास नही आया। मैं यत्न कर रही हूँ कि उनको समझा-बुझा कर सन्धि करने पर तैयार कर लुं। इस अन्तर में अपने पतिदेव से कहना कि नारद से अपने विषय में प्रमाणपत्र मँगवा ले तो ठीक रहेगा।"

करण ने शची के सुझाव को ठीक मान एक द्रुत गामी अश्व पर, एक विश्वस्त दूत को सब वृत्तान्त लिखकर देवलोक भेज दिया। दूत के लौटकर आने में दो मास से कम काल नहीं लगना था, परन्तु और कोई उपाय ही नही था।

उधर काकूष समीप था और उसके पत्र को रोका नही जा सकता था। अतएव करण ने वहुत ही विनम्र और विनीत भाषा में उसको पत्र लिखा। इस पत्र में उसने लिखा—"मैं इन आरोपो की जाँच करने के लिये तैयार हूँ। आरोप लगाने वाले व्यापारियो को अँधी-कुई भेज दीजिये, जिससे पता लग सके कि कौन अपराधी है, ताकि उसको दड दिया जा सके।"

जिस दिन यह पत्र पुरुषपुर में पहुँचा, उसी दिन वहाँ एक घटना घट गयी। वरुण के एक साथी ने पचास गाँठ ऊन वहाँ बेची थी। उनका मूल्य उसने व्यापारी से तुरन्त माँगा। व्यापारी ने दो दिन ठहरकर मूल्य देने को कहा। इससे झगडा हो गया। दोनो ओर से तलवारें निकल आयी। पुरुपपुर के व्यापारी ने समझा था कि कोई दास है। तलवार

देखकर डर जावेगा। वास्तव में वरुण का साथी काश्मीर-सैनिक था। इस कारण जब तलवार चली तो पहिले ही वार में व्यापारी का सिर धड से पृथक् हो गया। इस पर मंडी में भारी हल्ला हो गया। काश्मीर-सैनिक भाग खड़ा हुआ। इस घटना की सूचना जब काकूष को मिली तो वह आगबबूला हो गया। उसको यह बताया गया कि ऐसे लडाके जुष्क ने सैकड़ों एकत्रित कर रखे हैं।

काकूष ने यह आज्ञा दे दी कि पाँच सो सैनिकों के साथ एक सेना-नायक जाये और इस ऊन बेचने वाले को तथा जुष्क को पकड़कर मेरे सामने ले आवे। इस आज्ञा के अनुसार एक सेनानायक सेना की एक टुकड़ी के साथ जुष्क को पकडकर लाने के लिये चल पड़ा। इस सेना-नायक को यह भी आज्ञा दी गयी कि अँधी-कुंई में बंदी इन्द्र और शची को भी वहां से लेता आवे।

एक दिन अँधी-कुंई नगर के बाहर गान्धार-सैनिको ने डेरा डाल दिया। सेनानायक ने सेना के ठहरने का प्रबन्ध कर, जुष्क के पास सूचना भेजी। करण को जब यह सूचना मिली कि गान्धार से पाँच सौ सैनिक आये है तो वह सर्दार के पास गया और उसको बीमार बन लेट जाने की राय दी। सर्दार बहुत घबडाया, परन्तु अन्त कोई उपाय न देख वह लेट गया।

जब गान्धार-सेनानयक जुष्क को मिलने आया, तो करण मिला। करण ने बताया —"सर्दार बीमार है। आप बताइये क्या आज्ञा है ?" गान्धार-नायक ने बताया कि वह सर्दार के लिये गान्धार-नरेश से एक पत्र लेकर आया है। करण ने वह पत्र माँगा। बहुत आनाकानी के पश्चात् नायक ने वह पत्र करण को दिखा दिया। पत्र में लिखा था—

'सर्दार जुष्क ने ऊन पर ऐसा कर लगाया है, जिससे गान्धार राज्य को हानि पहुँच रही है। साथ ही सर्दार जुष्क ने ऐसे सैनिक बाहर से

मँगवाये हैं, जो लडने के लिये तैयार प्रतीत होते हैं। इस कारण मैं सर्दार जुष्क को यह आज्ञा देता हूँ कि वह अविलम्ब पुरुषपुर आ जावे और इन विषयो पर सफाई उपस्थित करे।"

करण ने सेनानायक को कहा कि सर्दार बीमार है। वह उठकर बैठ भी नही सकता। जब ठीक होगा तो वह आपके साथ चलेगा और पुरुषपुर जाकर महाराज का सदेह निवारण कर देगा।

"मैं स्वय उनसे मिलना चाहता हूँ।"

"तो आपके मिलने का प्रबन्ध कर देता हूँ।"

करण यह कह भीतर गया और सर्दार को पूर्ण परिस्थिति से अवगत किया। दोनो में यह ही निश्चय हुआ कि समयलाभ करना चाहिये। यह परामर्श कर करण सेनानायक को भीतर ले गया। सर्दार पलग पर लेटा हुआ था। उसके समीप करण और नायक चौकियो पर बैठ गये। व्यावहारिक बातचीत कर सर्दार ने कहा—"महाराज का आदेशपत्र पढ़ा है। मैं निर्दोष हूँ, इस कारण मुझको बहुत प्रसन्नता होगी कि मैं वहाँ जाकर महाराज के मन से मैल दूर करूँ। इधर कई दिनो से मेरी कमर में पीडा हो रही है। आज कुछ ठीक हूँ। एक-दो दिन में जाने लायक हो जाऊँगा, तो चलूंगा।"

"दोनो बन्दियो को भी मैं अपने साथ ही ल जाना चाहूँगा।"

"वे भी हमारे साथ चलेंगे।"

"मैं उनको अभी देखना चाहता हू ।

"करणदेव आपको वहाँ ले जावेंगे। वे सब प्रकार से ठीक हैं।"

"एक बात और है। मुझको तो आज्ञा थी कि मैं अविलम्ब आपको पुरुषपुर ले चलूँ, परन्तु जब आपका स्वास्थ्य ही ठीक नहीं तो मैं विवश हूँ। मैं एक बात चाहता हूँ कि आप अब दुर्ग से बाहर जाने का यत्न न करें। बाहर मैं अपने सैनिक बैठा दूंगा।"

"मुझे न तो भागने की आवश्यकता है और न ही मुझमें भागने की शक्ति है। आप निश्चिन्त रहें कि मै ठीक होते ही आपके साथ चल पड़ूंगा।"

सर्दार ने करण को आज्ञा दी कि नायक के दुर्ग में ठहरने का प्रवन्ध कर दे और सेना, जो दुर्ग के वाहर आय। है, उसके खाने इत्यादि का प्रवन्ध कर दे।

नायक का कहना था कि वह सेना के साथ ही रहेगा। हाँ, कुछ सैनिक दुर्ग के द्वार पर रख दिये जायेंगे।

इस भेंट के पश्चात् नायक ने इन्द्र और शची को देखने की इच्छा प्रकट की। करण उसको बन्दीगृह में ले गया। नायक ने काकूष की आज्ञा उनको भी सुना दी। उसने कहा—"आपको दो-तीन दिन में मेरे साथ चलना होगा।"

इन्द्र ने केवल यह कहा—"हम ता वन्दी हैं। जहाँ ले चलोगे, चलेंगे।"

इस प्रकार सव देख-भाल कर नायक ने बीस सैनिक दुर्ग के द्वार पर विठा दिये और अपनी सेना के शिविर में चला गया।

नायक के जाते ही करण ने दुर्ग में सैनिको को आज्ञा दे दी कि वे तैयार हो जावें। दुर्ग के वाहर छावनी में करण ने आज्ञा भेज दी कि सव छावनी में रहें। कोई सैनिक इधर-उधर न घूमे। साथ ही सव तैयार रहे कि आज्ञा पहुँचते ही उसका पालन हो सके।

इस प्रकार प्रवन्ध कर वह सर्दार के पास पहुँचा। उसने अपनी सम्मति वतायी—"आपको पुरुषपुर कभी नही जाना चाहिये। आप निश्चय जानिये कि वहाँ जाकर आप जीवित लौट नही सकेंगे। इस कारण मेरी सम्मति है कि इस नायक को वन्दी वना लेना चाहिये।

गान्धार-सेना को मृत्यु के घाट उतार देना चाहिये। और यहाँ से भाग-कर काश्मीर चला जाना चाहिये।"

"मैं भी कुछ ऐसा ही विचार कर रहा हूँ। एक बात मैं निश्चय नही कर सका। वह यह कि नायक और सेना की हत्या किये बिना भागूँ अथवा हत्या करके।"

"मेरी सम्मति तो यह है कि हत्याकाण्ड ऐसे चलाना चाहिये कि एक भी सैनिक वापिस पुरुषपुर न जा सके। मैं एक पत्र नायक की ओर से लिख दूंगा कि जुष्क को हृद्‌रोग है। उसकी चिकित्सा हो रही है और उसके ठीक होते ही सबको लेकर आ रहा हूँ। इस प्रकार हमको भागने अथवा आक्रमण का विरोध करने का अवसर मिल जावेगा। मैं एक बार फिर इन्द्र और शची से बातचीत करना चाहता हूँ। यदि वे मेरी बात मान गये और उन्होने आग्नेय अस्त्र दे दिया तो हम गान्धार का राज्य ययाति के लिए पा लेंगे।"

इस प्रकार करण जुष्क को समझाकर इन्द्र के पास गया। इन्द्र काकूष की आज्ञा पा चिन्ताग्रस्त बैठा हुआ था। शची अपने पति को समझा रही थी कि जब तक वे दूसरो की सहायता नही करते, तब तक कैसे दूसरो से सहायता की आशा करते हैं ? इन्द्र अनुभव कर रहा था कि अब निर्णय का समय आ गया है। जब करण आया तो उसने कहा—"देवराज, अब अधिक देरी करने का समय नही। यदि आप सहायता की आज्ञा दें, तो मैं इतना समय निकाल सकता हूँ कि आप देवलोक जाकर आग्नेय अस्त्र हमको भेज सकें।" इन्द्र मान गया। पश्चात् योजना के अन्य अगों पर भी विचार किया गया। इस विचार में जुष्क को भी सम्मिलित कर लिया गया।

: ६ .

यह वही दिन था, जिस दिन वरुण ने अपनी योजना के तीसरे अर्थात् अंतिम चरण का प्रयोग करना था। सब कुछ निश्चय हो गया था। वरुण ने जब सुना कि काकूष ने एक सेना भेजी है, जो जुष्क और बन्दियों को पुरुषपुरु ले जाने वाली है, तो उसने दृढ निश्चय कर लिया कि उसी रात ही उसकी योजना कार्यान्वित होगी। दुर्ग-द्वार पर गान्धार-सैनिकों को देख जहाँ वह डरा, वहाँ वह मुस्कुराया भी। उसकी योजना में वे सैनिक बाधा नही डाल सकते थे। वह नगरद्वार के बाहर भी गया। द्वार से कुछ बाहर गान्धार-सैनिको का शिविर था। इस कारण उसको अपने मार्ग में कुछ परिवर्तन करना पडा। दक्षिण द्वार के स्थान उसने उत्तर द्वार से निकलने का प्रबन्ध कर लिया। उसने द्वारपल को समझा दिया कि वह अपना माल लेकर गान्धार-सैनिको के समीप से नही जाना चाहता। वे इसको लूट लेंगे। साथ ही उसने मार्ग पर प्रतीक्षा करने के लिए पहिले दस साथी भेज दिये थे।

इस प्रकार यह प्रबन्ध कर उसने बन्दीगृह के प्रहरियो के नायक को कहला भेजा कि विवाह का प्रबन्ध पूर्ण है। प्रहरीनायक प्रसन्न था। उसकी चिन्ता यही थी कि कही द्वार पर रोक न लिया जावे। इस कारण अपने अधीन एक को यह कहकर कि वह रात को कही काम पर जा रहा है, सायंकाल से पूर्व ही दुर्ग से बाहर निकल जाने को तैयार हो गया। जब जाने लगा तो उसकी दृष्टि कमल पर पड़ी। वह आज काम में इतनी व्यस्त थी कि बार-बार शची के आगार में आ-जा रही थी। इस कारण जब उसने कमल को देखा, तो मुस्कराकर उससे पूछने लगा—

"कमल!"

"हाँ।"

"तुम प्रसन्न हो ?"

"बहुत श्रीमान् !"

"आज वरुण से मिली हो ?"

"हाँ।"

"वह बहुत अच्छा आदमी है।"

"हाँ ! परन्तु श्रीमान् मुझको इस समय बहुत काम है। रात को आपसे मिलकर शेष बात करूँगी।"

"ठीक है। ठीक है। मैं समझता हूँ। मूर्ख नही हूँ।" इतना कह मन में सतोष अनुभव कर दुर्ग के बाहर चला आया।

सूर्यास्त से पूर्व ही वह वरुण के गृह में जा पहुँचा। वरुण उसको देख डर गया। उसने समझा कि कोई विघ्न आ पडा है। परन्तु नायक ने बताया—"द्वार पर गान्धार बैठे हैं। इस कारण यह विचार कर कि रात को शायद वे न आने दें, अभी चला आया हूँ। पर कमल का क्या होगा ?"

वरुण को यह सुन सतोष हुआ। उसने बताया—"कमल की चिन्ता न करें। उसके बाहर आने का प्रबन्ध मैंने कर लिया है।" पश्चात् वह नायक को निश्चित मकान के निश्चित आगार में ले गया। वहाँ उसको बैठाकर वरुण ने कहा—"मित्र ! यहाँ बैठो। मै बाहर से द्वार बद कर जाता हूँ, जिससे आपको वहाँ बैठा हुआ कोई देख न ले। जब कमल आएगी तो कमल के साथ आपको विवाहमडप में ले चलूँगा।"

इतना कह वरुण सब प्रकार से तैयार हो सुरग-द्वार पर बैठा समय की प्रतीक्षा करने लगा।

अभी रात्रि एक प्रहर भी व्यतीत नही हुई थी कि दुर्ग में भारी हल्ला हुआ। वह दुर्ग के द्वार पर यह जानने गया कि क्या हो रहा है।

परन्तु द्वार वन्द था और भीतर बहुत चीख-पुकार मच रही थी। इस समय उसने देखा कि नगर के वाहर, जहाँ गान्धार-सेना का शिविर था, आग भड़क उठी है। वरुण समझ गया कि गान्धार और सर्दार की सेनाओ में युद्ध छिड़ पड़ा है। वह सर्दार की सेना की शक्ति जानता था। इससे उसको विश्वास था कि गान्धार-सैनिको का विध्वंस हो जावेगा। इस हलचल के समय उनकी योजना का चल सकना कठिन था। इस कारण वह शान्ति हो जाने की प्रतीक्षा में भीतर की टोह लेने लगा। यह हलचल शीघ्र ही वन्द हो गयी। मध्यरात्रि होते-होते दुर्ग में सव शान्त हो गया। इस समय दुर्ग के भीतर से शव निकलने आरम्भ हो गये और नगर के वाहर ले जाये जाने लगे। वरुण ने इस अवस्था को अपनी योजना के लिये सर्वथा अनुकूल समझा। इस कारण वह दस साथियो को लेकर सुरग में घुस गया। उसने पूर्ण सुरंग में थोड़े-थोड़े अंतर पर दीपक जला दिये थे, जिससे भागते हुए वापिस आने में कठिनाई न हो।

सुरग वदीगृह की ड्योढी के नीचे तक खोदी जा चुकी थी और मिट्टी का लगभग दो हाथ मार्ग खोदना शेष था। इस मिट्टी के ऊपर ड्योढी की पक्की भूमि थी। वह देखते-देखते खोद डाली गयी। इस समय जव सुरंग ड्योढी में खुल रही थी, सव अपनी-अपनी तलवारें नगी कर खडे थे जिससे यदि कोई उनको देख ले और उन पर आक्रमण कर दे. तो उसका विरोध किया जा सके।

भूमि खुद गयी और ड्योढी में ऊपर जाने तक मार्ग खुल गया। ऊपर अँधेरा था। छिद्र में से सवसे पहिले वरुण ने सिर निकाला। उसने चारो ओर दृष्टि दौडाई। उसे घटाटोप अँधेरा दिखाई दिया। वह लपककर छिद्र के वाहर हो गया। वहाँ किसी मनुष्य का चिह्नमात्र भी नही था। वरुण ने सुरग में खड़े साथियो को सकेत किया तो वे एक-

एक कर बाहर आ गये । सब चोरी-चोरी दबे पाँव बंदीगृह के ऊपर चले गये ।

वरुण के विस्मय का ठिकाना नही रहा, जब उसने देखा कि पूर्ण गृह खाली है । वहाँ न तो कोई प्रहरी था, न कोई दासी । इस पर भी वह तीसरी छत पर जा पहुँचा । वहाँ उन आगारो को, जिनमें इन्द्र और शची थे, ताले लगे हुए थे । वह वहाँ पर ही विचार करने ठहर गया । पहिला विचार उसके मन में यह आया कि वह किसी दूसरे मकान पर चढ आया है । उसने भागते हुए नीचे आ ड्योढी में खडे हो फिर बाहर से उस गृह को देखा । यही बदीगृह था । ऐसा विश्वास कर, दूसरा विचार उसके मन में यह आया, कि गान्धारो के साथ युद्ध में इन्द्र वहाँ से निकल किसी अन्य स्थान में ले जाया गया है । इसके साथ ही उसके मन में यह भी विचार आया कि शायद उनका भेद खुल गया है । कमल ने कुछ बात बता दी हो, जिससे इन्द्र और शची की रक्षा के लिये उनको वहाँ से हटा दिया गया हो । इस विचार के आते ही एक बात उसके मन में आयी कि उसकी पूर्ण योजना विफल गयी है और उसको अपनी जान बचाने के लिये यहाँ से भाग जाना चाहिये । इस विचार के आते ही उसने अपने साथियो को सकेत किया और सब के सब सुरग में से भागते हुए इसके दूसरे द्वार पर जा पहुँचे । वहाँ वरुण ने एक क्षण तक विचार कर, अपने साथियो को कहा—"यह सुरग छुपी नही रह सकती । इस कारण हमारा इस नगर में रहना सुरक्षित नही । सब लोग इन घोडो के साथ द्वार के बाहर निकल जावो और सूर्य निकलने से पूर्व जितना अधिक से अधिक अतर अपने और अँधी-कुई में पड सके, कर लो ।"

इस प्रकार निश्चय कर सब खच्चरो पर ऊन की गाँठें लाद, नगर के उत्तरी द्वार से निकल गये । माल ले जाने की स्वीकृति होने से

किसी ने वाधा खडी नही की। नगर से कुछ दूर जा ऊन की गाँठें उन्होने घोडो और खच्चरो से उतार, उन पर स्वयं सवार हो उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ उनके साथी प्रतीक्षा कर रहे थे।

वहाँ जाकर उन्होने जल्दी-जल्दी में विचार किया, और सव साथियो को काश्मीर सीमा की ओर भेजकर, वरुण स्वयं छुपकर नगर को लौट पडा। जव उसके साथी काश्मीर की सीमा की ओर चले गए तो वह नगर की ओर जाने के स्थान कापिश का ओर चला गया। कापिश में वह कुछ दिन रहा।

इस काल में उसने अपनी डाढी-मूँछ वढा ली और पहिरावा वदल पुन. अँधी-कुई में लौट आया। वह नगर के वाज़ार में दो-चार वार इधर से उधर घूम गया। इसमें उसके कई परिचित आते-जाते मिले। पर किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। इससे उसके मन में विश्वास हो गया कि उस भेष में उसको कोई नही पहिचानेगा। इस प्रकार कुछ निश्चिन्त हो वह एक निर्धनो के मुहल्ले में एक मकान भाडे पर लेकर रहने लगा। वहाँ रहते हुए उसने सव कुछ, जो पता चल सका, जान लिया।

अव उसको लोगो से उस रात की घटना का ज्ञान हुआ। जव गान्धार-सेनानायक रात का भोजन करने सर्दार के घर पहुँचा, तो उसके साथ पचास सैनिक थे। वे सव सर्दार के प्रासाद के वाहर एक वड़े मैदान में खडे कर दिये गये और नायक अकेला भीतर ले जाया गया। सेहन में भलीभाँति प्रकाश किया गया था। नायक को भीतर ले जाकर एक वडे आगार में, जहाँ जुष्क और करण उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे, खड़ा कर दिया गया। करण ने आगे वढ़कर उसका स्वागत किया और उसको ले जाकर उच्च आसन पर विठाया। जो लाग नायक को लेकर आये थे, वे वाहिर चले गये और उस आगार के द्वार

वद कर दिये गये। इस समय नायक का ध्यान वातो में लगाने के लिये करण ने कहा—"आप महाराज के प्रतिनिधि है। इस कारण हम आपका सम्मान महाराज की भाँति ही करना चाहते हैं।" ज्यो ही नायक उस आसन पर बैठा, सर्दार ने अपनी तलवार खैंच ली और पूर्व इसके कि नायक इसका अर्थ समझ सके, उसका सिर धड से पृथक् कर दिया गया। इसके होते ही प्रतिहार ने तुर्री बजा दी। वाहर खडे गान्धार-सिपाहियो ने समझा कि भीतर नायक ने भोजन आरम्भ कर दिया है। इस कारण वे विश्रान्ति के भाव में खडे हो गये। इस समय प्रासाद के चौतरे, खिडकियो और छत पर से तीरो की वर्षा होने लगी। इस वर्षा से गान्धार घायल होकर चीखने कराहने लगे। जब प्रायः सब के सब घायल हो गये तो एक ओर से सशस्त्र सैनिक निकल आये और उन्होने वचे हुओं का काम तमाम कर दिया।

दूसरी ओर वे सैनिक, जो शिविर में रह गये थे, घेर लिय गये। शिविर को आग लगा दी गई और वहाँ से भागते हुए सैनिकों को उठा-उठाकर आग में फेंक दिया गया। यह ताडव एक प्रहर रात बीतने से आरम्भ हुआ और मध्यरात्रि से पूर्व तक चलता रहा।

इस सब वृत्तान्त के जानने पर भी वरुण, इन्द्र और शची के विषय में कुछ नही जान सका। पूछ-ताछ पर केवल एक बात उसको पता चली कि ऊन का ठेकेदार वरुण बहुत ही बदमाश व्यक्ति निकला है। उसने अपने घर के भीतर से दुर्ग के अन्दर तक सुरग लगाकर इन्द्र की एक सेविका कमल के अपहरण का यत्न किया था। इस यत्न में वह असफल रहा। कमल उससे पूर्व ही दुर्ग से चली गई थी।

वह जानने का यत्न करता रहा कि कमल कहाँ चली गई है, परन्तु कोई नही जानता था। इन्द्र के विषय में भी कोई कुछ नही जानता था। एक बात थी। करण भी उसी रात से लापता था और करण का कार्य सर्दार स्वय देख रहा था। इसका अर्थ वरुण यह

समझा था कि करण इन्द्र और शची को लेकर कही चला गया है। शायद वह वदियो को लेकर काकूष के पास गया हो। अथवा उनको किसी अन्य दुर्ग में वदी के रूप में रखने चला गया हो।

एक वात उसने और देखी। सर्दार सेना की तैयारी में लगा है। सेना में धनुर्विद्या और खड्ग चलाने का अभ्यास वेग से चल रहा है। सर्दार गाँव-गाँव में घूम-घूमकर लोगो को सेना में भर्ती कर रहा है। इस सव परस्पर विरोधी समाचारो के कारण वह किसी परिणाम पर पहुँच नही रहा था।

इस समय एक दिन एक विषेष घटना घटी। वह अपने घर में बैठा प्रातः का भोजन कर, अपने विचारो के विश्लेषण में लगा था कि घर के वाहर शोर मचा। उसके कान खड़े हो गए। जव कुछ समझ नही सका, तो वह उठकर वाहर चला आया। जव वाजार में पहुँचा तो लोगो को भयभीत इधर-उधर भागते देख, विस्मय में पूछने लगा—"क्या हुआ है ?"

एक भागते हुए ने आकाश की ओर उँगली की, परन्तु उसके मुख से कुछ नही निकला। वरुण खुले मैदान में पहुँच आकाश की ओर देखने लगा। दूर पूर्व की ओर एक श्वेत बिन्दुमात्र कोई वस्तु धीरे-धीरे इस ओर आती दिखाई दे रही थी। पहिले तो वरुण भी नही समझ सका कि यह क्या है, परन्तु जव वह वस्तु कुछ समीप आई, तो वह समझ गया कि यह विमान है। उसने विमान पहिले कभी नही देखा था, परन्तु पुस्तको में पढ़ने से वह समझ गया था। इस वात को समझते ही उसके मस्तिष्क में आया कि यह विमान अवश्य इन्द्र के सम्वन्ध में आया है। इस कारण न्द्र का रहस्य जानने के लिए वह विमान के भूमि पर उतरने के स्थान पर जाने का विचार करने लगा। जव विमान अंधी-कुंई के ऊपर आ गया, तो उसके मन में विचार आया कि यह

अब अवश्य दुर्ग के भीतर मैदान में उतरेगा। इस कारण वह दुर्ग द्वार की ओर चल दिया। जबसे गान्धार-सैनिकों की हत्या हुई थी, तबसे दुर्ग का द्वार बद रहता था, परन्तु आज द्वार खुला था। प्रहरी सब भाग गए थे। द्वार पर एक क्षणभर ठहर वरुण भीतर चला गया। सर्दार और उसके परिवार के लोग प्रासाद के झरोखे में खड़े विमान को उतरते देख रहे थे। कुछ सैनिक इधर-उधर भाग रहे थे। एक सैनिक ने वरुण से कहा भी—"क्या मरना चाहते हो, जो यहाँ खड़े देख रहे हो ? भाग जाओ।"

वरुण मुस्करा दिया। जब लोग घरों के भीतर छुपने के लिए भाग रहे थे, वरुण ने देखा कि एक स्त्री अपने दो बच्चों को साथ लिए सर्दार के प्रासाद के पिछवाड़े के एक घर से निकली और दुर्ग के भीतर मैदान की ओर चल पड़ी। वह बार-बार आकाश में उतरते विमान की ओर देख रही थी। वरुण समझ गया कि यह स्त्री विमान के विषय में जानती है। इससे वह उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। दुर्ग के एक पार्श्व में खुला मैदान था, जहाँ दुर्ग में रहने वाले सैनिक व्यायाम करते थे। यह स्त्री उस स्थान पर जाकर एक ओर ठहर गई। इस समय विमान ठीक उस स्थान के ऊपर आकाश में आकर ठहर गया। वह स्त्री बच्चों को, जो उसके दोनों ओर खड़े थे, उँगली से संकेत कर विमान दिखा रही थी।

वरुण उस स्त्री के पीछे जाकर खड़ा हो गया और अत्यन्त आदर पूर्वक पूछने लगा—"देवी ! तुम देवलोक की रहने वाली प्रतीत होती हो ?"

वह स्त्री सुमन थी। उसके साथ माणिक्य और परा थे। वरुण के प्रश्न से वह प्रश्नभरी दृष्टि से उसकी ओर देखन लगी। पश्चात उसने पूछा—"तुम कौन हो ?"

"देवताओं का एक सेवक। यह विमान किस लिए आया है ?"

सुमन ने उत्तर देने के स्थान पुनः पूछा—"किसके सेवक हो तुम ?'

"बिना जाने कि किससे बात करने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है, मैं कैसे बता सकता हूँ। मान लीजिए कि मैं महारानी देवयानी का सेवक हूँ, तो क्या आप समझ सकेंगी ?"

"क्यों नहीं ! मैं उन्हें जानती हूँ। तो तुम देवता हो ?"

"देवी, नहीं। मैं काश्मीर-निर्वासी हूँ। क्या मैं जान सकता हूँ कि यह विमान देवराज इन्द्र और उनकी पत्नी को लेने आया है ?"

सुमन ने मुस्कराते हुए कहा—"मित्र ! प्रतीक्षा करो। सब कुछ मालूम हो जायेगा।"

इस समय सर्दार और उसकी पत्नी और उनके साथ कुछ अन्य उच्च कर्मचारी भी प्रासाद से निकल, मैदान के एक ओर आकर खड़े हो गए।

वरुण अब भी चुपचाप सुमन के पीछे खड़ा था। सर्दार की पत्नी और लड़की सुमन के समीप आ गई। इससे वरुण उनसे कुछ दूर जाकर खड़ा हो गया।

विमान का धीरे-धीरे मैदान में उतरना आरम्भ हो गया था। सर्दार को वहाँ देख कुछ और लोग भी साहस धारण कर वहाँ आ खड़े हुए। ज्यों ही विमान भूमि पर टिका, विमान का द्वार खुला, और सबसे पहिले इन्द्र उतरा। सर्दार उसके पास गया और उससे गले मिला। वह इन्द्र से बातें करता हुआ, उसको एक ओर ले गया। वरुण ने इन्द्र को दूर से ही, जब वह छत पर भ्रमण करता था, देखा था। इस पर भी वह पहिचान गया। इन्द्र के पीछे करण निकला और तीन अन्य व्यक्ति उतरे।

करण को उतरते देख, सुमन बच्चों को ले उसके पास पहुँची और चरणस्पर्श कर खड़ी हो गई। करण ने बच्चों को उठाकर गले लगाया। वे उसकी गर्दन के साथ लटक रहे थे। बच्चों को प्यार कर

करण ने उन्हे भूमि पर खडा कर दिया और सर्दार के पास जा झुककर प्रणाम किया और उसके पास खडा हो गया।

सुमन पुन' अपने स्थान पर पीछे हटकर खडी हो गई। इस समय तक वरुण मब कुछ समझ गया था। अतएव वह सुमन के समीप पहुँच अपने अनुमान का समर्थन कराने के लिए पूछने लगा—"देवी ! तो देवराज इन्द्र यहाँ से मुक्त हो देवलोक चले गये थे और अब वहाँ से आ रहे हैं ?"

"हाँ ! आप ठीक समझे हैं। पर आप हैं कौन ?"

"अब तो मैं आपके विषय में भी जान गया हूँ। मैं महारानी देवयानी द्वारा यहाँ सुरेश और महारानी शची को मुक्त कर, भगा ले जाने के लिए भेजा गया था। मैंने यत्न किया था, परन्तु देरी से पहुँचा। मुझको यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि वे अपने देश में चले गये थे। अब मैं निश्चिन्त हो वापिस जा सकूँगा।"

"आप तनिक ठहरिये। क्या नाम है आपका ?"

"वरुण।"

"ओह ! कमल को भगाने के लिए सुरग खोदने वाले ?"

"नहीं, देवी ! कमल को नही ! वह सुरग तो देवराज इन्द्र और महारानी शची के लिए थी।"

"सत्य ?" सुमन आश्चर्यपूर्वक वरुण का मुख देखती रह गई।

वरुण ने कहा—"जव हम सुरग, पूर्ण कर, बदीगृह में पहुँचे तो वदीगृह खाली हो चुका था।"

वात सुमन की समझ में आ गई। वह उसको ठहरने को कहकर पुनः वच्चो को साथ ले करण के पास चली गई। करण उस समय सर्दार को वता रहा था—"हम वहुत से आग्नेय अस्त्र ले आये हैं और शीघ्र ही हम गान्धार और कामभोज पर अपना अधिकार जमा लेंगे।"

सर्दार इस सूचना से अति प्रसन्न था। वह पुनः इन्द्र को हाथ जोड धन्यवाद करने लगा। इन्द्र उस समय सर्दार की लड़की से बातें कर रहा था।

करण को अकेला देख सुमन ने कहा—"देखिए वह व्यक्ति कहता है कि महारानी देवयानी ने उसको देवराज को छुड़ाने के लिए यहां भेजा था। वह कौन हो सकता है ?"

करण ने घूमकर देखा और पश्चात् उँगली से सकेत कर वरुण को समीप बुला लिया। जब वह पास आया तो पूछने लगा—"तुम वरुण हो क्या ?"

"हाँ श्रीमान् !"

"ऊन के व्यापारी ?"

"हाँ श्रीमान् !"

"कमल के प्रेमी ?"

"श्रीमान् !"

"इधर आओ !" वह वरुण को लेकर इन्द्र के पास चला गया। इन्द्र से वरुण की ओर सकेत कर बोला—"महाराज ! यह है आपकी कमल का प्रेमी। विक्रमदेव का मित्र वरुण।"

इन्द्र ने उसकी ओर ध्यान से देखकर कहा—"तुम मेरे साथ देवलोक चलोगे। तुम्हारी प्रेमिका वहाँ तुम्हारे विरह में व्याकुल हो रही है।"

(१०)

जब इन्द्र और शची घोडो पर बैठकर भागते हुए अमरावती पहुँचे, तो भारी हलचल मच गई। उनके आने की सूचना किसी को नहीं थी। कुछ दिन हुए वरुण का पत्र विक्रम के नाम आया था। उसमें उसने यह

लिखा था कि उसकी सुरग तैयार है और उचित रात्रि को वह अन्तिम यत्न करेगा। पश्चात् कोई सूचना नहीं आई थी। कोई समाचार न आने के कारण नारद ने समझा कि कोई दुर्घटना हो गई होगी। एकाएक एक दर्जन के लगभग अश्वारोही अपने घोडो को सरपट दौडाते हुए अमरावती में प्रविष्ट हुए। तब मार्ग में चलते हुए किसी ने अश्वारोहियो में सबसे आगे इन्द्र और शची को पहिचान लिया और उसने जयघोष कर दी। इससे मार्ग पर चलते हुओं का ध्यान उनकी ओर चला गया। विद्युत् की भाँति यह समाचार नगर में फैल गया और जब तक अश्वारोही मडी में पहुँचे, वहाँ सहस्रो की भीड एकत्रित हो गई। भीड ने मार्ग रोक लिया और विवश अश्वारोहियों को घोडे रोकने पडे। जनता ने अपने राजा और रानी को पहिचाना और उनकी सवारी निकाल ली। इन्द्र और शची के साथ अन्य लोग करण और सर्दार जुष्क के सैनिक थे।

गगनभेदी जयघोष के भीतर इन्द्र भीड से घिरा हुआ अपने भवन की ओर चल पडा। नगर के लोग इन जयघोषो को सुनकर घरो से निकल दर्शन करने के लिए भवन की ओर भागे।

भवन में रहने वालो ने नगर में जयकारो का नाद सुना और विस्मय में एक-दूसरे का मुख देखने लगे। सेवक कारण जानने के लिए भेजे गए और जब महाराज और महारानी के आने का समाचार मिला तो देवयानी और विश्रम्भ तथा अन्य लोग स्वागत के लिए बाहर निकल आये।

उस दिन और रात दर्शन करने वालो का ताँता लगा रहा। प्रति दो घडी में भवन के बाहर का मैदान भीड से भर जाता था और महाराज और महारानी को भवन के छज्जे में आना पडता और जनता को दर्शन देने पडते।

दो दिनो की भेंटो और स्वागत-समारोहो के पश्चात् निश्चिन्त होकर विचारने का अवसर मिला और ब्रह्मा, नारद, विक्रम और देवयानी विचार-विमर्श करने लगे। इस समय करण को पता चला कि कमल, जिसको शची अपने साथ ले आई थी, एक वरुण नाम के काश्मीरी के लिए व्याकुल हो रही है और वह वरुण विक्रम का मित्र है, जो इन्द्र को छुडाने का यत्न कर रहा था। सुरग की कथा का भी, जब विक्रम से उसको पता चला तो उसे आश्चर्य हुआ।

इन्द्र के जुष्क को आग्नेय अस्त्र देने की सबने सराहना की। ब्रह्मा ने अपनी राय दी कि काकूष का नाश होना ही चाहिए और उसके नाश का उपाय इससे सुगम और कोई नही।

तीसरे दिन इन्द्र ने भवन के भूगर्भस्थित आगारो से आग्नेय अस्त्र निकलवाये और दस की सख्या मे वे एक विमान में रख दिए। पश्चात् इन्द्र, करण और दो अन्य सेवक अँधी-कुई के लिए चल पडे। जाने से पूर्व विक्रम ने करण से वरुण को ढूंढकर वापिस भेजने का आग्रह किया।

जब इन्द्र वरुण को लेकर लौट आया तो देवयानी और विक्रम ने काश्मीर लौट जाने की इच्छा प्रकट की। इन्द्र की इच्छा थी कि वे कुछ काल और वहाँ रहे, जिससे उसको उनकी सगत का और अधिक फल मिल सके, परन्तु उन्होने कहा कि इस कार्य के लिए वे फिर कभी आवेंगे।

विक्रम और देवयानी ने देवलोक के उद्धार के लिये महान् प्रयत्न किया था और सब लोग इस बात को जानते थे। इस कारण उनके जाने से सबको दुःख हो रहा था। उनके डेढ वर्ष के राज्य में देवताओ में नए उत्साह और विचारों का प्रादुर्भाव हुआ था और देवलोक के वातावरण में भारी अन्तर पड़ा था। पितामह ब्रह्मा उनसे अत्यन्त

प्रसन्न थे और चाहते थे कि वे काश्मीर में न जाकर देवलोक में ही निवास करें।

इस पर विक्रम ने आदिकवि वाल्मीकि के एक श्लोकाश को सुना दिया —

"जननीजन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।"

ब्रह्मा यह सुनकर हँस पडा।

इस समय ब्रह्मा इन्द्रभवन के एक आगार में, जिसमें वह ठहरा हुआ था, बैठा था। इन्द्र, शची, नारद आदि भी बैठे थे। विक्रम देवयानी के साथ एक ओर बैठा हुआ ब्रह्मा से विदा माँगने आया था। जब "जननी जन्मभूश्चि•••" श्लोक कहने पर ब्रह्मा हँसा तो विक्रम ने कहा—"पितामह! मेरे विचार से इसमें हँसने की बात नही।"

"मैं कहता हूँ कि मैं जानता हूँ और तुम नही जानते। तभी तुम ऐसा समझते हो। कठिनाई यह है कि यदि मैं पूर्ण कथा वर्णन करूँ तो तुम विश्वास नहीं करोगे। सो रहने दो और इस हँसी को बूढ़े के मस्तिष्क का भ्रम मान भूल जाओ।"

"नहीं बाबा!" देवयानी ने बात काटते हुए कहा—"हम इस प्रकार नही मानेंगे। आप हमें निर्बोध बालक मान यहाँ से भेज रहे हैं। मैं समझती हूँ कि हमने कुछ संसार देखा है और हम समझने की शक्ति भी रखते हैं। जब कोई समझता है तो विश्वास भी करता है।"

"बहुत सुन्दर बेटी! परन्तु जब कोई ज्ञान की बात अपने प्रयास से प्राप्त होती है तो उसका मूल्याकन होता है। बिना यत्न के जब ज्ञान की प्राप्ति होती है तो उसको मूल्यवान् नही माना जाता।"

"इसका अर्थ तो यह हुआ कि आप द्वारा इंकित रहस्य को जानने के लिए हमें तपस्या करनी होगी। खैर, हम भी धूनी रमाकर आपके

द्वार पर जम जावेंगे और आमरण उपवास कर देंगे। तब क्या हम इस योग्य हो जावेंगे कि जो ज्ञान की बात आप बतावेंगे, उसका मूल्य आंक सकें ?"

"पर तुम सन्तोष से प्रतीक्षा क्यों नहीं करती ? प्रत्येक बात अपने समय पर नियमानुसार प्रकट होती रहती है।"

"यही तो हम मानवों में और आप देवताओं में अन्तर है। आप दीर्घजीवी हैं और धैर्य से प्रतीक्षा करते हैं। हम जानते हैं कि हमारा कठिनाई से सौ वर्ष का जीवन है। इसका बहुत-सा अंश बड़े होने में और सन्तानोत्पत्ति में व्यतीत हो जाता है और जब कुछ समझने का समय आता है तो हम बूढ़े हो जाते हैं। हमारे पास जीवन की गहराइयों तक पहुँचने का समय ही कहाँ है ?"

ब्रह्मा इससे गंभीर विचार में पड़ गया। कुछ विचारोपरान्त बोला—"तुम सत्य कहती हो देवयानी ! मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी त्रुटि यही है कि यह बहुत छोटा है। अच्छी बात है, यदि तुम आग्रह करती हो तो बताता हूँ। सम्भव है यह रहस्य तुमको अपने भावी जीवन-निर्माण में सहायक हो सके।"

: ११ :

ब्रह्मा ने आँखें मूंद लीं और धीरे-धीरे एक कथा वर्णन करने लगा। ऐसा प्रतीत होता था कि वह अपनी अन्तरात्मा की किसी अन्तरतम कन्दरा से टटोल-टटोल कर उसे निकाल रहा हो।

उसने कहा—"लो सुनो ! अनन्त काल से एक विवाद चला आ रहा है। वह है इस संसार की उत्पत्ति के विषय में। यह विवाद मनुष्य जाति के अन्त तक चलेगा। आत्मा तथा प्रकृति का अनादिपन इस विवाद की दो धुरियां हैं। अन्तिम निर्णय कि आत्मा और प्रकृति का क्या सम्बन्ध है और वह सम्बन्ध कैसे बनता है, अथवा ये दोनों स्वयं

भी कुछ हैं या केवल माया रूपी हैं, कभी नही हो सकेगा। इस पर भी एक बात तो स्पष्ट है कि एक प्राणी का जीवन उसके भौतिक शरीर के साथ अन्त नहीं होता। शरीरान्त के पश्चात् भी यह चलता रहता है। जिसकी दृष्टि इतनी तीक्ष्ण है कि वह शरीर के बाहरी आवरण को भेद कर भीतर देख सकता है, वह जीवन के चालू रहने का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। वह पुरुष न केवल अदृश्य लम्बे जीवन का ज्ञान प्राप्त कर सकता है, प्रत्युत वह उस अन्तरात्मा की रूपरेखा भी जानकर उसको पहचान लेता है। और उसको यह बात निर्मल जल की भाँति स्पष्ट हो जाती है कि इस परिवर्तनशील बाहरी कलेवर के भीतर कौन सी रूपरेखा वाली आत्मा बैठी है।

"ऐसी दिव्य दृष्टि से युक्त मनुष्य को अपने बाहरी शरीर पर अथवा उसकी देश, काल तथा अवस्था पर मोह करते देख हँसी ही तो आनी चाहिए। यह तो नाटक के उस अभिनेता को देखने के तुल्य है, जो मच पर एक राजा का अभिनय करते हुए भूल जाता है कि वह तो एक निर्धन आतुर ऋणी है। इससे तो और भी अधिक हँसी तब आती है जब एक राजा मच पर रक का अभिनय करता है और उसी की भाँति रोने-धोने लग जाता है। अब समझो कि मेरे हँसने में विस्मय करने का कहाँ स्थान है ?

"देवलोक में एक स्थान है, जिसको कैलाश कहते हैं। प्राचीन काल में यह स्थान सागर के समीप था और पृथ्वी माता अभी यौवनावस्था में थी। इस कारण यह स्थान उष्ण था। वहाँ रहना केवल सभव ही नहीं, प्रत्युत आनन्दप्रद भी था।

"तब वहाँ एक तपस्वी रहता था। वह जन्म-मरण के रहस्य को समझने में लगा हुआ था। समय पाकर वह इस रहस्य पर अधिकार पा गया और मृत्यु पर विजय प्राप्त करने में लग गया। इसमें उसके

कई जीवन व्यतीत हो गए। अबकी बार उसे एक सुन्दर कन्या पार्वती ने वरा और वे आनन्द से रहने लगे।

"इस समय तक सागर पीछे हट गया और कैलाश पर शीत का साम्राज्य हो गया। पृथ्वी माता भी प्रौढावस्था में पहुंचने से अपनी उष्णता खो बैठी और इसका बाहरी रूप ऊबड़-खाबड़ हो गया।

"तपस्वी शिव और पार्वती कैलाश छोड़ एक अन्य स्थान पर, जहां उष्णता कुछ अधिक थी, रहने चले गए। यह स्थान कामभोज था। कामभोज के निवासी उच्छृङ्खल थे। उनका रहन-सहन देवलोक के रहन-सहन से बिल्कुल भिन्न था। वे सांसारिक जीवन को शरीर के जन्म-मरण से सीमित मानते थे और इस सीमित काल को अधिक से अधिक सुखमय बनाने में पूर्व और पश्चात् का ध्यान छोड़ प्रत्येक प्रकार का कुकर्म करने में लीन थे। बलशाली दुर्बलों का शोषण करने में लीन थे। सबलों के पास अनेकों स्त्रियां थीं और दुर्बल घुल-घुल कर मरते थे। देश का धर्म भी शक्तिशालियों के आधीन था। काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार का राज्य था।

"तपस्वी शिव ने यह अनुभव किया कि इन अज्ञानी मूर्खों के देश में उसके चित्त को शान्ति नहीं मिलेगी। नित्य अनेकों ऐसी घटनायें सुनाई देती थीं, जहां किंचित् से सुख के लिए अमूल्य जीवन स्वाहा कर दिया जाता था। कई वर्ष वहां रहकर दोनों ने वह देश छोड़ दिया और देवलोक को लौट पड़े। इस समय तक कश्यप ऋषि ने सतिसर के जल को पहाड़ फोड़कर निकाल दिया था और काश्मीर वादी रहने योग्य बना दी थी। इस सुन्दर वादी में भ्रमण करते हुए वे वहां के राजा नागराज के राज्य में ठहरे, तो राजा ने उनसे उनका आतिथ्य स्वीकार करने के लिए प्रार्थना की। शिव और पार्वती यहां की जलवायु अनुकूल पा, इसी वादी में रहने लगे। नागराज बहुत ही सुन्दर युवक था और

वातें करने में अति चतुर था। वादी भी उर्वरा होने के कारण पूर्ण सौन्दर्यमयी थी।

झरने, सरोवर, नदियाँ, ताल और वर्फ से ढकी चोटियो वाले पहाड इस वादी को अति मनोरम वना रहे थे। भूमि पर हरियाली, फल-फूलों से लदे पौधे इसकी शोभा को कई गुना वढाते थे। इस सव पर पार्वती मुग्ध हो गई और नित्य तपस्वी पति से अनुरोध करने लगी कि कैलाश जाने के स्थान वहीं रह जायें तो ठीक रहेगा।

"शिव भी अनुभव करते थे कि काश्यप ऋषि द्वारा निर्मित यह वादी ससार में अपनें जोड का स्थान नहीं रखती। इस कारण पार्वती के आग्रह को मान वे वही ठहर रहे थे। उनको दो वातें अखरती थीं, एक तो नागकन्यायें, जो अपने अद्वितीय सौन्दर्य से देवकन्याओ को भी लज्जित करती थी, दूसरा सुन्दर नागराज, जो पार्वती के चारो ओर ऐसे चक्कर काटता था जैसे गुलाव के फूल पर भँवरा।

"एक दिन शिव समाधिस्थ थे। पार्वती उनकी समाधि टूटने की प्रतीक्षा में उनके पान करने के लिए दुग्ध लिए सामने वैठी थी। इस समय नागराज भी देवों के देव के दर्शनार्थ वहाँ पहुँच गया। यह जान कि पार्वती उनकी समाधि टूटने की प्रतीक्षा में है, वह भी वही वैठ गया। समय टालने के लिए वह पार्वती से वातें करनें लगा। उसने वहुत वातें कहीं और सुनी। देवलोक, इन्द्रलोक और अन्य अनेको स्थानो के विपय में पार्वती ने वताया और अंत में काश्मीर की प्रशसा की। इस पर नागराज ने कहा—'इस स्थान के सौन्दर्य की वात तो मैं जानता नही, परन्तु यह समझता हूँ कि चन्द्र समान आपका सौम्य सौन्दर्य इस वादी को सहस्रगुना वढा रहा है। मेरा तो आग्रह है कि आप अपनी मनोहर छवि की छटा से इस स्थान के अधम राजा को पुलकित करते रहें।'

"जब नागराज यह कह रहा था, शिवजी महाराज की समाधि टूट रही थी। उन्होंने नागराज के इस कथन को सुना और अपनी आँखें खोल दीं।

पार्वती से दिया दूध पिया और बोले—'देवी, हम इसी क्षण यहाँ से चलेंगे।'

"कहाँ, भगवन् ?"

"कैलाश को।"

"वहाँ क्या है ?"

"वहाँ तुम्हारा पति रहेगा।"

"पार्वती चुप रही। महादेव ने समझा कि बात हो गई। इस कारण शीघ्र नागराज को विदा कर चलने की तैयारी करने लगे। इन समय एकान्त पा पार्वती ने पुनः आग्रह करना आरम्भ किया। इस पर महादेव को क्रोध आ गया और बोले—"देवी ! तुमको यह स्थान अति सुन्दर प्रतीत होता है, तो मैं शाप देता हूँ कि अगले जन्म में तुम यहाँ पर उत्पन्न हो। यहाँ के किसी सुन्दर युवक से विवाही जाओ।"

'पार्वती इस श्राप को सुन सन्न रह गई। उसका मुख पीतवर्ण हो गया और वह वहीं शीश को अपने हाथों में पकड़कर बैठ गई। उसके सिर में चक्कर आने लगे। बैठे-बैठे उसे एक बात का ज्ञान हुआ। इससे लम्बी सांस खींच वह उठ खड़ी हुई और चलने की तैयारी करने लगी।

"इतने में भोले बाबा का क्रोध शान्त हो गया और जब वे वादी से देवलोक की ओर चले तो मार्ग में पूछने लगे—"देवी ! तुमने इस शाप को मिटाने के लिए कुछ माँगा नहीं मुझसे ?"

पार्वती मुसकराई और बोली—"नाथ ! इस शाप से जितनी हानि आपने मेरी की है, उससे कहीं अधिक आपने अपनी की है। मैं तो सती-साध्वी पत्नी हूँ। इस कारण अब मेरा सिवाय आपके और किसी से विवाह नहीं हो सकता। यदि आपका शाप फलीभूत हुआ तो

विवश हो आपको भी मेरे साथ मनुष्यजन्म में आना पड़ेगा, अन्यथा मेरा विवाह किसी से हो नही सकेगा। यहाँ का वह सुन्दर युवक, जिससे मेरा विवाह होना है, वह आपके सिवा अन्य कोई नही होगा। इससे आप पुन जन्म-मरण के बधन में पड तपस्या का फल खो वैठेंगे।

"शिव को इससे बहुत चिन्ता लगी। देवलोक में लौट एक दिन वह मेरे पास आये और पूर्ण कथा सुनाकर मुझसे इसका उपाय पूछने लगे। शिव ने कहा कि उसकी तपस्या ऐसे स्तर पर पहुँच चुकी है कि वह जन्म-मरण से मुक्त होने वाला है। यदि मानवजन्म में वह अपने ज्ञान को भूल गया तो पुनः वही कुछ करना होगा जो सहस्रो वर्ष और कई जन्मो में उसने किया है।

"मैं उसकी सिवाय इसके और अधिक सहायता नहीं कर सकता था कि उसको सान्त्वना देता कि उसके पुण्य कर्मो के बल से, उसको उचित समय पर ज्ञान प्राप्त हो जावेगा और वह अपनी पूर्व की तपस्या का फल भोग सकेगा।

"जिस दिन तुम ब्रह्मलोक में मेरे स्थान पर आये थे तो मैं तुम दोनो को देख, तभी तुम्हारे अन्तरात्मा को पहिचान गया था। मेरी इच्छा बताने की नहीं थी। पर अब बता दिया है, तो इससे लाभ उठाने का यत्न करो।"

ब्रह्मा चुप कर पुन. आँखें मूंद विचारो में लीन हो गया। इस कथा के सुनने वाले सब स्तब्ध रह गये। किसी के मुख से एक शब्द भी नही निकल सका।

देवयानी और विक्रमदेव भी अपने स्वप्नों का ध्यान कर और अपने पतन का अनुमान लगा रो पड़े। बहुत देर तक उनके चक्षुओ से धाराप्रवाह आँसू बहते रहे। अंत में विक्रम उठा और आश्रय दे देवयानी को उठा, डगमगाते पग रखता हुआ, बिना बोले बाहर निकल गया।